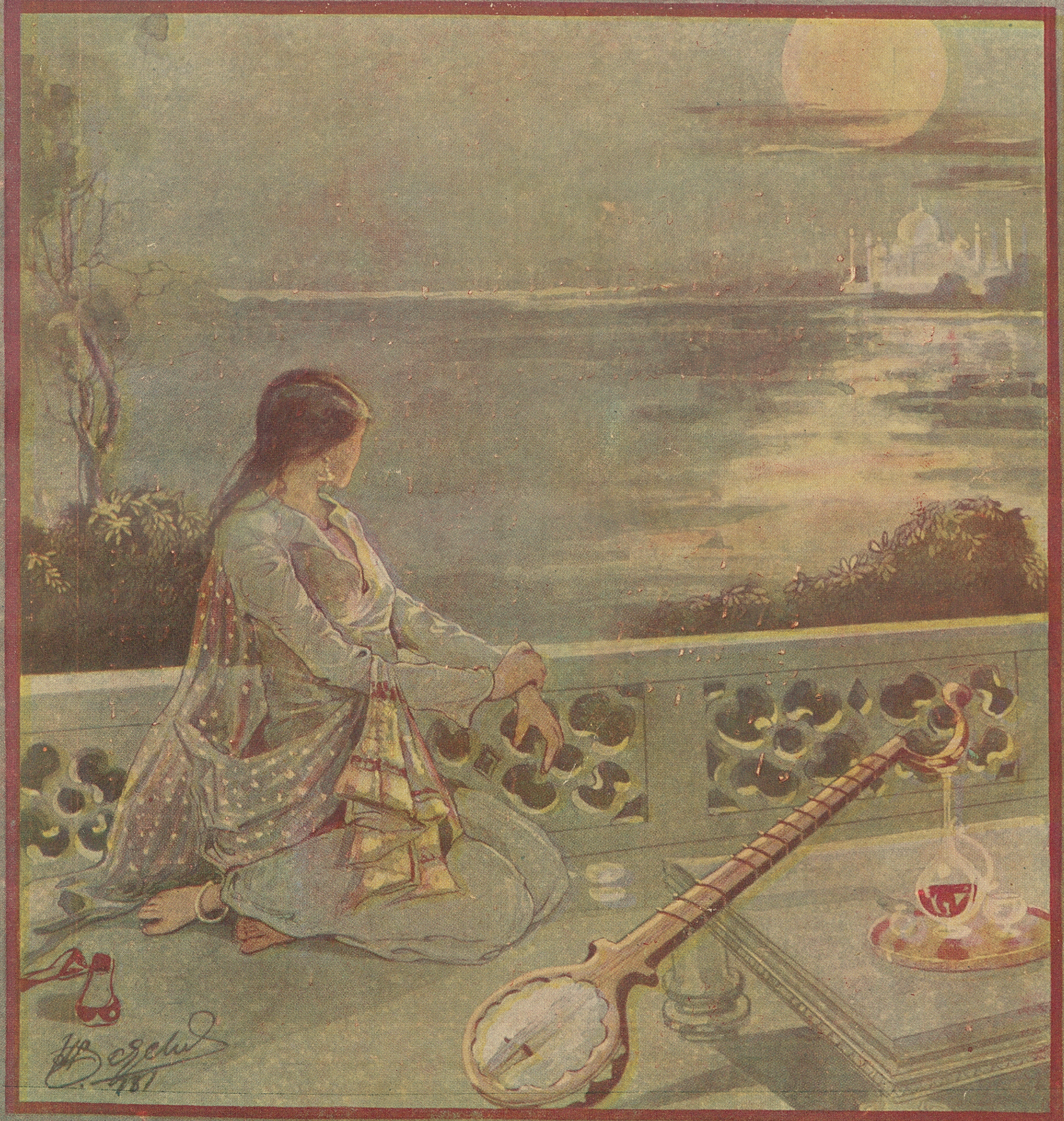
चाँद



चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

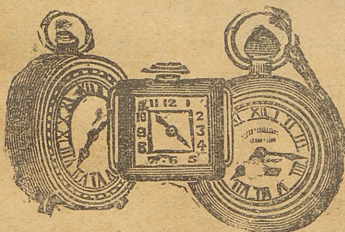
'होमियोपैथिक' दवा

का एक बक्स

और किताब रख कर अपनी बीमारी ख़ुद अच्छी कीजिए और दूसरों को भी आराम पहुँचाइए। बक्स का मूल्य किताब ड्रापर सहित क्रमानुसार १२, २४, ३०, ४८, ६०, ८४, १०४ दवा की शीशियों का २), ३), ३॥) ५॥), ६॥), ९), ११॥) डाक० अ०

पता—गाङ्गोली एण्ड कम्पनी नं० १
पार्वती घोष लेन, सेण्ट्रल एवेन्यू
कलकत्ता

असली तीन घड़ियाँ बिल्कुल मुफ़्त!



हमारी दाद की दवा से पाँव कट जाना आदि या नई या पुरानी दाद सब चाहे जैसे हो, एक-दो दिन में आराम होगा और कभी फिर न होगा। एक डिब्बी का मूल्य ।) एक साथ १२ डिब्बी का दाम २) लेने से असली बी टाइमपीस घड़ी मुफ़्त। एक साथ २४ डिब्बी का दाम ३।) में लेने से असली पॉकेटवाच मुफ़्त और एक टार्च लैम्प भी मुफ़्त। एक साथ ३६ डिब्बी का दाम ४।) लेने से एक असली फ़ैन्सी रिस्टवाच मुफ़्त। इन सब घड़ियों की मशीन व कल-पुरज़े मज़बूत हैं। देखने में सुन्दर हैं और समय ठीक बतलाती हैं। गारण्टी हर घड़ी की ५ साल। डाक-ख़र्च अलग। और भी सुविधा, एक साथ ऊपर लिखी तीनों घड़ियाँ लेने से डाक-ख़र्च माफ़।

दी नेशनल चीप स्टोर, २० नं० जयमित्र स्ट्रीट
(हाटखोला) कलकत्ता

तिब्बत की जड़ी

डॉ० मोहनसिंह, एम० ए०, पी० एच्० डी० ओरियन्टल कॉलेज लाहौर से तारीख़ २६ अक्टूबर, १९३१ को इस प्रकार लिखते हैं:—"मैंने आप से जड़ी मँगाई और उस जड़ी ने ऐसा काम किया कि मैं आश्चर्य में पड़ गया। कृपा कर ४ जड़ी और भेज दीजिए।"



इन्हीं महात्मा लामा-योगी से तिब्बत की कन्दराओं और हिमालय की गुफाओं में ३७ साल भ्रमण कर यह जड़ी और तान्त्रिक कवच मिला है, जिससे नीचे लिखे सब कार्य ज़रूर सिद्ध होंगे इसमें सन्देह नहीं। ज़रूरत वाले मँगावें।

विशुद्ध प्रेम—के लिए इससे ज़्यादा आज़माई हुई कोई चीज़ संसार में नहीं। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए मूल्य ३।) (२) रोग से छुटकारा—पुराना बुरे से बुरा असाध्य कोई भी रोग क्यों न हो, इससे शर्तिया आराम होता है। मूल्य ३।) (३) मुक़दमा—चाहे जैसा पेचीदा हो, मगर इससे शर्तिया जीत होगी। मूल्य ३।) (४) रोज़गार-तिजारत—में लाभ न होता हो, हमेशा घाटा होता हो, इससे उनका रोज़गार बढ़ेगा और लाभ होगा। मूल्य ३।) (५) नौकरी—जिनकी नौकरी नहीं लगती हो, बेकार बैठे हों, या हैसियत की नौकरी न मिलती हो, ज़रूर होगी। मूल्य ३।) (६) परीक्षा–प्रमोशन में इससे ज़रूर कामयाबी मिलेगी, विद्यार्थी और नौकर-पेशा ज़रूर आज़माइश करें। मूल्य ३।) (७) तन्दुरुस्ती—के लिए यह अपूर्व है, थोड़े ही समय में स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव पड़ता है। मूल्य ३।)

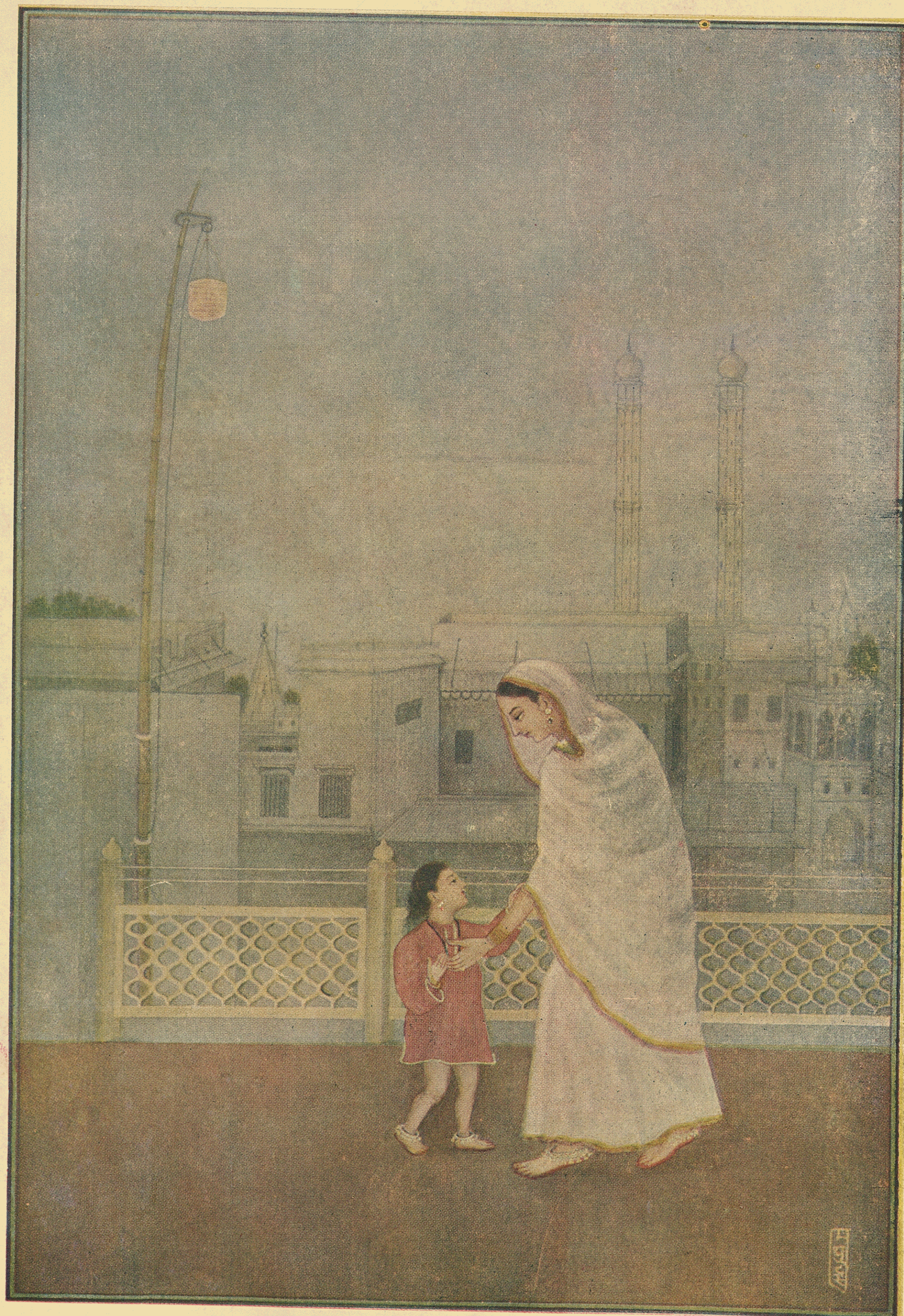
नोट—झूठे और मुफ़्त में बेचने वालों से सावधान! मँगाते वक़्त मँगाने वाले अपना नाम और काम ज़रूर लिखें। १ जड़ी का मूल्य ३।), ३ जड़ी की क़ीमत ९), डाक-ख़र्च ।=) अलग। एक जड़ी से एक ही काम होता है। एक जड़ी सब कामों में नहीं चलती है।

पता—**विजय लॉज**
सेक्शन डी०, पो० सलकिया, हवड़ा

विषय सूची

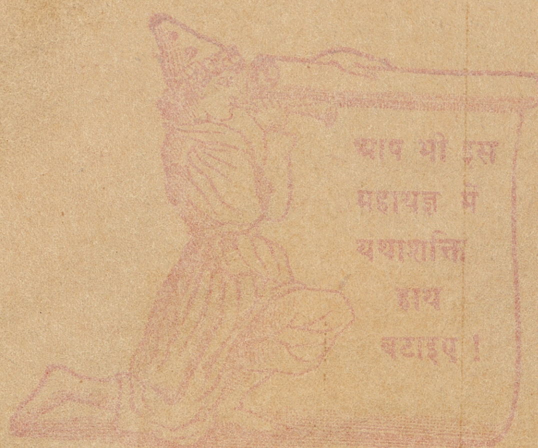
❋ ❋ ❋

चित्र-सूची



आकाश-दीप

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD



चाँद प्रेस, लिमिटेड

के

हिस्से ख़रीद कर लाभ उठाइए और देश तथा समाज की सेवा में हाथ बटाइए !

पाठकों को विदित होगा कि संस्था की सेवाओं का क्षेत्र और भी विस्तृत करने के अभिप्राय से विगत १५ वीं नवम्बर को संस्था को एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी का रूप दे दिया गया था ; किन्तु प्राइवेट कम्पनी होने के कारण क़ानून के अनुसार ५० से अधिक हिस्सेदार नहीं हो सकते थे। इस प्रकार संस्था के अनेक मित्र तथा शुभचिन्तक इस महायज्ञ में भाग लेने से वञ्चित रह गए होते। उनके बार-बार के तकाज़ों को दृष्टि में रख कर इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा है कि क्यों न इस कम्पनी को एक सार्वजनिक कम्पनी (Public Company) के रूप में परिवर्तन कर दिया जाय ? यदि ऐसा निश्चय हुआ तो मूल-धन ३ लाख होते हुए भी प्रति हिस्से (Share) का मूल्य १००) रु० से घटा कर १०) प्रति हिस्सा कर दिया जायगा, ताकि निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी हमारे इस अनुष्ठान में भाग ले सके। अब तक

एक लाख पच्चीस हज़ार

के हिस्से बिक चुके हैं अथवा सुरक्षित रक्खे गए हैं। इस तरह कम्पनी के २०,५०० हिस्से (यदि कम्पनी का ऐसा निर्णय हुआ तो) सर्वसाधारण में बेचे जाएँगे। ऐसी हालत में मित्रों को शीघ्र ही आवेदन-पत्र भेज कर यथाशक्ति अपने हिस्से सुरक्षित करा लेने चाहिए। कम से कम आप १०) का एक हिस्सा ले सकेंगे, इसके लिए आपको केवल २॥) पेशगी देना होगा, शेष रुपया किस्तों द्वारा समय-समय पर माँगा जायगा। जो लोग १००) के मूल्य के अर्थात् १० हिस्से ख़रीदेंगे, उन्हें एक वर्ष तक 'चाँद' मुफ़्त दिया जाय और २५०) के अर्थात् २५ हिस्से ख़रीदने वालों को 'भविष्य' तथा 'चाँद' दोनों एक एक वर्ष तक मुफ़्त दिए जाएँ—इस प्रश्न पर भी विचार किया जा रहा है। ताकि आर्थिक लाभ के अतिरिक्त 'चाँद' तथा 'भविष्य' के प्रेमी सब प्रकार से फ़ायदे में रहें और साथ ही देश तथा समाज के उत्थान में यथाशक्ति हाथ बटा सकें। कुल हिस्से बिक जाने पर कम्पनी की योजनाएँ इस प्रकार हैं :—

(१) 'चाँद' (हिन्दी-संस्करण) को और भी अच्छा रूप दिया जाय, एक ख़ास तरह के काग़ज़ पर छापा जाय और इसे और भी लोक-प्रिय बनाया जाय।

(२) 'चाँद' (उर्दू-संस्करण) के प्रकाशन को, जो प्रेस की अनिवार्य कठिनाइयों के कारण कुछ दिनों से स्थगित कर दिया गया है—पुनः जारी किया जाय।

(३) 'भविष्य' (साप्ताहिक संस्करण) का चन्दा तथा मूल्य यही रखते हुए उसे इतना अधिक आकर्षक एवं उपयोगी बनाया जाय, कि वह संसार के किसी भी २४) वार्षिक चन्दे वाले साप्ताहिक से टक्कर ले सके।

(४) 'भविष्य' का दैनिक संस्करण, जिसे प्रेस की कठिनाइयों के कारण बाध्य होकर स्थगित कर देना पड़ा है, पुनः इसका प्रकाशन जारी किया जाय। पृष्ठ-संख्या ८ कर दी जाय और सामयिक चित्रों का विशेष प्रबन्ध किया जाय।

(५) एक नया और Up-to-date चित्र तथा ब्लॉक विभाग खोला जाय, ताकि इस संस्था से प्रकाशित होने वाले सभी पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे सुन्दर एवं सामयिक चित्र तथा कार्टून प्रकाशित हुआ करें, जो हिन्दी-संसार के लिए आज दुर्लभ हो रहे हैं।

(६) एक ऐसी टाईप फ़ाउण्डरी खोली जाय, जिससे इस संस्था द्वारा प्रकाशित होने वाले सभी पत्र-पत्रिकाओं के टाईप सदैव नए बने रहें और छपाई आदर्श हुआ करे।

(७) सामाजिक पुस्तकों के अतिरिक्त एक दुर्लभ राजनीतिक ग्रन्थावली का प्रकाशन आरम्भ किया जाय, जिसमें ऐसी सामयिक एवं उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन हो, जिससे केवल हिन्दी जानने वाले पाठक राजनीति जैसे गम्भीर विषय के प्रत्येक पहलू से परिचित हो सकें और देश तथा समाज-सुधार के प्रश्नों पर स्वतन्त्रता-पूर्वक विचार कर सकें।

(८) संस्था के कार्यकर्ताओं की दशा यथाशक्ति सुधारने का प्रयत्न किया जाय, ताकि देश तथा समाज के समक्ष वे एक आदर्श उपस्थित कर सकें। इत्यादि......इत्यादि......इत्यादि।

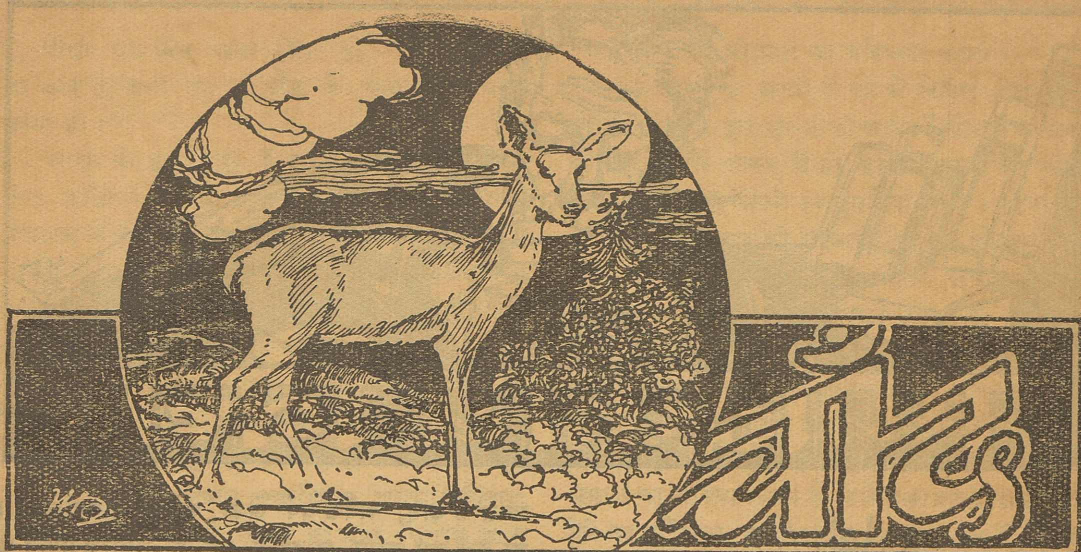
इन सारे उद्देश्यों तथा पिछले १० वर्ष से इस संस्था द्वारा होने वाली सेवाओं को दृष्टि में रखते हुए हमारी दृढ़ धारणा है कि संस्था का प्रत्येक प्रेमी अधिक से अधिक हिस्से ख़रीद कर हमारे इस महान अनुष्ठान में यथाशक्ति भाग लेगा और हमें प्रोत्साहित करेगा।

इन सारी योजनाओं को दृष्टि में रखते हुए भी संस्था हिस्सेदारों को १२) से १८) सैकड़ा प्रति वर्ष लाभ उपस्थित करने की आशा करती है।

रामरख सिंह सहगल

गवर्निङ्ग डाइरेक्टर

☞ जो सज्जन अथवा देवियाँ कम्पनी का हिस्सा ख़रीदना चाहें; उन्हें हमें लिख कर प्रार्थना-पत्र का छपा हुआ फ़ॉर्म मँगा कर उसी पर हस्ताक्षर करके भेजना चाहिए। सादे काग़ज़ पर प्रार्थना-पत्र भेजने से काम नहीं चलेगा। पत्र आते ही उनकी सेवा में आवश्यक फ़ॉर्म आदि भेज दिए जाएँगे।



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १० खण्ड १	जनवरी, १९३२	संख्या ३ पूर्ण संख्या १११

रूप-राशि

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

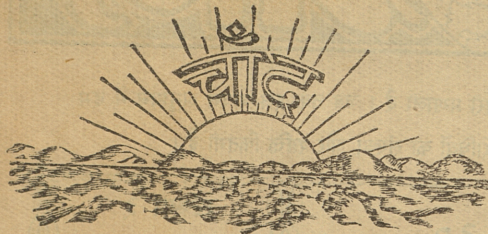
यह प्रशान्त छाया—
सोती है, शिशु-पल्लव के हिलने से कम्पन आया।

प्रेयसि, शयन धरा पर करने में है स्वर्गोल्लास,
देखो! छाया पड़ी हुई है, मृत पल्लव के पास!

और, तुम्हारे उर में है जो भाग्यवान वह हार,
कभी गिरेगा भू पर लेकर, अपना सूखा भार।

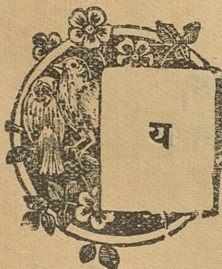
आओ हम दोनों समीप बैठें, देखें आकाश,
वे दोनों तारे देखो, कितने-कितने हैं पास!!





जनवरी, १९३२

आशा के चिन्ह



ह युग सामाजिक सुधारों का युग है, इसमें सन्देह नहीं। यद्यपि इस ओर उतना कार्य नहीं हो रहा, जितना कि होना चाहिए तथा जो कुछ भी हो रहा है, वह इतनी धीमी गति से कि वर्षों की प्रगति के बाद ध्यान देकर देखने पर यही पता चलता है कि हमारी पहली और वर्तमान स्थिति में विशेष अन्तर नहीं है। सन्तोष की बात केवल यही है कि कार्य प्रारम्भ हो गया है। जो कुछ भी हुआ है, वह भगीरथ-प्रयत्न के बाद, अनेक वर्ष लेकर, अनेक जीवन लेकर। जो कुछ हम करना चाहते हैं, वह भी भगीरथ-प्रयत्न के बाद होगा और अनेक वर्ष तथा अनेक बलिदान लेगा। यात्रा बड़ी कठिन है, विघ्न-बाधाओं की संख्या नहीं है, समस्याएँ पर्वतों की भाँति सामने खड़ी हैं। यात्रा को पूरा करना है, विघ्न-बाधाओं को हटाना है, समस्याओं की लड़ी को सुलझाना है। इन सब बातों पर जब हम विचार करते हैं, जब अपनी प्रगति का ख़याल आता है, तब निराशा होने लगती है। परन्तु फिर ज्योंही सुधार का कुछ कोलाहल इधर सुनते हैं, कुछ उधर, तो बीच-बीच में आशा के कुछ चिह्न प्रगट हो जाते हैं।

जैसा कि हम एक पिछले लेख में लिख चुके हैं, हमारी सामाजिक समस्याएँ तब तक हल नहीं होंगी, जब तक कि हमारे देश में सामाजिक क्रान्ति का आविर्भाव न होगा। क्रान्ति ही हमारे सारे पापों, हमारे सारे अपराधों और सारे दूषणों की एकमात्र महौषधि है। वही एक मन्त्र है, जिसके जाप से हम उस परिवर्तन का प्रकाश देख सकेंगे, जिसके लिए हम तरस रहे हैं, भटक रहे हैं। परन्तु जब तक हम क्रान्ति के लिए तैयार नहीं, जब तक हम उस परिवर्तन को लाने के योग्य नहीं, तब तक हमारी दृष्टि - और वास्तव में सारे समाज की दृष्टि—उन चिह्नों पर लगी रहेगी!

ये चिह्न अधिक प्रकाशवान नहीं हैं। इनमें मुर्दा हृदय को जीवित कर देने की शक्ति नहीं है, न इनमें समाज के सैनिकों में उत्साह उत्पन्न करने की योग्यता ही है, फिर भी ये आशा के चिह्न हैं। बीज-वपन हो गया

है, पौधा एक दिन खड़ा होगा ही। यह द्वितीया का चन्द्र है, कभी वह पौर्णिमा के आकार को ग्रहण करेगा ही।

आशा के इन चिह्नों में सबसे उज्ज्वल है, सामाजिक कुरीतियों का निवारण। सामाजिक कुरीतियों के निवारण के लिए क्या-क्या हो रहा है तथा कौन-कौन कुरीतियाँ किन अंशों में दूर हो चुकी हैं, इन सबका वर्णन इस स्थल पर नहीं हो सकेगा। यहाँ हम कुछ अत्यावश्यक कुरीतियों के ऊपर ही विचार करेंगे।

इनमें से सबसे प्रथम हम विवाह की कुरीतियों पर विचार करेंगे। आधी सामाजिक कुरीतियाँ किसी न किसी रूप में विवाह की प्रथा से सम्बन्ध रखती हैं। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह, असमान-विवाह, विधवाओं की समस्या, दहेज़ की प्रथा, तलाक़ का न होना आदि सभी कुरीतियों का जन्म विवाह पर निर्भर होता है। यदि विवाह की प्रणाली में सुधार हो जाय, तो हमारी आधी से अधिक सामाजिक समस्याएँ हल हो जायँ।

हमें प्रसन्नता है कि यत्र-तत्र इस दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ हो गया है। विवाह की कुप्रथाओं की ओर जन-समुदाय का ध्यान आकृष्ट होने लगा है और उन्हें इस बात का विश्वास हो गया है कि जब तक विवाह के रूप को बिल्कुल ही बदल न दिया जायगा, तब तक समाज का यह कोढ़ अच्छा नहीं होगा। पढ़े-लिखे नवयुवक एतद्विषयक सुधार की ओर अग्रसर होने लगे हैं। हमारे पास पटना से 'विवाह-सुधारक-सङ्घ' की स्थापना के समाचार आए हैं। इस संस्था के उद्देश्य निम्न-लिखित हैं:—

(१) पति-पत्नी का निर्वाचन स्वेच्छा से करने की प्रथा को प्रोत्साहित करना।

(२) किसी भी प्रकार के दहेज़, तिलक, ज़दरा आदि का बहिष्कार करना।

(३) विवाहोत्सवों में आर्थिक अपव्यय का विरोध करना।

(४) अन्तर्जातीय तथा विधवा-विवाह का प्रचार करना और बाल-विवाह का विरोध करना।

(५) युवक-युवतियों में शिष्ट दम्पति-विज्ञान (Sex-knowledge) का प्रचार करना। और,

(६) पर्दे की प्रथा का बहिष्कार करना।

इस संस्था के मन्त्री के पत्र से विदित होता है कि स्थान-स्थान पर इस संस्था की शाखाएँ खोलने का प्रयत्न हो रहा है और पटना में ही इसके सदस्यों की संख्या लगभग २०० है, जिनमें ५० युवतियाँ भी हैं। कहना नहीं होगा कि इस प्रकार की संस्थाओं की देश को इस समय बड़ी आवश्यकता है। वैवाहिक जीवन सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे समाज के युवक-युवतियों को 'विवाह' शब्द का महत्व भली-भाँति समझाया जाय। हमारा सामाजिक जीवन इतना गिर गया है कि विवाह का हमारे सामने कोई आदर्श ही नहीं रह गया। जिस संस्कार पर दो प्राणियों का ही नहीं, बल्कि सारे समाज का भविष्य निर्भर है, उसे इस प्रकार पतित बना देने का परिणाम आज प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ में दिखाई दे सकता है।

जहाँ इस प्रकार की संस्थाओं को विवाह की प्रथा में सुधार करना है, वहाँ उनके सामने एक और आवश्यक प्रश्न उपस्थित होता है। यूरोप और अमेरिका की देखा-देखी हमारे देश में भी ऐसे नवयुवकों का एक दल बन गया है, जो विवाह को अनावश्यक समझते हैं। वैयक्तिक रुचि के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते, न उस रुचि के लिए हमें कोई आपत्ति ही है, परन्तु इस रुचि को सामूहिक रूप देना, हमारी समझ में, समाज के लिए अमङ्गलकारी होगा। यह देखने में आया है कि ऐसे नवयुवक, जिस समय विवाह न करने की प्रतिज्ञा करते हैं, उस समय उनके मन में उच्चातिउच्च तथा पावनातिपावन विचार और आदर्श भरे होते हैं। पीछे से ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, उन्हें प्राकृतिक आवश्यकताओं का अनुभव होने लगता है। परन्तु उस समय उन्हें प्रतीत होता है कि वे बहुत दूर पहुँच चुके हैं, जहाँ से मुड़ना वे पतन और लज्जा का विषय समझते हैं। उनमें इतना साहस नहीं होता कि वे सार्वजनिक रूप से अपनी भूल को स्वीकार कर लें, और प्रकृति की आज्ञा का पालन करें। वे प्रकृति का विरोध करके बढ़े चले जाते हैं। फल-स्वरूप एक भीषण प्रतिक्रिया होती है और उसका परिणाम होता है घोर पतन। ऐसे नवयुवक हैं, जिन्हें विवाह का महत्व समझाना इन संस्थाओं का कर्तव्य है। इस विषय में महात्मा गाँधी ने

भी एक लेख में लिखा था—"कुछ ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं, जो किसी महान ध्येय की पूर्ति के लिए मेरे ही समान, पारिवारिक जीवन का मधुर आनन्द छोड़, आत्म-बलिदान तथा कठोर ब्रह्मचर्य की ज़िन्दगी अधिक पसन्द करें, पर जनता के लिए पारिवारिक जीवन की सुविधाएँ रखना अनिवार्य है।" हमें अत्यन्त हर्ष होता, यदि इस संस्था के उद्देश्यों में इस प्रश्न को भी स्थान मिलता। फिर भी, हम पटना के नवयुवकों के इस स्तुत्य कार्य की सराहना करते हैं और आशा करते हैं कि अन्य प्रान्तों में भी शीघ्र ही ऐसी संस्थाओं की स्थापना होगी।

विवाह के सम्बन्ध में ही एक और प्रश्न है, जिसके लिए आजकल बहुत-कुछ आन्दोलन हो रहा है। वह है जात-पाँत को नष्ट करना। विवाह के दायरे के बाहर भी यह समस्या समाज-सुधारकों के सामने आती है, परन्तु विवाह से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। छोटी-छोटी बिरादरियों के सङ्कुचित दायरों के भीतर ही विवाह को सीमित करके हमने अपने सामाजिक जीवन को पङ्गु बना दिया है। विवाह को हमने उसी प्रकार जात-पाँत के दायरे में क़ैद कर लिया है, जैसे एक पक्षी को पिंजड़े में क़ैद कर लिया जाता है। इसीलिए जब हम विवाह के सुधारों पर विचार करते हैं, तो अन्तर्जातीय विवाह की महत्ता हमारे सामने स्पष्ट रूप से आ जाती है। पहले-पहल आर्य-समाज ने इस ओर अपना पैर बढ़ाया था। स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में इस ओर महत्वपूर्ण कार्य हुआ था। फिर भाई परमानन्द ने इस कार्य को अपने हाथों में लिया। उधर पञ्जाब में "जात-पाँत-तोड़क मण्डल" की स्थापना हुई। कई वर्ष हुए, अखिल भारतवर्षीय आर्य-कुमार-सम्मेलन ने भी इस प्रश्न को अपनाया और कॉन्फ्रेन्स के साथ ही साथ 'आर्य-कुमार' मासिक-पत्र का 'जात-पाँत-तोड़क अङ्क' निकला।

अब यह प्रश्न केवल आर्य-समाज का ही प्रश्न नहीं रहा, यह तो अब सारे हिन्दू-समाज का प्रश्न हो गया है। दक़ियानूसी विचार के पण्डितों और धर्माधिकारियों को छोड़ कर अब सभी हिन्दू इस प्रकार की गम्भीरता को समझने लगे हैं। वैयक्तिक रूप से तो प्रति वर्ष सैकड़ों अन्तर्जातीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवाह हो रहे हैं।

आर्य-समाज के आन्दोलन के विषय में एक बात विचारणीय है। वह यह कि समाज ने अभी तक इस आन्दोलन का विस्तार निश्चित नहीं किया। अर्थात्, जात-पाँत के अन्तर्गत केवल उपजातियाँ और बिरादरियाँ ही आती हैं अथवा वर्ण भी? अनेक लेखों तथा व्याख्यानों से तो यही प्रगट होता है कि समाज वर्ण-व्यवस्था को तो जारी रखना चाहता है, परन्तु उपजातियों को तोड़ना चाहता है। हमारी समझ में यह नहीं आता कि वर्णों को जारी रखने की आजकल के युग में क्या आवश्यकता है और न हमें यह बताया गया है कि वर्णों का विभाजन आदि किस प्रकार होगा और किस प्रकार सुव्यवस्थित रूप में चलेगा।

जिस समय वर्ण-व्यवस्था का जन्म हुआ था, तब परिस्थिति और ही थी। इसके जन्मदाताओं के मन में समाज में ऊँच-नीच का भाव पैदा करने का कोई विचार नहीं था। उसका आधार श्रम-विभाजन (Division of Labour) का सिद्धान्त था। धीरे-धीरे उनका आदर्श पतन को प्राप्त हो गया और फलतः सामाजिक ऊँच-नीच का जन्म हुआ। समाज छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गया और जिस टुकड़े को उस समय अधिक शक्ति प्राप्त थी, उसने उसका दुरुपयोग दूसरे विभागों को दबाए रखने में किया। इसीलिए ब्राह्मणों ने मनमाने नियम बना दिए, राजनीति क्षत्रियों का अधिकार हो गई, धन पर वैश्यों ने हाथ साफ़ किया और बेचारे शूद्रों को, जो सबके मुहताज थे, निम्नतम जीवन को अपनाना पड़ा। यदि आज अग्रवाल, सनाढ्य, परमार आदि की आवश्यकता नहीं है, तो ब्राह्मण, क्षत्री आदि वर्णों को रखने से ही हमारे समाज को क्या लाभ होगा? क्या इन वर्णों से समाज का सङ्गठन दृढ़ हो जायगा? यदि कल्पना कर ली जाय कि यह सम्भव होगा, तो फिर भी एक प्रश्न ऐसा सामने आता है, जिस पर बहुत कम व्यक्ति विचार करते हैं। वह यह है कि अब ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र आदि नाम हमारे सामने समानता के अधिकार का चित्र नहीं खींचते। उनका श्रम-विभाजन का भाव अब नष्ट हो गया है। अब तो उनसे सामाजिक ऊँच-नीच का भेदभाव ही प्रगट होता है। ब्राह्मण शब्द से जिस बात का हमें ज्ञान होता है, वही ज्ञान हमें शूद्र शब्द से नहीं होता है। इन शब्दों के

जो अर्थ-विशेष आजकल माने जाते हैं, वे हमारी रग-रग में समा गए हैं और वे समाज के चरित्र के अङ्ग हो गए हैं। जब तक उनका पूर्णतया नाश नहीं होता, तब तक सामाजिक भेद-भाव का भूत हमारे यहाँ से भाग नहीं सकता। एक आदर्श राष्ट्र और समाज में सब नागरिकों का दर्जा समान होना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्री जैसे निरङ्कुश नामों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसीलिए तो अमेरिका में किसी भी व्यक्ति को उपाधियाँ और सनदें नहीं दी जातीं, इसी डर से कि वे इङ्गलैण्ड की भाँति समाज में दलबन्दी पैदा कर देंगी। इन्हीं सब बातों पर ध्यान देकर हमें भी अपने सामाजिक इतिहास से वर्ण-व्यवस्था की दूषित प्रणाली को नष्ट करना पड़ेगा। इस प्रकार के भेद-भाव को रहने देने की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि हम इस देश के नाते केवल भारतवासी कहलाएँ तथा समाज के नाते हिन्दू।

विवाह के सम्बन्ध में ही तीसरी सुधार की बात है 'तलाक़ का प्रचार'। किसी न किसी रूप में संसार के सभी समाजों में तलाक़ (विवाह-विच्छेद) प्रचलित है और अधिकांश समाजों में स्त्री को इस विषय में पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। परन्तु हिन्दुओं में विवाह-विच्छेद को पाप समझा जाता है। न वह शास्त्र-सम्मत है और न क़ानून-सम्मत। इस प्रथा के अभाव में हिन्दू-समाज में कैसे कृत्य होते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। हिन्दू-समाज में स्त्री एक प्रकार से पुरुष की क्रीत दासी हो जाती है। पुरुष अपनी पत्नी को घर से निकाल सकता है, उसके जीवित रहते भी दूसरा विवाह कर सकता है, पत्नी के सामने ही अन्य स्त्रियों के साथ व्यभिचार कर सकता है, स्त्री के साथ अमानुषिक अत्याचार कर सकता है, परन्तु स्त्री उसकी किसी बात का विरोध नहीं कर सकती। विवाह के समय पति चाहे रोगी हो, पागल हो, चाहे नपुंसक हो, स्त्री को उससे सम्बन्ध-विच्छेद करने का कोई अधिकार नहीं है। उसे यही सिखाया जाता है कि उसकी गति पति के ही साथ है, वह चाहे कैसा ही हो। यहाँ तक कि स्त्रियों को, अपने दुराचारी अथवा अत्याचारी पति की मृत्यु के अनन्तर यह प्रार्थना करते हुए देखा गया है कि वही पति उन्हें जन्म-जन्मान्तर में मिले।

तलाक़ के लिए क़ानून बनाने का आन्दोलन ब्रिटिश भारत में वर्षों से हो रहा है, परन्तु अभी तक सफलता नाम-मात्र को भी नहीं हुई। ऐसी दशा में हमें यह देख कर हर्ष होता है कि बड़ौदा रियासत ने अपने यहाँ तलाक़-क़ानून पास कर दिया है।

इस क़ानून का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है :—

यह क़ानून अदालत की मदद से हिन्दू-विवाह-त्याग की आज्ञा नीचे दी हुई बातों के आधार पर देता है, जिसको चाहे पति या पत्नी कोई भी कर सकता है।

१—सात वर्ष तक अदृश्य रहना

२—साधू हो जाना

३—ईसाई या मुसलमान हो जाना या कोई अन्य मत स्वीकार कर लेना

४—निर्दयता का अपराधी होना

५—तीन वर्ष तक लगातार बिना किसी कारण के छोड़े रखना।

६—नशाबाज़ी करना

७—व्यभिचार करना

८—ब्याह के समय नपुंसक होना

९—पति या पत्नी के होते हुए फिर शादी करना

१०—ब्याह के समय अपने पति के अलावा किसी अन्य पुरुष से गर्भवती हो जाना।

विवाह-त्याग किन आधारों पर हो सकता है :—

१—कोढ़ या और कोई भयानक बीमारी ब्याह के समय पर हो, जिसको पति या पत्नी से जान-बूझ कर छिपाया गया हो।

२—कोई शारीरिक दोष, जैसे कि पति या पत्नी का विवाह के समय बिलकुल (अ) बहिरा (ब) गूँगा (स) अन्धा (द) पागल (ह) मूढ़ होना (फ) या किसी अन्य धर्म में चला जाना, और यह बातें शादी के वक़्त एक-दूसरे से छुपाई गई हों।

३—बाल-विवाह के लिए "बाल-विवाह रोक क़ानून" की १८वीं धारा के अनुसार।

४—विवाह-सम्बन्धी रुकावटें—(अ) एक रुधिर की सन्तान में (ब) एक गोत्र में (स) या "हिन्दू-विवाह क़ानून" के अनुसार एक ही वर्ण में, शादी नहीं हो सकती।

५—विवाह धोखा देकर और ज़ोर दिखा कर किया जाय।

नोट—विवाह-बन्धन तो टूट जायगा, पर उनकी सन्तान शुद्ध मानी जाएगी और उनकी पूँजी में भाग लेने का अधिकार रहेगा।

क़ानूनी जुदाई और अलग हो जाना नीचे लिखी बातों पर निर्भर है :—

१—कोई और समुदाय में चले जाना
२—निर्दयता
३—नशा करना
४—व्यभिचार
५—कोढ़ या और कोई घृणित रोग से पीड़ित होना
६—एक मनोवृत्ति का न होना
७—शादी के बाद पागल हो जाना
८—पति या पत्नी के रहते फिर शादी करना
९—अस्वाभाविक दमन की आदत

विवाह-सम्बन्धी पारस्परिक अधिकारों से मुक्त होना।

(अ) जिससे पति या पत्नी अदालत में मुक़द्दमा लाने के आधार के अलावा एक दूसरे का साथ छोड़ सकें।

१—शादी को तोड़ देना
२—ब्याह-बन्धन का टूट जाना कह देना
३—क़ानूनी जुदाई
४—अलग रहन-सहन

(ब) पति या पत्नी कोई भी, जिसने एक दूसरे से अलग रहना स्वीकार कर लिया है, ब्याह-त्याग के लिए मुक़द्दमा ला सकता है।

उक्त क़ानून का दायरा बहुत व्यापक है। हम बड़ौदा रियासत के महाराजा तथा अन्य कर्मचारियों को यह सुधार करने के लिए बधाई देते हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि ब्रिटिश भारत इस आवश्यक प्रश्न पर अभी तक कुछ भी कार्य नहीं कर सका है। हम आशा करते हैं कि अन्य रियासतें तथा ब्रिटिश भारत भी इस विषय में बड़ौदा का अनुगमन करेंगे।

जिस प्रकार बड़ौदा तलाक़ का क़ानून पास करने में अग्रगण्य हुआ है, उसी प्रकार एक दूसरे देशी राज्य ने भी एक अत्यन्त घृण्य-प्रथा को समूल नष्ट करने की आज्ञा दे दी है। वह राज्य है सुधार-प्रिय ट्रावङ्कोर। ट्रावङ्कोर की सरकार ने 'देवदासी' की घृणित प्रथा को नष्ट करने की घोषणा कर दी है। ट्रावङ्कोर में यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी। जिस समय इस प्रथा का प्रचार हुआ था, उस समय देवदासी भगवान की पूजा के लिए आवश्यक समझी जाती थीं। उन्हें पवित्र रखने के लिए बहुत कठिन नियम बने हुए थे, जिनके अनुसार उन्हें अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता था। परन्तु समय पाकर यह आदर्श नष्ट हो गया। वे पूजा के लिए नहीं, बल्कि मन्दिर के पुजारियों के भोग-विलास की सामग्री बन गईं। इनका चरित्र बहुत भ्रष्ट होने लगा और इनका जीवन एक प्रकार से वेश्याओं का सा हो गया।

देवदासी-प्रथा के अनुसार माता-पिता अपनी १२ वर्ष की पुत्री को ११) लेकर जिस दिन मन्दिर के अर्पण कर देते थे, उसी दिन से वह विधिपूर्वक विवाह करने के अधिकार से वञ्चित कर दी जाती थी। उसी दिन उसका विवाह एक कृपाण के साथ कर दिया जाता था। कई वर्ष पूर्व राज्य ने इन बालिकाओं को यह आज्ञा दे दी थी कि वे अपने विवाह कर सकती हैं और साथ ही मन्दिर की सेवा भी। अब, हमें लिखते हुए हर्ष होता है, महारानी की अध्यक्षता में ट्रावङ्कोर राज्य ने यह प्रथा समूल नष्ट कर दी है। इससे पूर्व पदूकोटा, कोचीन और मैसूर राज्य भी इस प्रथा को अपने यहाँ बन्द कर चुके थे। जहाँ देशी राज्य सामाजिक सुधारों के लिए इतना कार्य कर रहे हैं, वहाँ ब्रिटिश भारत में इन सुधारों की ओर अधिक ध्यान भी नहीं दिया जाता। आशा है, मद्रास प्रान्त, जहाँ देवदासी-प्रथा अधिक प्रचलित है, इन देशी राज्यों का पथानुसरण करेगा।

आशा का सबसे महत्वपूर्ण चिह्न जो हमें दिखाई दे रहा है, वह है भारतीय स्त्रियों की जागृति। यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि हमारे समाज का भविष्य बहुत-कुछ हमारी माताओं और बहिनों पर निर्भर करता है। जब तक वे अपनी शक्ति को नहीं पहचान लेतीं, जब तक वे अपने अधिकारों को समझ कर उनके लिए आन्दोलन नहीं करतीं, तब तक समाज का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। हमें इस बात की चिन्ता नहीं है कि वे किस प्रकार अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकेंगी, न हमें इस बात की चिन्ता है कि उनको इस प्रयत्न में कितना

समय लगेगा। हमारी दृष्टि में जो सब से आवश्यक बात है, वह यह है कि वे अपने अधिकारों को पहिचान लें। ज्योंही उनमें आत्म-जागृति उत्पन्न हुई, त्योंही वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देंगी। उनकी शक्ति को हम जानते नहीं, और न वेही उसे जानती हैं। इसीलिए उनके आन्दोलन हमें शिथिल दिखाई पड़ते हैं। हमें हर्ष है कि हमारे देश का नारी-समाज अब अपनी शक्ति को जानने लगा है। यही सब से बड़ा चिन्ह है उनकी जागृति का।

हम अक्टूबर के अङ्क में उनकी माँगों के विषय में कुछ लिख चुके हैं। उन माँगों की पुकार अब चारों ओर से आ रही है। जिधर देखिए, उधर ही स्त्रियों की कॉन्फ़्रेन्सें हो रही हैं, जिनमें स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास हो रहे हैं। मद्रास में कुछ दिन हुए अखिल भारतवर्षीय महिला-सुधार-सम्मेलन हुआ था, जिसमें महिलाओं के अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले १४ प्रस्ताव पास हुए थे। इनमें से मुख्य थे शारदा-एक्ट, बहुविवाह-विरोध, तलाक़, देवदासी-प्रथा, स्त्री-शिक्षा और वेश्यावृत्ति के विषय में।

इसी प्रकार के दो सम्मेलन दो मास पूर्व लखनऊ में हुए थे, एक तो था अवध-महिला-सम्मेलन, जिसकी प्रधाना थीं ग्वालियर की रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े, दूसरा यू० पी० महिला-सम्मेलन, जिसकी प्रधाना थीं बेग़म सईदा सुलतान मुहम्मदउल्लाह साहिबा। इन दोनों के भाषणों का प्रत्येक शब्द हमारे उपर्युक्त विचारों की पुष्टि करता है। रानी साहिबा का भाषण तो बहुत महत्व का है, क्योंकि उसमें उन सभी समस्याओं पर विचार किया गया है, जिनके विषय में हम एक पिछले लेख में प्रकाश डाल चुके हैं। इसमें दो बड़े मार्के की बातें कही हैं, एक तो स्त्रियों के उत्तराधिकार के विषय में और दूसरी सन्तति-निग्रह के विषय में। उत्तराधिकार के विषय में रानी साहिबा कहती हैं:—

"स्त्रियों के लिए—और विशेषकर हिन्दू स्त्रियों के लिए—अत्यधिक आवश्यक विषयों में से एक है उत्तराधिकार का प्रश्न। यह सभी जानते हैं कि हिन्दू-समाज में स्त्रियों को पति की या पिता की जायदाद में कुछ भी अधिकार नहीं। इस व्यवस्था से विधवाओं को बड़े कष्ट सहन करने पड़ते हैं। भारतीय महिला-मण्डल के हितैषी श्री० हरविलास शारदा इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि इस विषय में विधवाओं को कुछ अधिकार देने के लिए एक क़ानून बना दिया जाय। परन्तु यह प्रयत्न इस दूषित प्रणाली के एक छोटे से अंश को ही सुधार सकेगा। इस विषय में बड़ौदा और मैसूर राज्यों का कार्य अनुकरणीय है।"

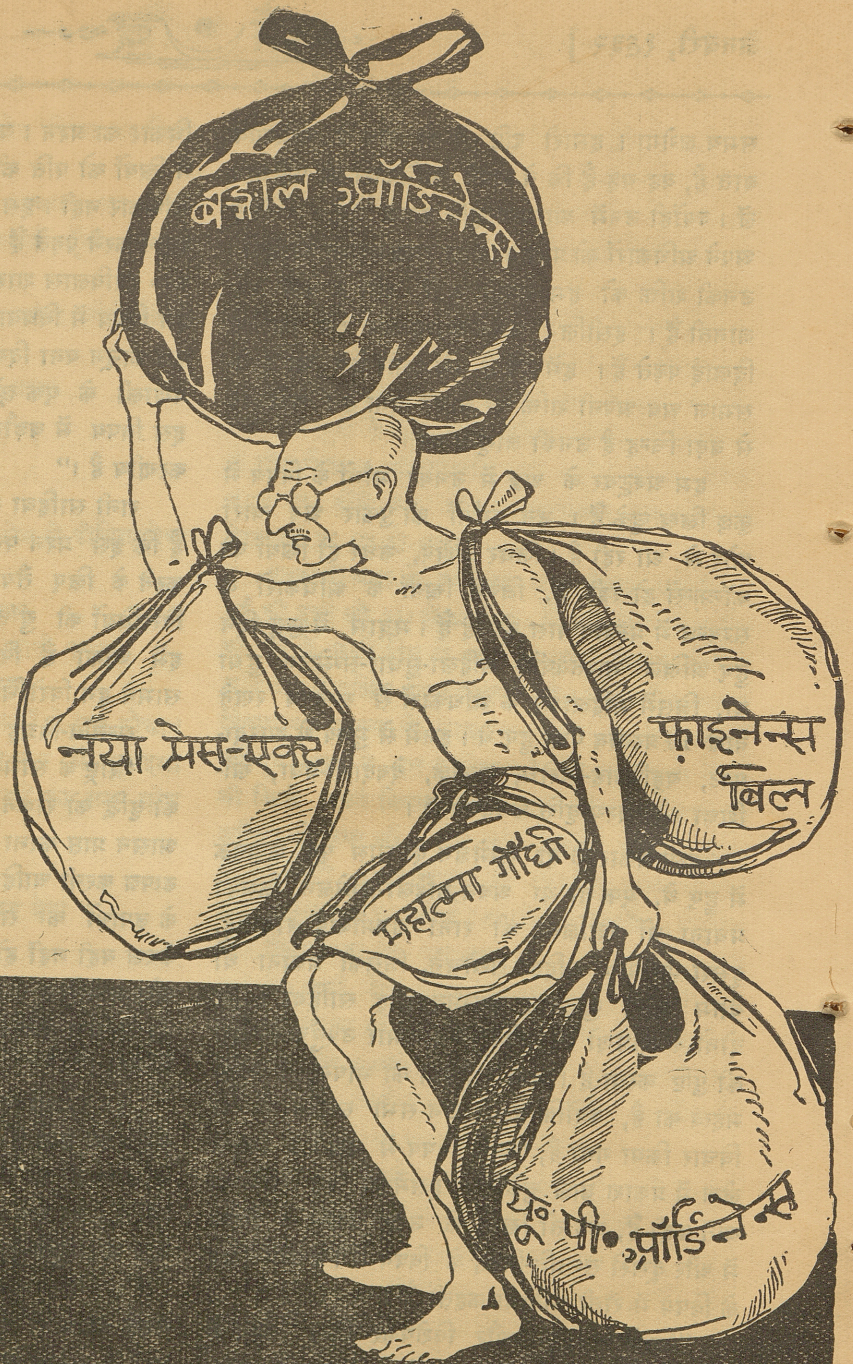
रानी साहिबा के इन वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रश्न पर स्त्रियाँ पुरुषों से कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं हैं। हम इस अधिकार के विरोधियों की युक्तियों का उत्तर पहले ही दे चुके हैं। हमें आशा है कि महिलाओं की तर्कपूर्ण बातों के सामने इन विरोधियों की युक्तियाँ लचर सिद्ध होंगी।

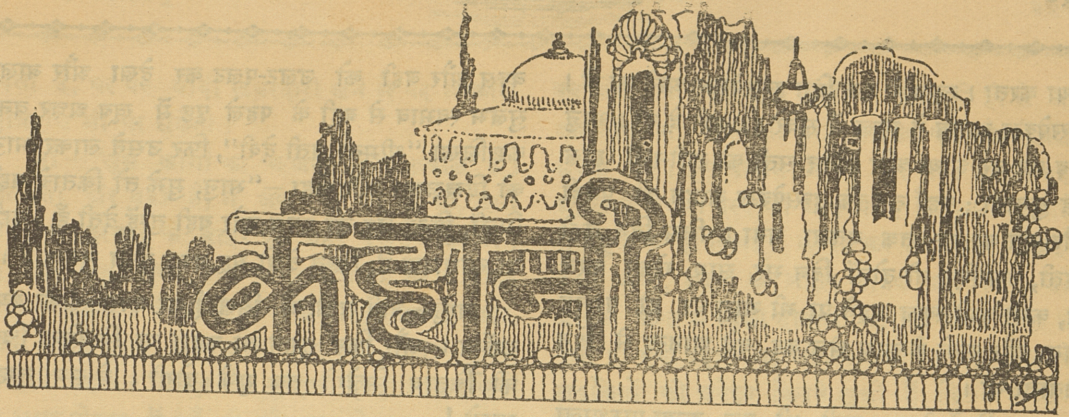
सन्तति-निग्रह के विषय में आपने कहा है:—

"राष्ट्र के सामने एक प्रमुख समस्या है, जन-संख्या की वृद्धि को रोकने की। यदि भारत को उच्च राष्ट्रों के साथ आसन प्राप्त करना है, तो उसे केवल योग्य सन्तानें ही उत्पन्न करनी चाहिए। इसके लिए हमें सन्तति-निग्रह के उपायों की सहायता लेनी पड़ेगी। इसका प्रभाव केवल यही नहीं होगा कि भारतीय स्त्रियों का शारीरिक और मानसिक भार कम हो जाय, बल्कि इससे आजकल की आर्थिक समस्या के हल करने में भी भारी सहायता मिलेगी।"

इन वाक्यों को पढ़ कर हमें बड़ा हर्ष हुआ है। अब समय आ गया है कि एक महिला सन्तति-निग्रह की आवश्यकता को अनुभव करके उसके प्रचार पर ज़ोर दे रही है। वह समय गया, जब कि इस प्रश्न को अश्लील और अधर्मयुक्त कह कर घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।

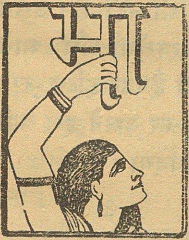
इन सब कामों में हमें आशा के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। अभी ये अङ्कुर मात्र हैं। परन्तु वह समय दूर नहीं है, जबकि ये बढ़ कर अपने फल दिखलाएँगे।


बङ्गाल ऑर्डिनेन्स
नया प्रेस-एक्ट
फ़ाइनेन्स बिल
महात्मा गाँधी
यू० पी० ऑर्डिनेन्स
H. Bagchi



वासना-रहित प्रेम

[श्री० राधागोविन्द जी, एम० ए०]



ई भानु, तुम आज इतनी देर तक कहाँ थे, मैं तुम्हें बहुत खोज रही थी।"

"क्यों सती, किसलिए तू मेरी खोज कर रही थी? आज स्कूल से आने में ही देर हो गई, रास्ते में तमाशा हो रहा था, वही देखने लग गया।"

"अच्छा मुझे नक़शे दो, आज ख़ूब अच्छे-अच्छे चित्र देना, कल का भी बाक़ी है।"

भानु ने चट अपने वर्ण-परिचय से फाड़ कर दो-तीन चित्र सती के हाथ में रख दिए। सती भी ख़ुश होकर उनके बारे में नाना प्रकार के प्रश्न करने लगी और भानु अपनी बुद्धि के अनुसार उनका उत्तर देने लगा। इसी बीच में नौकर ने आकर कहा—"सती, चलो माँ खाने को बुला रही हैं, खाकर फिर खेलना।" सती नौकर के साथ चली गई और भानु भी खाने को चला गया।

सती और भानु दोनों के घर के बीच कुल ५० गज़ की दूरी होगी, इसलिए दोनों एक साथ ही खेला करते थे। दोनों में बड़ा मेल रहता था। भानु को सती के साथ खेलने में जितना आनन्द मिलता था, उतना और किसी के साथ नहीं। हर रोज़ उसको विशेष आनन्द मिलता था, सती को ख़ूब अच्छे-अच्छे चित्र देने में। सती इन सबको लेकर बहुत ख़ुश होती थी। दो-तीन दिन तक उन्हें बड़े आनन्द से रखती, कभी दीवार में चिपकाती और कभी साथ लिए फिरती। लेकिन दो-तीन दिन के बाद चित्र स्वयं ही मैला होकर फट जाता या सती ही उसको फाड़ कर फिर नए-नए चित्र भानु से माँग लाती थी। भानु को इधर-उधर से चित्र जमा करने का बड़ा ही शौक़ था। पिता के सिगरेट के डिब्बों से,पुराने अख़बारों के पन्नों से, या सूचीपत्रों से वह बराबर चित्र जमा किया करता था। किन्तु इस पर भी वह बेचारा सती से लाचार था। वह बराबर उससे माँग लिया करती थी। कभी-कभी तो ऐसा होता था कि भानु का चित्रों का ख़ज़ाना बिल्कुल ही ख़ाली हो जाता, पर सती माँगने में नहीं हिचकती थी। भानु भी दाता कर्ण से कम नहीं था। अपनी किताब के पन्नों से चित्र फाड़ कर देने में भी आना-कानी नहीं करता। इसके लिए वह कई बार गुरु जी से मार तक खा चुका था, पर तो भी सती को चित्र देने में न जाने उसे कितना आनन्द मिलता था, कि वह मार को भी इस आनन्द के सामने कुछ नहीं समझता था।

भानु स्कूल से आते ही प्रतिदिन सती के घर जाता और दौड़ कर उसे बुला लाता, या वहीं खेलने लग जाता।

किसी-किसी दिन तो वह घर में खाने तक को जाना भी भूल जाता। सती भी स्कूल के बारे में हज़ारों प्रश्न भानु से करती और भानु एक-एक करके उन्हें जवाब

दिया करता। स्कूल में एक दिन इन्सपेक्टर आने को थे। इन्सपेक्टर साहब ने स्कूल में सवेरे ही छुट्टी दे दी। भानु दौड़ कर घर आया और जाकर सती को रत्ती-रत्ती हाल कह सुनाया ; यहाँ तक कि इन्सपेक्टर साहब की पगड़ी और जूते का रङ्ग तक बतला गया। जिस दिन छुट्टी रहती, उस दिन तो दोनों दिन भर साथ खेला करते ही, कभी-कभी स्कूल रहने पर भी भानु घर ही पर रह जाता और सती के साथ खेल कर बड़े आनन्द से दिन बिताता था।

कुछ दिनों के बाद सती भी एक कन्या-पाठशाला को जाने लगी। अब तो उनके तर्क के विषय और भी बढ़ गए। भानु अपने स्कूल की बात कह सुनाता और सती अपनी पाठशाला की। दूसरे वर्ष दोनों के स्कूलों में इनाम बटे। भानु को अपने दर्जे में द्वितीय होने का पारितोषिक मिला। सती को भी एक इनाम मिला। भानु के स्कूल में इनाम बटा १५वीं फ़रवरी को, लेकिन सती की पाठशाला में २री मार्च को बटने को था। भानु ने अपने इनाम की किताबें सती को दिखला कर कहा—देखो, हेड-मास्टर ने चुन-चुन कर कैसी अच्छी रङ्गीन किताबें मुझे दी हैं।

सती—उसमें क्या नक़शे भी हैं भाई?

भानु—"अवश्य हैं। यह देखो!"—कह कर भानु ने कई सुन्दर-सुन्दर चित्र सती को दिखलाए और कुछ ठहर कर फिर बोला—"सती, मेरे साथी सब कहते थे कि पारितोषिक की किताब किसी को नहीं देनी चाहिए, उसे बड़ी सावधानी से रखनी चाहिए।"

"लेकिन इसमें बड़े अच्छे-अच्छे चित्र हैं; यह मुझे दे दो।"

"अच्छा लो, किन्तु सावधानी से रखना, यह महाभारत है। ले जाओ, किन्तु जिल्द में भीतर की ओर सटा हुआ मेरे नाम का पारितोषिक का टिकट मुझे लौटा देना।"

"सावधानी से अवश्य रक्खूँगी और मुझे यदि बिना चित्र की किताब इनाम में मिली तो मैं तुम्हें दे दूँगी।"—यह कह कर सती नाचते-नाचते ख़ुशी से घर चली गई।

सती को इनाम में एक सुन्दर सिलाई का बक्स और जिल्द मढ़ी हुई बही मिली। सती ने घर जाते ही बक्स और बही को उलट-पलट कर देखा और बाल-सुलभ स्वभाव से बही के पहले पृष्ठ में ख़ूब अक्षर बना कर लिखा "श्रीमती सती देवी", फिर उसने लाकर भानु को दिखलाया और कहा—"भानु, मुझे तो किताबें नहीं मिलीं, किन्तु यह लो बक्स और बही तुम्हें देती हूँ। बही तो साधारण है, किन्तु देखो यह बक्स कैसा सुन्दर है।"

भानु—नहीं सती, मैं सिलाई का बक्स लेकर क्या करूँगा। और फिर तुमने तो कहा था कि बिना चित्र की किताब मिलेगी तब मुझे दोगी। ये सब तुम्हीं रक्खो!

सती—अच्छा तो यह बही रक्खो, इसमें तो सचमुच चित्र नहीं है। यह कह कर सती ने बही भानु के हाथ में दे दी।

भानु ने बही लेकर देखा, कैसी अच्छी जिल्द है। ऐसी जिल्द तो उसकी किताबों की भी नहीं है। उसने सोचा कि इसे बड़ी सावधानी से रक्खूँगा और आगे साल पास होकर इसमें अङ्गरेज़ी की हैण्डराइटिङ्ग ख़ूब बना-बना कर लिखूँगा। यह सोच कर उसने इस बही को सावधानी से अपने बक्स में रख दिया।

❀ ❀ ❀

भानु और सती का हेलमेल दिन-दिन बढ़ता गया। परन्तु यह कब तक चल सकता था? सती प्रायः १०-११ वर्ष की हुई। उसका स्कूल जाना बन्द कर दिया गया। एक दिन सती की माँ ने कहा—बेटी, आज से तू स्कूल न जाया कर।

सती के पिता भी वहीं थे, उन्होंने कहा—सो क्यों?

माँ—अब और स्कूल जाने का प्रयोजन नहीं है, उसे भी क्या तुम लोगों के ऐसा पढ़-लिख कर नौकरी या वकालत करनी है। अरे, लड़कियों को तो स्कूल इसलिए भेजा जाता है कि घर में रह कर वे नटखट हो जाती हैं, वहाँ कुछ देर तक अटकी तो रहें, और फिर लड़की अब होश भी सँभाल रही है। घर का काम-काज भी तो सीखना चाहिए।

पिता—लेकिन मेरा ख़्याल था कि अब तो ५-६ महीने रहे हैं, प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई शेष ही कर लेती—और तुम्हीं ने एक दिन मुझसे कहा था कि मास्टरनी ने कहला भिजवाया है कि सती बहुत अच्छा

पढ़ती है, घर पर थोड़ी ख़बरदारी लेने से वह सरकारी छात्रवृत्ति भी पा सकेगी।

माँ—"तुम लोगों का न जाने कैसा ख़्याल है। सती तो ख़ैर बड़ी है, मैं जब ८-९ वर्ष की थी, उसी समय से दरवाज़े के बाहर पैर नहीं रखने पाती थी। छात्रवृत्ति लेकर सती क्या करेगी, अब वह घर के बाहर नहीं निकलेगी।" पिता जी ने पहले तो कुछ कहना चाहा, फिर उनके हृदय में न जाने क्या भाव उत्पन्न हुआ; उन्होंने कहा—"अच्छा जो तुम्हारी इच्छा। लड़कियों के भरण-पोषण में माँ ही की राय से चलना अच्छा है।" यह कह कर वे बाहर चले गए। सती बड़ी उदास हुई। उस दिन उसने बड़े परिश्रम से पाठ याद किया था। तुरन्त उसे एक बात याद आ गई। उसने कहा—"माँ, किन्तु मेरा सिलाई का बक्स और बुनने के कई नमूने स्कूल में ही हैं, मैं जाती तो आज लेती आती।"

माँ—कोई ज़रूरत नहीं, उन्हें वहीं रहने दो, उन्हें लेकर क्या करोगी?

"नहीं माँ, वह मेरे इनाम की चीज़ है, उसे आज ले आने दो।"—यह कहते-कहते सती की आँखें डबडबा गईं।

माँ की नज़र सती की आँखों पर पड़ी, उसने कहा—अच्छा, मैं उन्हें मँगवा दूँगी।

सती ने कहा—नहीं माँ, दूसरा कोई मेरी अधबुनी चीज़ों को कैसे पहचानेगा, वहाँ और-और लड़कियों की भी बुनी हुई चीज़ें हैं।

माँ बोली—अच्छा तो आज भर जा, सब लेती आना, लेकिन कल से जाने की ज़रूरत नहीं है।

सती का स्कूल जाना बन्द हो गया। धीरे-धीरे परदे की ज़ञ्जीर में वह जकड़ी जाने लगी। सती का मन छटपटाने लगा। उसकी स्वच्छन्दता छिनने लगी। वह अब सिर्फ़ स्कूल ही नहीं जा सकती थी, बल्कि दौड़-दौड़ कर भानु के साथ खेलने या बातचीत करने में भी कुछ-कुछ बाधा होने लगी। धीरे-धीरे उसका घर से निकलना एकदम बन्द हो गया। भानु से स्वच्छन्दतापूर्वक मिलना और बातें करना भी बन्द होने लगा। यद्यपि भानु को उसके घर जाने में कोई रोक-टोक न थी, किन्तु तब भी जब बातें होती थीं, तो ज़रा औरों की नज़र बचा कर। धीरे-धीरे भानु ने भी सती के यहाँ का जाना-आना बन्द कर दिया। भेंट भी यदि होती तो कुछ दूरी ही से या बातचीत भी होती तो ज़रा रुक-रुक कर और सँभल-सँभल कर। इस बन्धन में पड़ कर सती का जी बड़ा अकुलाने लगा। परदे की आड़ में रह कर उसने दीवारों से बहुत झगड़ा किया। रह-रह कर उसके मन में लहरें उठने लगीं, हृदय के भीतर अनेक आन्दोलन उठे; लेकिन अन्त में पक्की दीवारों का आधिपत्य जैसा का तैसा ही बना रहा। वह सोचने लगी—"अहा! लड़के, लड़कियों की अपेक्षा कितने सुखी हैं, कितने स्वच्छन्द हैं। क्या किसी पूर्व जन्म के पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए ही स्त्री-कुल में जन्म लेकर घर में बन्द रहना पड़ता है? अथवा मातृ-कुल में जन्म ग्रहण करने की यह सज़ा है? या पुरुषों की यह स्वार्थपरता है? किन्तु कुछ भी हो—चारा क्या है?" भानु से भेंट करने तथा उससे स्वच्छन्दतापूर्वक बातें करने को उसका जी बहुत अकुलाने लगा।

इधर भानु ने भी देखा कि सती के स्नेह की धार अब रुक गई। रुक जाना ही उचित था। उसने सोचा कि सती के यहाँ जाना अब एकदम बन्द कर दिया जाय। पर जी नहीं मानता था। किसी न किसी बहाने कभी-कभी उसे जाना ही पड़ता। उसके मन में तर्क-वितर्क होने लगा; क्यों, जाना-आना बन्द करने की क्या ज़रूरत है? एक सुन्दर फूल को देख कर तो स्वभाव से ही मनुष्य का मन उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। बिल्ली के बच्चे के साथ हम बहुत दिनों से खेलते आ रहे हैं, उसे देख कर क्या स्वभाव से ही मेरा मन पुलकित नहीं हो उठता? इसमें दोष कहाँ है? प्राकृतिक आकर्षण को क्या कोई रोक सकता है? नहीं, पक्के हृदय से भी नहीं, पक्की दीवार से भी नहीं। तब फिर; तब फिर क्या? परमेश्वर का राज्य इतना विस्तृत है, तो उस राज्य के उत्कृष्ट निवासी मनुष्य-वर्ग का हृदय क्या इतना सङ्कीर्ण है? क्या वह निस्स्वार्थ भाव से किसी की ओर आकृष्ट नहीं हो सकता? क्या उसमें वासना-रहित अनुराग का बिलकुल ही स्थान नहीं है? भीतर से एक धीमी, लेकिन बड़ी ही ग्राह्य आवाज़ आई—"हाँ है, अवश्य है, पर सब किसी के लिए नहीं, सभी अवस्था में नहीं, वह प्रबल वेग से बहती हुई धारा को पार करने के लिए रक्खी हुई तलवार की धार की नाईं है; बहुत

सँभल कर चलना पड़ता है, पैर भी कटने का भय है और ज़रा डगमगाने से अथाह जल-तल में डूब मरने की नौबत भी आ जाती है।" जो हो, इन विचार-तरङ्गों का फल यह हुआ कि भानु ने सती के यहाँ जाने-आने में किसी प्रकार का दोष नहीं समझा। वह सती के यहाँ जाता ज़रूर था, लेकिन उससे बातचीत करने में ज़रा सहम जाता था। दोनों एक-दूसरे को देख कर ही निस्तब्ध रह जाते थे। किन्तु उस मूक दृष्टि में ही न जाने कितनी बातें भरी रहती थीं। एक-दूसरे के हृदय का भाव प्रकट करने में उनकी जीभ जो कमी करती थी, उसकी यथेष्ट पूर्ति उनकी आँखों से हो जाती थी। जीभ बेचारी कहती—"मैं विवश हूँ, मुझसे कुछ न हो सकेगा।" हृदय कहता—"कुछ परवाह नहीं, तू तो भाव व्यक्त करने की उपाय मात्र है, तुझसे नहीं तो तेरी बहिन आँख से ही मैं अपना सारा काम निकाल लूँगा।"

इसी तरह दिन बीतने लगे। पर यह भी कब तक चलने वाला था?

सती के पिता की आय बहुत अच्छी थी। हाईकोर्ट के एक नामी वकील के लड़के कुमार के साथ सती का विवाह हो गया। कुमार स्वयं भी वकालत पढ़ रहे हैं, अगले साल उनकी अन्तिम परीक्षा है, उसके बाद वे भी हाईकोर्ट ही में वकालत करेंगे। सती ससुराल को चली गई। सती के हृदय का स्रोत मानो रुक गया। भानु ने भी सती के जाने के दिन एक बार—अन्तिम बार उसे देख कर एक दीर्घ निश्वास त्याग किया और अपने मन को दृढ़ कर डाला। पर मूर्ख मन क्यों मानने वाला था? या उसे मूर्ख ही कैसे कहें? मूर्ख तो ठगा जा सकता है, पर मन को इधर-उधर की बातें बना कर क्या कोई ठग सका है? रह-रह कर उसके मन में नए-नए भाव उदय होने लगे। सती को वह भूलने की जितनी ही चेष्टा करता, उतना ही वह उलझन में पड़ जाता। सती की मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हो जाती। एक दिन उसके मन ने न माना, उसने सोचा, सती चली गई तो क्या, उससे पत्र-व्यवहार करने से जी को शायद कुछ चैन मिले। फिर विचार ने पलटा खाया। नहीं, पत्र लिखना बड़ा अनुचित होगा और फिर लिखा जाय तो क्या? आँखों के सामने देखने पर भी जिस सती के साथ, इधर कुछ दिनों से वह एक बात भी नहीं कर सकता था, उसके पास वह पत्र कैसे और क्या लिखता! फिर पत्र पाकर उसके परिवार के लोग अथवा सती ही क्या कहेगी। अब तो वह एक धनी-मानी और सुखी परिवार की कुल-वधू है। वह अब भानु के साथ खेलने वाली बचपन की भोली-भाली सती थोड़े ही है। नए सुखमय आवेष्ठन में भानु को क्या वह बिल्कुल ही भूल न गई होगी। इस तरह मन में अनेक तरङ्गें उठीं, पर लोक-लज्जा के अगाध जल में विलीन हो गईं।

❀ ❀ ❀

कई वर्ष बाद की बात है। भानु ने बी० ए० की परीक्षा फ़र्स्ट क्लास ऑनर्स लेकर पास की। डिप्टीगिरी की कोशिश में उन्होंने आसमान और ज़मीन एक कर दिया, पर कुछ फल न निकला और अन्त में निराश होकर एम० ए० पढ़ना पड़ा। घर वालों ने बहुत ज़ोर दिया, पर वकालत करने की राय उनकी बिल्कुल ही नहीं थी। एम० ए० पास करते ही उन्हें एक प्रोफ़ेसरी की जगह मिल गई।

भानु ने भी सोचा कि यदि रुपए का लोभ थोड़ा छोड़ दिया जाय तो प्रोफ़ेसरी से बढ़ कर अच्छा और कौन काम है? शान्ति भी है, स्वच्छन्दता भी है और उच्च ज्ञान उपार्जन करने का रास्ता भी खुला है। क्या देश की भलाई बेचारे ग्रामीणों को ठग कर और उनसे रुपए लेकर अपनी आय-वृद्धि करने में है या देश के नवयुवकों को सच्चा नागरिक बनाने की चेष्टा में? नए प्रोफ़ेसर होने पर भी छात्रों से मिलने और उनसे बातें करने का उन्हें बड़ा ही शौक़ रहता था। छात्र-सभाओं में व्याख्यान देना उनका विशेष काम था। इससे कुछ महीनों में ही सारे शहर में उनका नाम फैल गया। कुमार भी उसी शहर में वकालत करते थे। एक दिन प्रातःकाल उनके हाथ में एक नोटिस मिली। सन्ध्या को सात बजे प्रोफ़ेसर भानु का व्याख्यान था। विषय था "महाभारत का ऐतिहासिक महत्व"। एक तो उनकी वकालत अभी तक वैसी चली नहीं थी कि वे सार्वजनिक सभाओं को भूल जाते, दूसरे शनिवार का दिन था, अगले दिन रविवार को कचहरी भी बन्द थी, अतएव उन्होंने सभा में जाने का निश्चय किया। शाम को सभा में गए। वक्तृता जैसी ओजस्विनी थी, बातें भी उतनी ही गम्भीर, नूतन और सारगर्भित थीं। व्याख्यान

सुन कर लौटने में कुछ देर हो गई, घर आने पर स्त्री ने पूछा—"इतनी देर कहाँ हुई ?"

"आज एक सभा थी, वहीं व्याख्यान सुनने गया था।"

"किस विषय का व्याख्यान था ?"

"क्यों, विषय जान कर ही क्या समझोगी, जो इस प्रकार जानने को उत्सुक हो ?"

सती की उत्सुकता इस अपमान से कुछ और भी बढ़ गई, उसने कुछ आग्रहपूर्वक कहा—"भला ज़रा सुनूँ भी तो, किस विषय पर था ?" कुमार ने "ऐतिहासिक" और "महत्व" इतना समझाने का कष्ट लेना वृथा समझ, योंही पिण्ड छुड़ाने के विचार से ज़रा अन्यमनस्क होकर कहा—"वही महाभारत के विषय में था।" सती ने ज़रा अभिमानपूर्वक कहा—"तो महाभारत कौन सी बड़ी चीज़ है, जो उसे मैं नहीं समझ सकती; महाभारत तो मैंने कई बार पढ़ा है; और सो क्या आज से ? मैं तो बचपन से ही उसे पढ़ती आ रही हूँ; आज, आज ही मैंने पाँच-सात पृष्ठ पढ़े हैं।"

कुमार ज़रा आश्चर्यान्वित-से हो गए, पर उनके आश्चर्य में कुछ सन्तोष और आनन्द भी छिपा हुआ था। उन्होंने कहा—देखूँ-देखूँ, तुम्हारा महाभारत कैसा है ?

सुनते ही सती ने किताब लाकर कुमार को दिखा कर कहा—"यह देखो, आज कितने वर्षों से इसे मैं पढ़ती आ रही हूँ।" कुमार ने किताब हाथ में लेकर पन्ने उलटना शुरू किया। पन्ना उलटने के समय अचानक उनकी नज़र जिल्द की भीतरी ओर पड़ी, उसे देख कर वे ज़रा सहम गए। पर सती यह ताड़ नहीं सकी। उन्होंने ज़रा शङ्कित होकर पूछा—"सती, तुमने यह किताब कहाँ पाई ?"

सती ने कहा—क्यों, यह तो मैं पिता के घर से लेती आई हूँ, मेरे पड़ोस के रहने वाले बचपन में एक साथी थे, उन्हें यह स्कूल से पारितोषिक में मिली थी, उन्हीं से मैंने चित्रों के लोभ से यह पुस्तक ले ली थी, बल्कि उनके पारितोषिक का पुरज़ा इसमें अभी तक लगा ही होगा।

कुमार ने पूछा—आजकल वे कहाँ हैं ? क्या करते हैं ?

सती ने कहा—भला मैं क्यों जानने लगी ?

कुमार के मन में एक विचित्र भाव का उदय हुआ। उन्होंने इस साथी के बारे में सती से और कुछ पूछना चाहा, पर उनके पूछने के पहले ही सती ने अपने बचपन की बहुत सी बातें कुमार से कह सुनाईं। भानु से कैसे वह चित्र माँगा करती, भानु कैसे अपनी किताब से फाड़ कर चित्र देने में भी न हिचकता, इत्यादि बातें उसने कुमार से कह सुनाईं। कहने में उसे एक अपूर्व आनन्द होता था। बाल्यकाल की मधुर स्मृति एक चित्र-पट सी उसकी आँखों के सामने नाच गई। पर आह ! जिस अङ्गारे पर क्षार पड़ गया था, वह मानो फिर से चमक उठा। भानु का ख़्याल पुनर्जीवित करके क्षण भर के लिए उसने सुख पाया सही, पर उसके बाद केवल मनःकष्ट सहने के लिए ही।

दूसरे दिन कुमार प्रातःकाल ही उठ कर झट रात वाली किताब से, स्कूल का नाम, हेडमास्टर का दस्तख़त और उसकी तारीख़ नोट कर प्रोफ़ेसर भानु से मिलने को चले गए। उनसे मिल कर उनके कल के व्याख्यान के बारे में बहुत सी बातचीत कर, उन्होंने कब, किस स्कूल से, किस हेडमास्टर के समय में पास किया, इत्यादि सभी बातों का पता लगाया। कुमार को ज़रा भी सन्देह नहीं रहा कि यह भानु कौन हैं। चलने के समय कुमार ने भानु से कहा—"कल आपका मेरे यहाँ निमन्त्रण है।" भानु ने कुछ सोच-विचार कर, कुछ इधर-उधर तो किया, पर अन्त में उन्हें मञ्जूर ही करना पड़ा।

घर आकर कुमार ने सती से कहा कि कल एक मित्र का निमन्त्रण है, अतएव भोजन का उचित प्रबन्ध करना।

भानु कुमार को नहीं जानते थे, सो बात नहीं, वे जानते थे ज़रूर, और यह भी जानते थे कि वे सपरिवार यहाँ हैं। पर सती की स्मृति को बिसारने ही के विचार से वे इतने दिनों से कुमार से नहीं मिल रहे थे। बीच-बीच में उनकी इच्छा होती थी कि कुमार से मित्रता की जाय, पर इतने दिनों तक वे इस लोभ को रोके ही आ रहे थे, पर जब स्वयं कुमार ही उनके पास आए, तो अब और सोचने-विचारने का समय कहाँ था ? भानु ने निमन्त्रण स्वीकार तो किया, पर जाने में उन्हें बड़ा सङ्कोच मालूम होने लगा। एक गई हुई विपत्ति फिर

उनके सिर पर सवार हो गई। सती की स्मृति उन्हें फिर सताने लगी। तरह-तरह के विचार उनके मन में आने लगे। कभी सोचते—जाऊँ, जाकर कुमार बाबू को अपनी बाल्यावस्था का सारा वृत्तान्त कह सुनाऊँ और सती को भी किसी तरह परिचित करा दूँ। उसके बाद जैसा उचित हो, करूँ। कभी सोचते—नहीं; सती को मेरा पता बताने की ज़रूरत नहीं, योंही बाहर ही बाहर जाकर चला आऊँगा, सती को मालूम भी न होने पावेगा। फिर सोचते कि कुमार बाबू को ये सब बातें लिख भेजूँ और कभी यह सोचने लगते कि कोई बहाना कर उनके यहाँ जाऊँ ही नहीं। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया। १० बजे का निमन्त्रण है, ठीक ९½ बजे यहाँ से नौकर भेज कर कहलवा भेजूँगा कि शरीर अस्वस्थ है, जाने से विवश हूँ। उनके चित्त में कुछ शान्ति मिली। पर बला टालने से क्या? बाल्य-काल की स्मृति ने उनके मन में बड़ा ही उधेड़-बुन मचा डाला।

निमन्त्रण के दिन ठीक ९ बजे भानु ने नौकर को बुला कर एक चिट्ठी दी और कुमार बाबू का पता बता कर उन्हें चिट्ठी दे आने को कहा। नौकर चिट्ठी लेकर चला, पर तुरन्त ही लौट कर भानु से बोला कि कुमार बाबू स्वयं ही गाड़ी पर आ गए हैं! बेचारे भानु की मन की मन में ही रह गई। उन्होंने झट नौकर के हाथ से चिट्ठी वापस ले ली। भानु ने सोचा कि अब और कोई उपाय नहीं है—जाना ही पड़ा। कुमार और भानु दोनों साथ ही कुमार के घर आए।

घर आकर कुमार ने भानु को सम्मानपूर्वक अपने बैठकख़ाने में बिठलाया और आप उनसे क्षमा-प्रार्थना कर, कुछ देर के लिए भीतर गए। अन्दर जाकर उन्होंने सती से कहा—"सती, कल तुमने मुझे भानु का पता लगाने को कहा था, सो लो पता क्या, मैं उन्हें पकड़ कर लेता आया हूँ, यदि विश्वास न हो तो जाकर देख लो, वह मेरे बैठकख़ाने में बैठे हैं।"

सती अवाक् सी हो गई। उसने चौंक कर कहा—ऐं, तुम यह क्या कह रहे हो?

कुमार—"हाथ कङ्कण को आरसी क्या? यदि विश्वास न हो तो यहीं खिड़की से देख लो।" सती ने खिड़की से झाँक कर देखा, उसे मालूम हुआ मानो वह स्वप्न देख रही हो। उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो गया, आँखें डबडबा गईं। उसने आँखें मल कर फिर से देखा, चेहरा कुछ बदल गया था सही, पर वर्षों साथ खेले हुए व्यक्ति को पहचानने में कितनी देर लगती है?

सती ने घूम कर देखा, कुमार उसकी ओर टकटकी लगा कर देख रहे हैं। वह अपनी दशा पर लज्जित सी हुई, मन को बहुत दृढ़ किया, पर हृदय का भाव चेहरे पर छाप डालने से बाज़ न आया। कुमार सती के चित्त की सरलता से भली-भाँति परिचित थे। वे उसके चित्त की गति को ताड़ गए। उन्होंने चट कहा—"सती, मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ, तुम सचमुच सती हो, तुम-सी देवियों पर शङ्का करना मूर्खों का काम है, मेरा तुम पर पूरा विश्वास है। लज्जा की कोई बात नहीं; तुम्हारे बाल्य-बन्धु, मेरे नवपरिचित मित्र न भी होते तब भी उनसे सङ्कोच करने पर मैं तुम्हारे हृदय की सङ्कीर्णता पर बड़ा ही क्षुब्ध होता; और यह क्या? भानु तुम्हारे बाल्यकाल के साथ खेले हुए साथी हैं, मेरे भी मित्र हैं, और आज तुम्हारे अतिथि हैं। इनसे सङ्कोच कैसा? शीघ्रता करो। भोजन का समय हो आया है। मैंने दस बजे का निमन्त्रण दिया है, कुछ मिनट ही बाक़ी हैं, भोजन का प्रबन्ध करो और सारी रसोई तुम्हें ही परोसनी पड़ेगी।"

सती ने मन्त्र-मुग्धा सी होकर इन बातों को सुना। वह जानती थी कि उसके स्वामी का हृदय उदार है, उनके विचारों में सङ्कीर्णता नहीं है। वह यह भी जानती थी कि अतिरिक्त लज्जा और सङ्कोच, ये सब गुप्त वासना के लक्षण हैं। उसका हृदय स्वच्छ और स्नेहमय था। उसे पूरा विश्वास था कि भानु के प्रति उसका हृदय, जो स्वभाव से ही आकर्षित होता आ रहा है, उसमें वासना का स्थान नहीं है, वह निस्स्वार्थ और प्राकृतिक है। पर तो भी स्वामी के उदार विचारों की धारा में वह बह चली। उनके हृदय की उदारता को देख कर वह अपने भाग्य को सराहने लगी; आनन्द से गद्गद हो गई। मन ही मन उसने अनेक देव-देवियों को प्रणाम किया और अपने स्वामी के चरण का भी ध्यान किया; फिर अपने हृदय की चञ्चलता को बड़ी कठिनाई से रोक कर उसने कहा—"तो क्या इन्हीं के निमन्त्रण के लिए तुमने मुझे भोजन का प्रबन्ध करने को कहा था?"

कुमार ने हँस कर कहा—"हाँ-हाँ, इन्हीं के लिए।" यह कह कर वे बाहर को चले गए। कुछ देर के बाद दोनों भोजन करने को बैठे। सती ने स्वयं बड़ी दक्षता के साथ सब रसोई परोसना शुरू किया। भानु बेचारे को तो खाने को बैठना प्रलय मालूम होने लगा। गृहिणी को परोसती देख कर वह भौंचक से रह गए। उनका स्थूल शरीर तो वहाँ था, पर मन न जाने चील की नाईं कितने ऊँचे पर मँडरा रहा था। इधर कुमार उनके मन की दशा को देख रहे थे, उन्होंने कहा—"भाई चकित न हो, यद्यपि लज्जावश अपने मन की बातें तुम प्रकट नहीं कर रहे हो, पर मैंने सती से कल तुम्हारे बारे में सब सुना है। तुम उसके बाल-बन्धु हो, और मेरे मित्र हो, तुमसे सती सङ्कोच रक्खे, यह कौन सी बात?" यह कह कर उन्होंने व्याख्यान सुनने से लेकर निमन्त्रण देने जाने तक की पूरी-पूरी कथा दोनों के सामने कह सुनाई। भानु के भी जी में जी आया। मन ही मन उन्होंने कुमार की बड़ी प्रशंसा की। पर प्रकट में उनसे कुछ कहा न गया। भोजन के बाद भानु और कुमार बैठ कर बातें करने लगे। कुमार ने सती को बुलाया और कहा—"सती, यह तुम्हारी बड़ी अकृतज्ञता है, हमारी-इनकी तो दो दिन की मित्रता है, सो हमारी-इनकी बातचीत का तार नहीं टूटता और तुम्हारे आजन्म बन्धु होने पर भी तुम इनसे दो-चार बातें भी नहीं कर सकीं। लज्जा स्त्रियों का भूषण है, पर हित-मित्रों से अलग रहने का बन्धन बन जाना उस लज्जा के लिए भी लज्जा की बात है।"

बामन के हाथ में मानो किसी ने चाँद लाकर रख दिया और फिर लज्जा की ओट तो कुछ ही दिन की लगी हुई थी। हटते कितनी देर लगती? भानु बराबर कुमार के यहाँ आने-जाने लगे, तथा सती से कहीं अधिक उनका आदर-सत्कार स्वयं कुमार ही करने लगे। सती और भानु का सङ्कोच भी धीरे-धीरे हटने लगा। दोनों के हृदय-दीपों के बीच जो कई वर्षों से एक पर्दा पड़ा हुआ था, वह धीरे-धीरे खिसक गया और एक की ज्योति जाकर दूसरे पर पड़ने लगी।

❀ ❀ ❀

इसके कुछ दिनों के बाद भानु बीमार पड़ गए। सती और कुमार स्वयं जाकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। बीमारी कुछ कठिन न थी, भानु शीघ्र ही चङ्गे हो गए। इसी बीच कुमार ने एक दिन सती से कहा—"सती, भानु अकेले ही अपने डेरे में रहते हैं और हम लोगों का भी तो इतना बड़ा मकान है। परिवार के और सब लोग भी तो अब सदा घर ही पर रहते हैं। यहाँ रहने वाले तो हमी दो हैं। यदि तुम्हें किसी तरह की आपत्ति न हो, तो मैं उन्हें यहीं साथ ही रहने को कहूँ।" सती ने मन ही मन ख़ुश होकर कहा—"आपत्ति! मुझे आपत्ति!! और सो भी क्या, तुम्हारी राय के विरुद्ध?"

दूसरे ही दिन कुमार ने भानु से यह बात छेड़ी। भानु ने कई प्रकार की आपत्तियाँ बतलाईं, पर कुमार ने एक न मानी। अन्त में भानु को भद्रोचित व्यवहार के विचार से मानना ही पड़ा। भानु और कुमार एक ही साथ रहने लगे।

एक दिन भानु अपने कमरे में बैठे सती से बातें कर रहे थे। सती टेबिल पर रक्खी हुई एक बही को लेकर उलट-पलट रही थी। ज्योंही उसने पहला पन्ना खोल कर देखा कि वह चौंक गई। उसने भानु से पूछा—यह बही कहाँ से आई?

भानु ने मुस्करा कर कहा—तुम्हीं कहो न?

"नहीं, सच पूछती हूँ, ठीक-ठीक बताओ।"

"यह तुम्हारी ही दी हुई है। याद है? तुम्हारी हस्तलिपि साक्षी है, पन्ना उलट कर पहचान लो।"

सती को सब बातें स्मरण हो आईं। स्नेह का स्रोत बह चला और वह उसी में तैरने लगी। उसने ज़रा सङ्कुचित होकर कहा—तो इतने दिनों तक तुम इसे रक्खे हुए थे?

भानु ने हँस कर कहा—हाँ, इसी दिन के लिए। नहीं तो इतना आनन्द कहाँ से आता?

"वाह! तुम तो बड़े सञ्चयी मालूम होते हो?"

"तो तुम्हीं कौन कम हो? महाभारत भी तो तुम रक्खे ही हो।"

"उसकी बात छोड़ दो। वह एक धर्म-पुस्तक है; उसमें धर्मराज युधिष्ठिर की कहानी के साथ-साथ धर्म की शिक्षा भरी है; उसकी बराबर आवश्यकता भी पड़ती है। उसे सञ्चित कर रखने में आश्चर्य क्या है?"

"तो यह भी मेरे लिए एक पूज्य पुस्तक है, इसमें मेरी धर्म की बहिन की हस्तलिपि के साथ-साथ उसके बाल्य-काल की स्मृतियाँ भरी हैं और यह देखो, मेरे कॉलेज में पढ़ने के दिन के लिए हुए अनेक नोट हैं, जिनकी मुझे हाल ही में एक लेख लिखने के समय आवश्यकता पड़ी थी। इसे ही रखने में आश्चर्य क्या है?"

इसी बीच में डाकिए ने आकर एक पार्सल और एक इनशियोर लिफ़ाफ़ा दिए। डाकिए को देख कर सती ज़रा हट गई, पर उसके जाने के बाद, उसने आकर पूछा—कहाँ की चिट्ठी थी?

भानु ने कहा—चिट्ठी नहीं थी, एक पार्सल और एक इनशियोर थे।

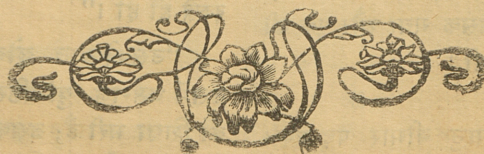
सती ने पूछा—"पार्सल में क्या है? और यह इनशियोर कैसा?" भानु ने चट पार्सल खोल कर उसमें से कई चित्र निकाल कर सती को दिखलाते हुए कहा—"पहचानती हो, यह किसका चित्र है?"

सती बड़े ग़ौर से देखने लगी, और एकटक देखती रह गई। लेकिन भानु चुप न रह सके, उन्होंने चट कह ही डाला—यह मेरी बाल्यावस्था का फ़ोटो है, उसे ही इनलार्ज करके मँगवाया है।

सती की आँखों में आँसू भर आए। भानु के साथ लड़कपन में दौड़ने-खेलने के दिन के सभी चित्र उसकी मानस-चक्षु के सामने बायस्कोप की फ़िल्म की नाईं दौड़ गए। उसने हँस कर कहा—देखो, तुमसे चित्र माँगने का शौक़ मुझे अब तक नहीं गया है, इसमें से एक प्रति मुझे दे दो।

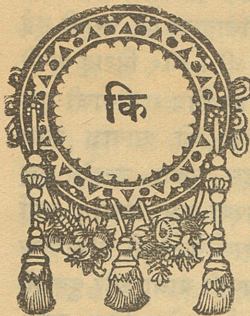
भानु ने भी मुसकरा कर कहा—"तो मुझे देने में भी जो आनन्द मिलता था, वह आज और भी बढ़ गया है।"—यह कह कर उसने चट अपनी जेब से फ़ाउण्टेन पेन निकाल कर फ़ोटो के एक कोने में लिख दिया—"To my sister, in memory of my younger days". (बहिन के प्रति बाल्यकाल का स्मारक) और सती के हाथ में दे दिया। और इनशियोर का लिफ़ाफ़ा दिखलाते हुए कहा—"यह देखो, मैंने हाल ही में 'महाभारत का ऐतिहासिक महत्व' के विषय पर जो व्याख्यान दिया था, उसी के आधार पर एक लेख लिख कर एक मासिक पत्र में भिजवाया था, वहीं से यह पुरस्कार-स्वरूप एक सौ रुपए का नोट आया है। यह मेरे प्रथम लेख का पुरस्कार है, अतएव इसे पुरस्कार ही में व्यय करना चाहिए। जिस स्कूल में मुझे पहले पारितोषिक में वह महाभारत की पुस्तक मिली थी, उसी के हेडमास्टर के पास इसे भेज देता हूँ।" यह कह कर उन्होंने तुरन्त एक पत्र स्कूल के हेडमास्टर के नाम लिख डाला। पत्र में लिखा था कि "ये रुपए जमा कर दिए जायँ और इसके ब्याज से प्रति वर्ष विद्यार्थियों को पारितोषिक दिए जायँ।" किस विषय में पारितोषिक दिया जाय, इन सबका अधिकार उन्होंने स्कूल पर ही छोड़ दिया। अपनी ओर से उन्होंने सिर्फ़ दो ही बात का अनुरोध किया। एक तो यह कि पारितोषिक की किताबों में से एक सचित्र महाभारत अवश्य हो और दूसरा यह कि प्राइज़ का नाम रहे 'सती-बन्धु पारितोषिक।'

एक सौ रुपए और अपने पास से मिला कर उन्होंने दो सौ रुपए और पत्र उसी दिन की डाक से भेज दिए। दूसरे दिन सती ने भी कुमार से पूछ कर अपनी कन्या-पाठशाला में २००) का एक चेक और एक पत्र लिख भेजा। पत्र में लिखा था कि "इन रुपयों के ब्याज से लड़कियों को कपड़े पर सूत की बिनाई से सर्वोत्तम चित्र खींचने के लिए एक वार्षिक पारितोषिक दिया जाय और पारितोषिक की वस्तुओं में एक सिलाई का बक्स, एक जिल्द बँधी हुई बही और सती सावित्री आदि देवियों के कुछ चित्र अवश्य हों और पारितोषिक का नाम रहे—'भानु-भगिनी पारितोषिक।'



जापानी बौद्ध भिक्षु श्री० नोगुची

[श्री० सुरेन्द्र शर्मा]



किन्ज़ाहिराइ (Kinza Hirai) टोकियो (जापान) के महिला-विश्वविद्यालय और कमर्शल कॉलेज में अङ्गरेज़ी के प्रोफ़ेसर थे। उनके एक मित्र थे ज़ेंशिरो नोगुची (Zenshiro Noguchi)। ये दोनों ही सज्जन स्वर्गीय सरदार पूर्णसिंह के बड़े मित्र थे। सन् १९०३ में सरदार साहब जापान गए थे। वहाँ कोब (Kobe) में वे ज़ेंशिरो नोगुची से मिले थे। इसके तीन वर्ष बाद यहाँ सरदार साहब को उन दोनों भिक्षुओं के देहावसान का समाचार मिला। इस पर उन्होंने उक्त दोनों ही बौद्ध भिक्षुओं की स्मृति में एक बड़ा सुन्दर लेख लिखा था।

ज़ेंशिरो नोगुची बड़े प्रतिभाशाली कवि, चित्रकार और बौद्ध तत्वदर्शी थे। आन्तरिक, आध्यात्मिक अनुभूति का आनन्द वे प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने मानवीय और ईश्वरीय बातों में विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त किया और उन दोनों ही तत्वों को अपने दैनिक जीवन में मिला दिया। उनका दैनिक जीवन निरन्तर प्रवाहित होने वाली काव्य-धारा की तरह रहस्यपूर्ण और सङ्गीत-मय था। वह एक ऐसी सङ्गीत-ध्वनि थी, जो प्रातःकाल पहाड़ी के नीचे के किसी मन्दिर में पर्वत-मालाओं से गिरते हुए झरने की भाँति सुनाई देती है। नोगुची पूर्णतया कविता के आनन्द पर, और केवल उसी के लिए जिए। उन्होंने अपने जीवन में केवल एक ही बार लिखा। लिखा भी क्या ? अपने दो वर्ष के बच्चे की एक जीवन-कहानी। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त एक-एक क्षण का उसमें हाल था। उस कहानी की हस्त-लिखित प्रति सरदार पूर्णसिंह जी को दिखलाते हुए उन्होंने कहा था—यह छोटे बच्चे के सम्बन्ध में सब कुछ है, मैंने प्रति क्षण उसकी छोटी से छोटी सुख-दुःख की बातें लिख ली हैं। यह भविष्य के लिए एक सन्देश की तरह है।

ज़ेंशिरो नोगुची की यह हस्तलिखित पुस्तक सच-मुच उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति थी। परन्तु शायद वह कभी प्रकाशित नहीं हुई। ज़ेंशिरो ने सरदार साहब से कहा था कि मैं बच्चे के साथ ही सोया और जागा हूँ और हर तरह से मैंने इस पुस्तक को पूर्ण बनाने की चेष्टा की है। इसे पूरा करने में कोई कोर-कसर नहीं रक्खी गई। यह बात तब की है, जब सरदार साहब ने कोब में ज़ेंशिरो से अन्तिम भेंट की थी। उन्हीं दिनों नोगुची का विवाह हुआ था और वे सनराइज़ पेट्रोलियम ऑफ़िस में काम करते थे।

जब ज़ेंशिरो नोगुची के हृदय में हर्ष का पारावार उमड़ता था, जब उनके रोम-रोम से आनन्द-धारा फूट पड़ती थी, जब उनके नेत्र एक विशेष प्रकार की ज्योति से रक्त-वर्ण हो जाते थे, जब उनका मुख-कमल भगवान बुद्ध के दिव्य प्रकाश से खिल उठता था, तभी वे अपने उस हर्ष को प्रकट करने के लिए, अपने ब्रुश को दो-तीन बार चला कर कोई चित्र खींच डालते थे और उसके दूसरी ओर चीनी शब्द-सूचक चिह्नों में कोई कविता लिख देते थे। जब कोई मित्र मिलने जा पहुँचता, तब वे अपनी उस कृति को उसको भेंट कर देते। वे प्रायः चुपचाप रहा करते। बहुत थोड़ा बोलते। परन्तु जब कभी वे दो-चार विनोद-पूर्ण वाक्य कहते, तब उन्हें सुनने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न हो जाता था। उनका स्वभाव बड़ा विनोद-प्रिय था।

सन् १८९३ में बोस्टन (अमेरिका) में विविध धर्मा-नुयायियों की एक विराट सभा हुई। बौद्ध धर्म के प्रति-निधि की हैसियत से उसमें श्री० ज़ें० नोगुची और श्री० के० हिराइ दोनों ही सम्मिलित हुए। श्री० हिराइ भी एक बौद्ध भिक्षु थे। उनके वहाँ बड़े प्रभावशाली और वाग्मितापूर्ण भाषण हुए। इसी कारण डॉक्टर बैरोज़ ने सदा उनके नाम के साथ 'वाग्मी' शब्द का प्रयोग

किया। श्री० नोगुची बिल्कुल चुप रहे। एक प्राइवेट सेक्रेटरी की तरह उन्होंने अपने मित्र की सेवा की और अमेरिका की 'प्रजासत्ता' की भावना को चुपचाप जज़्ब कर गए।

अमेरिका से वापस आकर जापान में उन दोनों ने कुछ काम करने की बात सोची। श्री० हिराइ ने अब बौद्ध-मन्दिर में पुजारी का काम करना छोड़ दिया। श्री० ज़ें० नोगुची के केवल माँ के सिवा और कोई न था। अमेरिका जाने से पहले उन्होंने दो वर्ष तक उनकी सेवा के लिए काफ़ी रुपए-पैसे का इन्तज़ाम कर दिया था। वे दोनों ही व्यक्ति अमेरिका में एक वर्ष तक रहे थे। इस समय उनके ऊपर ख़र्च आदि की कोई बड़ी ज़िम्मेदारी न थी। अमेरिका से लौट कर श्री० हिराइ अपने मन्दिर में नहीं गए और न श्री० ज़ें० नोगुची अपनी माँ के पास ही। उन्होंने 'तीर्थयात्री' के रूप में देश के भीतरी भाग में भ्रमण करने और अधिक से अधिक संख्या में देशवासियों के सामने अपने अमेरिका के अनुभव सुनाने का निश्चय किया।

जापानी तीर्थयात्री को बड़ा विचित्र वेष-भूषा धारण करना पड़ता है। एक चुस्त नीले रङ्ग का पाजामा, बदन में कुरती, सर पर ढेर-भरे फूस का छातानुमा टोप, जिसकी डोरी ठोड़ी के दोनों ओर बँधी हुई और हाथ में छड़ी तथा पैरों में फूस की खड़ाऊँ, बस यही जापानी तीर्थयात्री की पोशाक है। यात्री यह प्रण करके अपनी यात्रा का श्रीगणेश करता है कि वह सब मन्दिरों की परिक्रमा पैदल चल कर करेगा। वह देश के मन्दिरों की परिक्रमा के लिए माँगता-खाता जाता है और जो कोई दानी उसे कुछ दे देता है, उसी से वह सन्तुष्ट रहता है। यह अस्थायी भिक्षुक वृत्ति गाँवों के सीधे-सादे आदमी स्वयं ही अख़्तियार कर लेते हैं।

श्री० नोगुची और श्री० हिराइ तीर्थयात्री के वेष में चल पड़े। उन्होंने अपने कवियों-से उपनाम रख लिए। उन्होंने एक वर्ष में कठिन पैदल यात्रा करके देश भर की देहाती जनता को अपने अमेरिका के अनुभव बता दिए।

एक वर्ष के बाद वे ओसाका पहुँचे। ओसाका जापान का एक बड़ा औद्योगिक नगर है। वहाँ पहुँच कर उन दोनों मित्रों ने रहने का एक दूसरा ढङ्ग निकाला और अपना वेष बदल लिया। अब उन्होंने ख़ुद कमा कर अपना निर्वाह करना चाहा। दानी लोगों के दान पर निर्भर रहते-रहते वे परेशान हो चुके थे। उन्होंने घूम-फिर कर सोडा-वाटर बेचने की दुकान खोल ली। श्री० ज़ें० नोगुची ने अपने दोनों कन्धों में बराबर वज़न की तख़्ते की पेटियाँ लटका लीं, जिसमें एक ओर बर्फ़ तथा और चीज़ें, तथा दूसरी ओर सोडावाटर की चमती हुई बोतलें आसानी से रख ली गई थीं। श्री० हिराइ अपने मित्र के आगे-आगे चले। दोनों ही मित्र गली-गली घूम कर, 'बर्फ़-बर्फ़', 'लेमनेड-लेमनेड' की आवाज़ लगा कर सोडावाटर बेचने लगे। इस प्रकार उन्होंने कुछ समय तक गुज़र करने के लिए रुपया कमा लिया। गर्मी समाप्त होने पर इन दो महान दार्शनिकों की सोडावाटर की दुकान भी बन्द हो गई। अपनी यात्रा और दुकानदारी का काम करते हुए उन्हें अधिक से अधिक अपढ़-कुपढ़ किसानों के संसर्ग में आने का अवसर मिला। इससे उन्हें ग़रीब किसानों को जीवन और श्रम से सम्बन्ध रखने वाली नई-नई बातें बताने में सफलता मिली। दोनों ही दार्शनिक अपने अथक परिश्रम से इस अवसर पर अपने देश के किसानों को जीवन-संग्राम के लिए बिल्कुल नई दिशा सुझाने में समर्थ हो सके।

श्री० ज़ें० नोगुची और श्री० हिराइ ओसाका में एक दूसरे से अलग हो गए। अब वे दोनों ही अपने लिए नया क्षेत्र ढूँढने लगे। कुछ ऐसा मालूम पड़ता था कि जीवन-निर्वाह की समस्या को वे तत्परता से सुलझा ही नहीं रहे थे। उनका अधिकांश समय स्वयं अपने आप में मग्न रहने में बीतता था और आन्तरिक चेतना की अत्यन्त आनन्ददायिनी स्थिति ने उन्हें 'आज' और 'कल' की रोटी की समस्या की ओर से लापरवाह बना दिया था। उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं थी कि आज या कल क्या खाएँगे! साधारण आदमी जिसे 'कर्तव्य' या 'काम-काज' के नाम से पुकारते हैं, उसकी ओर तो वे बेहद ग़ैर-ज़िम्मेदार थे। असल बात यह है कि उन्होंने दैवी आनन्द की मदिरा का पान किया था, अतः वे मस्ती की बातें करते थे और अपने अन्तस्तल के आनन्द में विभोर होकर विचरते थे। इन्हीं सब कारणों से यह कहना पड़ता है कि उनके सब काम किसी दैवी प्रभाव से अपने आप ही होते थे, क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने सम्बन्ध में कुछ सोचना ही छोड़ दिया था। उन्होंने

अपनी देख-भाल करनी छोड़ दी थी, इसलिए उनकी देख-भाल कोई अदृश्य शक्ति करती थी। जिस प्रकार चिड़ियाँ एक डाली से दूसरी डाली पर नाचती, उड़ती और गाती हैं, इसी प्रकार ये दोनों दार्शनिक रहते और सर्वत्र प्रेम-पीयूष का वर्षण करते थे। उन्हें समय की परवा नहीं थी, परन्तु फिर भी उनका प्रत्येक काम समय पर होता था।

श्री० नोगुची ओसाका में अपने मित्र से विदा होकर अपनी बूढ़ी माँ से मिलने गए। बूढ़ी माँ को अब भूखों मरने की नौबत आ चुकी थी, इसलिए कि उसके पुत्र ने जो कुछ उसे खाने-पीने को दिया था, वह समाप्त हो चुका था। माँ ने श्री० नोगुची को आज्ञा दी कि वे कहीं नौकरी कर लें, और कहा कि इस दुनिया में आज़ादी से घूमना सच्चे धर्म का सार नहीं है। श्री० ज़ें० नोगुची ने उसकी आज्ञा के सामने सर झुका दिया और तुरन्त ही घर से निकल पड़े।

एक-दो घण्टे के बाद वे टोकियो में रेलवे के एक डाइरेक्टर के सामने उसके दफ़्तर में पहुँचे। ज़ेंशिरो ने बड़े अदब के साथ झुक कर डाइरेक्टर को सलाम किया और पूछने पर अपना नाम बता दिया नौम-डे-प्लूम (Nom-de-plume)। यह नाम उन्होंने अपने मित्र के साथ जापान आकर स्वयं ही बदल लिया था। अमेरिका में उन्होंने जो काम किया था, जापानी अख़बारों ने उसकी बहुत प्रशंसा की थी, अतः दोनों ही दार्शनिक बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे। लोगों की प्रशंसा की बाढ़ से अलग रह कर दिन काटने के लिए उन्होंने अपने आपको छिपाए रहने की ग़रज़ से अपने नाम बदल लिए थे।

डाइरेक्टर ने नोगुची से कहा—मुझे मालूम हुआ है कि तुमने रेलवे के महकमे में किसी जगह के लिए दरख़्वास्त दी है?

नोगुची ने बड़े अदब के साथ उत्तर दिया—जी हाँ।

डाइरेक्टर—तुम्हारी योग्यता क्या है? और तुम किस तरह की नौकरी चाहते हो?

नोगुची—हुज़ूर, कोई भी जगह हो। मेरी योग्यता यह है कि मैं प्लेटफ़ॉर्मों को बहुत अच्छी तरह झाड़ सकता हूँ। यदि आप कृपा कर मुझे यह जगह दे दें तो अच्छा हो। मैं थोड़ी-बहुत जापानी भाषा लिख सकता हूँ और ग़लत-सलत कुछ अङ्गरेज़ी भी जानता हूँ। क्लर्क का काम कर सकूँगा। कुछ भी काम कर लूँगा, क्योंकि अपनी बूढ़ी माँ के गुज़ारे के लिए प्रति दिन कुछ कमाना चाहता हूँ। मैं विवाहित नहीं हूँ, इसलिए मेरे सर पर बहुत बोझ नहीं है।

डाइरेक्टर ने सर से पैर तक नोगुची को देख कर कहा—तुम बहुत होशियार आदमी मालूम पड़ते हो, पर तुम अपनी माँ की परवरिश के लिए कोई भी काम, यहाँ तक कि प्लेटफ़ॉर्म झाड़ने का छोटे से छोटा काम भी, करने के लिए तैयार हो! मैं तुम्हारी इस बात की प्रशंसा करता हूँ। मेरे पास इस समय एक जगह ख़ाली है। मैं तुम्हें क्योटो में स्टेशन का क्लर्क नियुक्त करता हूँ। क्या तुम इस काम को करोगे? इस काम के लिए तुम्हें १५ यन* (Yen) मासिक मिलेंगे। मुझे दुःख है कि इस समय इसके सिवा मेरे पास और कोई काम नहीं है। मुझे आशा है कि तुम धीरे-धीरे आगे बढ़ कर उन्नति कर जाओगे।

श्री० नोगुची ने इस कृपा के लिए डाइरेक्टर को निहायत अदब के साथ धन्यवाद दिया और कहा—"हुज़ूर, इससे मेरा काम चल जायगा। मुझे पता नहीं कि मैं अपने काम से मालिक को ख़ुश रख सकूँगा या नहीं, पर मैं भरसक कोशिश करूँगा।" इतना कह कर नोगुची ने डाइरेक्टर को 'सलाम' किया। डाइरेक्टर ने प्रसन्नता से, सलाम का उत्तर स्वयं सलाम करके दिया।

क्योटो का स्टेशन-मास्टर कुछ घमण्डी था। वह जानता था कि अपने मातहतों पर किस तरह हुकूमत करते हैं। हर एक आदमी उससे डरता था। स्टेशन का बेचारा नया क्लर्क भी उससे डरने लगा। श्री० नोगुची को यदि कोई मसविदा तैयार करने को दिया जाता तो उसमें वे जान-बूझ कर एक दर्जन से भी अधिक ग़लतियाँ इसलिए कर देते जिससे स्टेशन-मास्टर को मसविदों को काट-छाँट कर सुधारने में, उनके ऊपर रोब गाँठने का पूरा अवसर मिल सके। स्टेशन-मास्टर जब श्री० नोगुची के लिखे मसविदे को ठीक करता, तब उनको बुरा-भला कहता, उन पर चिल्लाता और गालियाँ

* जापानी सिक्का।

सुनाता उस डाइरेक्ट को, जो ऐसे ज़िम्मेदारी के कामों पर नालायक़ नौजवानों को भेज देता था। श्री० नोगुची क्योटो में लगभग एक वर्ष तक रहे। प्रतिदिन वे बराबर ग़लतियाँ करके स्टेशन-मास्टर के क्रोध का शिकार बनते रहे। स्टेशन-मास्टर अपने क्रोध पर यह समझ कर ख़ुश हो लेता था कि मैं अपनी उस सर्वोच्च प्रतिभा को विकसित कर रहा हूँ, जो क्योटो स्टेशन के अहाते भर में किसी के पास नहीं है। अपने दिमाग़ के बढ़िया ढाँचे में, स्टेशन-मास्टर यह तक समझने में असमर्थ रहा कि सब मातहत एक से नहीं होते। इसलिए वह समय-समय पर श्री० नोगुची को मेज़ और दफ़्तर साफ़ करने तथा उस स्टोव में कोयला जलाने का हुक्म भी दे डालता था, जो उसके दफ़्तर के कमरे को गर्म करने के लिए काम में लाया जाता था। श्री० नोगुची मन लगा कर वे सभी काम कर डालते थे, जो उन्हें करने को दिए जाते थे। पर वे उसकी काहिली से बहुत असन्तुष्ट थे। स्टेशन-मास्टर दफ़्तर का काम ख़ुद कर लेता और अपने क्लर्क को चूल्हा जलाने, कमरे में आग जलाने, घरेलू काम करने, अपनी स्त्री के लिए तरकारियाँ ख़रीदने आदि छोटे-मोटे कामों के लिए भेज देता था। सदा की तरह श्री० नोगुची इन सब बातों पर तनिक भी ध्यान न देते थे। उनके हाथ-मुँह धूल और धुएँ से रँग जाते थे। इसी कारण दफ़्तर में काम करते हुए भी उनकी सूरत एञ्जिन में काम करने वाले क़ुली की सी दिखाई देती थी, क्लर्क की सी नहीं।

क्योटो में एक ग़रीब बूढ़ी औरत का एक मकान था। श्री० नोगुची ने वहीं अपने रहने की जगह चुन ली। उनकी माँ टोकियो में रह गईं। इस बूढ़ी महिला ने श्री० नोगुची की सेवा बड़े उत्साह से की। उसे कुछ ऐसा मालूम पड़ा, मानो इस नए मेहमान के साथ ही उसके लिए कोई दिव्य आशीर्वाद आया हो। जिस दिन श्री० नोगुची यहाँ आकर ठहरे, उसी दिन दो और मेहमान आ गए। श्री० नोगुची का अङ्गरेज़ी का ज्ञान बड़ा उपयोगी था। वे चित्रकार भी थे, अतः उन्होंने अपने मकान की मालकिन के लिए बहुत से चित्ताकर्षक विज्ञापन बना दिए, जो आने वाले विदेशी यात्रियों का ध्यान उस स्थान की ओर आकर्षित करते थे। धीरे-धीरे यह जगह मशहूर होने लगी। एक-दो वर्षों में तो यह ऐसे विदेशी यात्रियों के लिए अच्छा-ख़ासा एक होटल बन गया, जो विदेशी ढङ्ग के होटलों और दुभाषियों की सहायता के बिना जापानी संस्थाओं तथा वहाँ के अन्य स्थानों के सीधे संसर्ग में आना चाहते थे। मेहमानों के लिए श्री० नोगुची स्वयं जापानी थे। बहुत से अमेरिकन मित्रों को श्री० नोगुची को वहाँ देख कर बड़ा आनन्द और आश्चर्य हुआ। श्री० नोगुची की उपस्थिति से क्योटो का यह होटल दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया।

सूर्यास्त होने पर क्योटो के मन्दिरों में जैसे ही घण्टे बजते, वैसे ही श्री० नोगुची गृहस्वामिनी की छोटी लड़की को अपनी गोद में ले लेते और उसे कहानियाँ सुनाने लग जाते। उन अत्यन्त मनोरञ्जक कहानियों में, जिन्होंने उस छोटी लड़की की आत्मा को चमका दिया, श्री० नोगुची ने अपनी आत्म-कहानी इतने प्रभावशाली ढङ्ग से सुनाई कि लड़की ने जीवन की उस आग को पकड़ लिया जिससे उसके हृदय में जापान की एक महान महिला बनने की आकांक्षा जाग्रत हो उठी। लड़की ने अपनी माँ से ज़ोर देकर कहा कि मुझे स्कूल भेज दो। श्री० नोगुची ने भी उसे प्रोत्साहन दिलाया। श्री० नोगुची की भविष्यवाणी के अनुसार उस लड़की ने पढ़ने-लिखने में बड़ी जल्दी उन्नति की और अपनी कक्षा में चमक निकली। आगे चल कर वह लड़की टोकियो के महिला-विश्वविद्यालय में भरती हुई और थोड़े ही समय में वह अपने समय की अत्यन्त उन्नतिशील विद्वान महिलाओं में गिनी जाने लगी। बाद में वह जापान में अपनी साहित्यिक योग्यता के लिए बहुत प्रसिद्ध होगई।

इस महान तत्त्वदर्शी श्री० नोगुची ने अपने आशीर्वाद और उद्योग से अपने छोटे से निवास-स्थान को अधिक से अधिक उन्नत अवस्था में पहुँचा कर विदेशियों के एक विशालकाय होटल के रूप में परिणत कर दिया और मकान-मालकिन की लड़की को अपनी बहुमूल्य सम्मतियों से महान बना दिया। वे उस लड़की पर पिता की तरह देख-रेख रखते थे। उनका ख़याल था कि लड़की के जीवन में पूर्व और पश्चिम की शिक्षा और संस्कृति की सर्वोत्तम बातों का समन्वय हुआ है, और इस पर भी वह इतनी सरल है कि जापानी पोशाक में अपनी विद्वत्ता और संस्कृत को सफलतापूर्वक छिपा सकती है। उसके जीवन में 'शिक्षित' लोगों की असाधारण बातें

नहीं थीं। वह सीधी-सादी जापानी लड़की जान पड़ती थी। हाँ, अपनी विद्वत्ता का बखान किए बिना केवल उसकी सौम्य मूर्त्ति लोगों को आकर्षित करती थी। उसकी उपस्थिति से लोग एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव करते थे। अपनी बातचीत में उसके सामने श्री० नोगुची सदा पूर्वीय जीवन की पूर्ण सरलता पर ज़ोर देते थे, परन्तु साथ ही वह यह भी कहते थे कि जीवन को उन्नत बनाने के लिए पश्चिम की जितनी भव्य बातें हैं, वे सब ज़रूर प्राप्त की जायँ। इस बौद्ध भिक्षु के, जो लोग तनिक भी संसर्ग में आए, उनकी अन्तिम संस्कृति और उन्नति हुए बिना न रही। वह परम पवित्र पुरुष था।

एक मामूली क्लर्क के छिपे हुए वेष में श्री० नोगुची क्योटो में काम करते रहे। वे स्वयं ५ यन(Yen) मासिक पर गुज़र करते और वेतन के १० यन मासिक अपनी माँ के पास भेज देते। वे आत्मानन्द में निमग्न रहने वाले ऐसे पुरुष थे, जिन्हें न तो कपड़ों की ज़रूरत थी और न रोटी की।

एक दिन, बाहर ख़ूब बर्फ़ पड़ रही थी और श्री० नोगुची स्टेशन-मास्टर के कमरे में स्टोव में कोयला जला रहे थे। अचानक खिड़की में से एक अमेरिकन मित्र की आवाज़ आई—"ओ हो मि० नोगुची! ओ हो मि० नोगुची, तुम यहाँ हो!" श्री० नोगुची ने नज़र उठाई। सामने अमेरिका की थियोसोफ़िकल सुसाइटी के प्रेज़ीडेण्ट मि० जे० खड़े थे। श्री० नोगुची तुरन्त ही आगे बढ़े और उनके आगे कोयले से काले हुए अपने हाथ फैला दिए।

श्री० नोगुची अपने अमेरिकन मित्र को देख कर आनन्द में गद्गद् हो उठे और बोले—"ओह मि० जे०! तुम यहाँ हो? इस दुनिया में हम किस प्रकार मिलते हैं और यदि जीवन में एक बार फिर मित्र मिल जाते हैं तो कितनी ख़ुशी होती है।"

इस घटना की चर्चा करते हुए श्री० नोगुची ने स्वर्गीय सरदार पूर्णसिंह जी से कहा था कि अपने जीवन में उनकी जो कुछ भी स्थिति रही हो, परन्तु उससे वे कभी लज्जित नहीं हुए। जब मि० जे० ने उन्हें पुकारा, तब उन्होंने यह ख़्याल किया कि वे जैसे हैं वैसे ही उनके साथ हाथ मिलावें। श्री० नोगुची ने सोचा कि किसी से मिलते समय हमारी आत्माएँ हाथ मिलाती हैं, कोई शारीरिक वस्तु नहीं। इसका मतलब केवल यही है कि सम्मिलन के समय, किसी से दुआ-सलाम करने के लिए आनन्दातिरेक में जो हाथ उठता है, वह आन्तरिक आह्लाद के कारण, न कि शरीर की किसी ऊपरी बात से।

श्री० नोगुची अपने मित्र मि० जे० से बातें करने के लिए कमरे से बाहर निकल गए। मि० जे० ने उनसे पूछा कि क्योटो में ठहरने के लिए सबसे अच्छी आराम की जगह कहाँ मिलेगी? श्री० नोगुची ने उन्हें ठहरने के लिए वही जगह बता दी, जहाँ वे स्वयं रहते थे, और उन्होंने गाड़ीवाले से कह दिया कि इन्हें मेरे मकान पर

श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी० लिखते हैं—

'चाँद' के विशेषाङ्कों ने जिन-जिन विशेषताओं के कारण देश भर में धूम मचा रक्खी है, वे सभी विशेषताएँ पर्याप्त रूप से इस विशेषाङ्क में विद्यमान हैं। मौजूदा क़ानून के अनुसार इस प्रकार के अङ्क निकालने में दोहरे भय का सामना है, फिर भी आप न केवल उनके दायरों से बाहर हैं, प्रत्युत सच्ची बात कहने में पूरे सफल भी हुए हैं। राजपूताने की वर्तमान परिस्थिति का चित्र बहुत ही स्पष्ट, किन्तु निरापद रीति से चित्रित हुआ है। सभी लेख, कहानी तथा पद्य पढ़ने की चीज़ हैं। सम्पादकीय विचार तो उत्कृष्ट और परिमार्जित है ही। अवश्य यह अङ्क ऐसा निकला है कि इसके सम्पादक को गर्व होना चाहिए। कई नवीन स्तम्भों ने इसकी शोभा और भी द्विगुणित कर दी है। 'चाँद' अपनी उन्नति से सन्तुष्ट नहीं है, वह निरन्तर अधिकाधिक उन्नति के लिए प्राण-पण से चेष्टा करता है, यह हिन्दी-संसार के लिए गर्व की बात है। आशा है, हिन्दी-संसार इसे भरपूर अपना कर अपना कर्त्तव्य पालन करेगा।

पहुँचा दो। उन्होंने मकान की मालकिन के लिए एक पर्चे में कुछ लिख भी दिया।

अपने क्लर्क को एक विदेशी यात्री से इस प्रकार घनिष्टता के साथ बातें करते देख कर स्टेशन-मास्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ और अन्य जापानियों की भाँति उसके दिमाग़ में भी यह बात बैठ गई कि होटल में जाकर विदेशी यात्रियों से परिचय प्राप्त करना अङ्गरेज़ी की लियाक़त बढ़ाने का सबसे अच्छा तरीक़ा है। जिस उत्कृष्ट ढङ्ग से श्री० नोगुची गद्गद होकर अपने मित्र से मिले, उसे देख कर स्टेशन-मास्टर का दिमाग़ उलझन में पड़ गया। अपने मित्र को विदा करके श्री० नोगुची के दफ़्तर में आने पर उसने पूछा—"यह ताज्जुब है कि इस दफ़्तर में जो तुमने अपना नाम बताया है, वह उस नाम से बिल्कुल भिन्न है, जो अभी-अभी तुम्हारे मित्र ने लिया था और जिसके पुकारे जाने पर खिड़की पर तुम उससे बोले थे। इसमें कुछ रहस्य मालूम पड़ता है। तुम कौन हो?"

"हुज़ूर! मैं आपका अत्यन्त विनम्र क्लर्क हूँ।"—जापानी ढङ्ग से निहायत अदब के साथ श्री० नोगुची ने जवाब दिया।

इस पर स्टेशन-मास्टर ने पूछा—"और वह विदेशी कौन था?" श्री० नोगुची बोले—"वह मेरा एक पुराना मित्र है। मेरा परिचय उससे अमेरिका में हुआ था। हम लोग आज वर्षों के बाद एक दूसरे से मिले हैं।"

"तो तुम अमेरिका में भी रहे हो? क्या तुम ज़ेंशिरो, वही प्रसिद्ध ज़ेंशिरो हो, जो हमारे दिव्य धर्म का प्रचार करने के लिए अमेरिका गए थे?"—यह कहते हुए स्टेशन-मास्टर हर्ष के मारे फूला न समाया।

श्री० ज़ेंशिरो नोगुची चुपचाप खड़े हुए ज़मीन की ओर देख रहे थे कि स्टेशन-मास्टर ने फिर कहना प्रारम्भ किया—"मि० नोगुची! गत दो वर्ष से अपने आपको छिपा कर मेरी मातहती में काम करके तुमने मुझे मेरी ही नज़र में गिरा दिया है। इन दिनों मैं तुम्हारा कितना अनादर करता रहा हूँ। मैंने स्वप्न में भी नहीं जाना कि मैं जापान के सर्वोत्कृष्ट कवि, चित्रकार, दार्शनिक और बौद्ध तत्वदर्शी के साथ कैसा बर्ताव कर रहा हूँ। जो कुछ भी मैंने मूर्खता और असभ्यता की है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए!"

यह कह कर स्टेशन-मास्टर ने श्री० नोगुची के श्रीचरणों के नीचे से धूल उठा कर अपने मस्तक पर चढ़ा ली!

एक बार श्री० नोगुची जापान के किसी होटल में ठहरे हुए थे। नियम के अनुसार पुलिस वाले उनका नाम-पता पूछने के लिए आ गए। श्री० नोगुची ने कह दिया—मेरा नाम एक आदमी है। मैं इस पृथ्वी पर रहता हूँ। सारा संसार मेरा घर है।

पुलिस वालों ने फिर पूछा—क्या तुम सम्राट की पूजा करते हो?

नोगुची—नहीं। मैं स्वयं बादशाह हूँ।

पुलिस—और इस देश के क़ानून को भी नहीं मानते?

नोगुची—नहीं। मैं किसी क़ानून को नहीं मानता।

पुलिस—तुम एक जापानी हो?

नोगुची—हाँ, जापानी हूँ, परन्तु मैं अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को क़ायम रखना चाहता हूँ।

इसी प्रकार दोनों ओर से कुछ देर तक प्रश्नोत्तर की झड़ी लगी रही। अन्त में श्री० नोगुची बाग़ी ठहरा कर गिरफ़्तार किए गए और तुरन्त ही जेल में बन्द कर दिए गए। परन्तु इसके बाद ही जब अधिकारियों को मालूम हुआ कि वे ज़ेंशिरो नोगुची हैं, तभी वे छोड़ दिए गए।*

* स्वर्गीय सरदार पूर्णसिंह जी के एक अङ्गरेज़ी लेख के आधार पर।



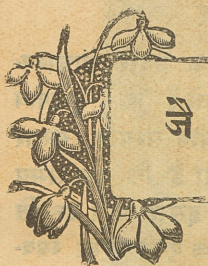
वर्तमान मुस्लिम-जगत

यूरोप का सम्पर्क और उसका प्रभाव

['एक डॉक्टर ऑफ़ लिट्रेचर']

(गताङ्क से आगे)

इतिहास का अटल नियम



जैसे ऊँची ओर से नीची ओर जल का बहाव स्वाभाविक है, उसी प्रकार उन्नत संस्कृति का अवनत संस्कृति को दबाना और उस पर प्रभाव डालना, या बलवान द्वारा निर्बल का जीता जाना भी स्वाभाविक है। युद्ध-क्षेत्र में धर्म और नीति को कोई स्थान नहीं है, यह ऐतिहासिक नियम है। बलवान और निर्बल, बुद्धिमान और मूर्ख, धनवान और कङ्गाल में जब मुठभेड़ होगी तो कौन जीतेगा, यह बतलाना कठिन नहीं है। आदि समय से अब तक बलवानों ने निर्बलों को दबाया है और जब तक संसार की यह परम्परागत व्यवस्था न बदल जावेगी, तब तक दबाते रहेंगे। बलवानों द्वारा विजय, अत्याचार, सम्पत्ति-हरण आदि उचित है या अनुचित, यह धर्म का विषय है। क्या होता है, यह इतिहास का विषय है; क्या होना चाहिए, यह धर्म का विषय है। इतिहास का सम्बन्ध घटनाओं से है, चाहे वे घटनाएँ रुचिकर हों या अरुचिकर धर्म का सम्बन्ध है उच्च और स्तुत्य आदर्शों से, चाहे वे असम्भव हों या सम्भव।

अपने देश में शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले द्रविड़, कोल और भीलों ने आर्य लोगों का क्या बिगाड़ा था? परन्तु तो भी आर्यों के टीड़ी-दल ख़ैबर की घाटी पार करके भारत में घुसे और निरपराध देशवासियों को विन्ध्यगिरि से दक्षिण की ओर भगा दिया, जो बचे उनको दासता की शृङ्खलाओं में जकड़ दिया। फिर आर्यों ने हूण लोगों का क्या अपराध किया था कि उनके समृद्ध देश को उन लोगों ने उजाड़ा और शक्तिशाली गुप्तवंश को नष्ट कर डाला? भारतवर्ष के महाराजाओं में और महमूद ग़ज़नवी में कौन सा पुराना बैर था, जिसके कारण उसने भारत-भूमि पर सत्रह बार आक्रमण किए, देव-मूर्तियों का विध्वंस करके लाखों हिन्दुओं के हृदय को आहत किया और उच्च और प्रतिष्ठित कुलों की सन्तानों को उसने चार-चार पैसे में ग़ज़नी बाज़ार में दास-दासी बनाने को बेचा? वास्तव में ये सब घटनाएँ संसार-सङ्घर्ष के अटल नियम के अनुकूल थीं, जिनको कोई भी धर्मोपदेशक नहीं रोक सकता था।

यूरोप में उन्नति और एशिया में सुषुप्ति

१७वीं और १८वीं शताब्दी में उधर यूरोप तो संसार-भ्रमण, वैज्ञानिक आविष्कार, प्रजातन्त्रवाद, साहित्य और कला की उन्नति, महिला-स्वातन्त्र्य, वाणिज्य-विस्तार आदि द्वारा निरन्तर ऊँचा चढ़ता जाता था और इधर एशिया उसी दशा में, जिसमें वह २०० वर्ष पूर्व था। पूर्वी संसार में एक राजवंश का पतन दूसरे का उदय, एक सम्प्रदाय का लोप दूसरे का जन्म, शासकों का परम्परागत विकास और शासितों के निरन्तर दुःख—इन्हीं की बार-बार पुनरावृत्तियाँ हुआ करती थीं। लेकिन यूरोप में यह सब कुछ होते हुए भी मानव-उन्नति की धारा अप्रतिहत वेग से नदी-प्रवाह के समान निरन्तर आगे बढ़ती जाती थी। वहाँ नित्य नए वैज्ञानिक आविष्कार, नित्य नई भौगोलिक खोज और नित्य नई सुधार-योजनाओं से सम्पूर्ण महाद्वीप उन्नत होता जाता था। जब एक भू-भाग इतना उन्नत और दूसरा इतना अवनत था, तो यह स्वाभाविक बात थी कि उन्नत अवनत को दबाता।

यूरोप का आक्रमण

१७वीं और १८वीं शताब्दी में यह अटल घटना-क्रम घटने लगा। यूरोपियन लोग यथावसर कहीं वाणिज्य

द्वारा, कहीं बल द्वारा और कहीं नीति द्वारा पूर्वी देशों पर अपना अधिकार जमाने लगे। इस विजय-वाद का सर्वाधिक प्रभाव मुसलमान जगत पर पड़ा। क्योंकि इस्लामी राज्य यूरोप से सटे हुए थे, भारतवर्ष तथा यूरोप के मार्ग के मध्य में पड़ते थे। अतः आगे बढ़ने के लिए तथा सम्पूर्ण भारत को अपने अधीन करने के लिए पहिले यह आवश्यक था कि तुर्की, मिसर, अरब, ईरान आदि सब देशों में विजयाकांक्षी राष्ट्रों का कुछ पैर जम जावे। उधर उत्तरी अफ्रीका के अन्य मुस्लिम राज्यों पर भी दक्षिण यूरोप के राष्ट्रों का दाँत सदियों से लगा हुआ था। अनेक छोटे-छोटे मुसलमान राज्य तो राजनैतिक और आर्थिक आघातों के बीच में चूर-चूर हो गए, कुछ शस्त्र-बल के एक धक्के से ही धराशायी हो गए और जिनमें जीवन और पौरुष कुछ अधिक था, वे कुछ अर्से तक येन-केन-प्रकारेण निभ पाए, लेकिन आख़िर कहाँ तक? यूरोप के उन्नत वाणिज्य-साधन और अधिक कुशल-नीति से उनका व्यापार नष्ट होकर सब विदेशियों के हाथ में चला गया। इस प्रकार शनैःशनैः रक्त-शोषण हो जाने पर यूरोप वालों ने इन राज्यों पर अपना अधिकार जमा लिया। हम पहिले ही बतला चुके हैं कि १७वीं शताब्दी के आरम्भ में ईसाइयों के धर्म-गुरु पोप ने यह आज्ञा दे दी थी कि पूर्व संसार को पोर्तगाल और पश्चिमी को स्पेन विजय कर सकता है। मानो इतिहास के अटल नियम से ही यह कार्य नहीं हो सकता था, इसलिए पोप साहब ने अपनी धार्मिक व्यवस्था भी दे डाली। यह प्रधान भेद है कि यूरोप के लोग अन्य राष्ट्रों के स्वातन्त्र्य-हरण और सम्पत्ति तथा संस्कृति-नाश को धर्मानुकूल बतलाते हैं और एशियाई विजेता ऐसे अवसर पर शास्त्रार्थ नहीं करते। अपने बाहुबल को लोकमत से पुष्ट करने के लिए युद्ध-घोषणा के पहिले और यदि यह सम्भव न हो तो विजय-प्राप्ति के पश्चात् गौराङ्ग विजेता सदैव अपने पक्ष को धर्मानुमोदित और अपने कार्यों को परहित-प्रेरित सिद्ध करने की चेष्टा किया करता है।

यूरोपीय विजेताओं के लक्षण

प्लासी के बाद क्लाइव ने, सेरिङ्गापट्टम के बाद वेलेज़्ली ने, १८५७ के भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के बाद अनेक वायसरॉयों ने, यहाँ तक कि जलियानवाला बाग़ के क़त्ले-आम के बाद डायर ने भी अपने कार्यों को कर्तव्यानुकूल बतलाया था। अनेक यूरोपीय विद्वान लेखक एशिया में यूरोप के आधिपत्य को ऐतिहासिक नियम का परिणाम नहीं बतलाते। उनका कहना है कि उन्नत यूरोप का यह कर्तव्य था कि वह अवनत भू-भाग को उन्नत बनाता और उसका मार्ग-प्रदर्शक बनता। किसी का कहना है कि यूरोपीय साम्राज्यवाद से संसार का बहुत हित हुआ है।

प्रोफ़ेसर म्यूर

प्रोफ़ेसर रामसे म्यूर, जो एक उदार साम्राज्यवादी हैं, अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि—यूरोपीय साम्राज्यवाद के कारण हो यूरोपीय सभ्यता संसार में फैली है। इसका सुफल यह हुआ है कि इस समय सम्पूर्ण संसार एक जान पड़ता है। इससे आगे उन्नति होने पर यह होगा कि संसार में एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था हो जावेगी, जिसका प्राचीन कवियों ने भी कभी स्वप्न नहीं देखा होगा। यूरोपीय साम्राज्यवाद के बिना उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका निरे जङ्गल ही बने रहते और वहाँ के निवासी असभ्य अवस्था में पड़े रहते। इसके बिना भारतवर्ष और अन्य पुरातन देशों में राजवंशों के उदय और अस्त तथा सिंहासन-प्राप्ति के लिए घोर संग्रामों की आवृत्तियाँ हुआ ही करतीं और राजनैतिक स्वातन्त्र्य के भावों का कभी उदय न होने पाता। आज जो शासन-सुधार, प्रजातन्त्रवाद, व्यक्तिगत अधिकार और स्वतन्त्रता के भाव इन देशों में दिखाई देते हैं, इसका कारण है यूरोप का साम्राज्यवाद।

लॉर्ड क्रोमर

विजेताओं की भावनाएँ तो चाहे वे यूरोपियन हों या एशियाई, वे ही होती हैं, जिनकी इतिहास साक्षी देता है। लेकिन कुछ सत्यनिष्ठ यूरोपियन सज्जन ऐसे भी हैं, जो कहते हैं कि विजय का ध्येय सदैव धार्मिक होना चाहिए। लॉर्ड क्रोमर लिखते हैं—"साम्राज्यवाद में दूरदर्शिता अवश्य होनी चाहिए। जिन जातियों पर हमारा आधिपत्य है, उनके साथ हमारा राजनैतिक सम्बन्ध आर्थिक और नैतिक दृष्टि से शुद्ध तथा निर्दोष



स्मृति

(चाँदनी रात में आगरे का ताज)

होना चाहिए। यह साम्राज्यवाद का मुख्य आधार है। साम्राज्यवाद उसी अवस्था में उचित माना जा सकता है, जब उसका ध्येय उचित हो और उसकी शक्ति का सदुपयोग किया जाता हो। यदि हम अपनी शक्ति का सदुपयोग करते हैं, तो हम भविष्य के सामने आँख उठा कर देख सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते तो ब्रिटिश साम्राज्य का पतन हो जाना चाहिए और इसका पतन अन्त में अवश्य होगा।"

विजेता और पराजित का सम्बन्ध

वास्तव में विजयी लोगों को न संसार में सुन्दर व्यवस्था स्थापित करने की चिन्ता है और न अपने सामर्थ्य का सदुपयोग करने का फ़िक्र। विजयी लोग चाहते हैं विजय-लाभ और पराजित लोग चाहते हैं आततायियों से मुक्ति। न विजेता परोपकार के लिए प्रेरित होते हैं और न पराजित शिक्षा ग्रहण के लिए उत्सुक। विजयी और विजित में न कभी प्रेम होता है, न सहयोग। विजयी सदा धन और भूमि का हरण करना चाहते हैं और विजित उसकी रक्षा का उपाय सोचा करते हैं। पराजित लोगों में से जो विजेताओं का साथ देते हैं, वे भी भयभीत होकर अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए ऐसा करते हैं। जयपुर के राजघरानों ने जो मुग़लों का साथ दिया था, उसका एकमात्र कारण यह था कि वे मुग़लों से त्रस्त थे, शस्त्र-बल द्वारा उनका सामना नहीं कर सकते थे और साथ ही अपनी सम्पत्ति और वैभव को सुरक्षित रखना चाहते थे। विदेशी विजेताओं का साथ देने वाले लोग सदा इन्हीं विचारों से प्रेरित होते हैं। इनमें विजेताओं के प्रति न कोई स्वाभाविक प्रेम होता है और न हो सकता है। विजेताओं के साथ सहयोग के कारण प्रायः भय, स्वार्थ और आत्म-रक्षा होते हैं। अनुकूल अवसर मिलने पर पराजित जातियाँ स्वतन्त्रता के गान गाने लगती हैं। इसलिए यह कहना कि यूरोपियन लोगों ने परहित-दृष्टि से प्रेरित होकर मुस्लिम देशों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया है और स्वयं मुसलमानों को इनके सम्पर्क से अपूर्व लाभ हो रहे हैं, इसलिए यूरोपियन लोगों की वहाँ अभी और ठहरने की आवश्यकता है और जो यूरोपियन लोग एशियाई देशों का पिण्ड नहीं छोड़ते, वह केवल इसलिए कि उन देशों को उन्नत बनाना उनका कर्तव्य है और वे यदि एकाएक उन देशों को छोड़ जाएँगे तो वहाँ पर अराजकता, लूट-खसोट और अशान्ति फैल जायगी—ये सब कोरी बातें हैं, न इनमें सत्य है और न इनके कहने की कोई आवश्यकता है। कहने वाले जानते हैं कि वे असत्य कह रहे हैं और सुनने वाले जानते हैं कि अपने पापों को छिपाने के लिए विजेताओं का यह कपट-कलेवर है।

सम्पर्क के स्वाभाविक परिणाम

यूरोपियन लोगों की सम्पत्ति से मुसलमान देशों को जो लाभ हुए हैं, उनका श्रेय गोरे लोगों को बिलकुल भी नहीं है। जब दो जातियों का सम्पर्क होता है, तो यह स्वाभाविक बात है कि एक का दूसरे पर प्रभाव पड़े। जब आर्य लोग गङ्गा और यमुना के देश में बस चुके तो द्रविड़ लोगों में उनके सम्पर्क मात्र से वैदिक देवताओं की उपासना, आर्य-सभ्यता का आदर और संसार के विषयों का ज्ञान बढ़ने लगा। आर्य लोग तो कभी भी यह नहीं चाहते थे कि द्रविड़ लोग उनके समान उन्नत, सभ्य और संस्कृत बनें, परन्तु वे अपने प्रभाव को और प्रकृति के नियम को ताले में बन्द नहीं कर सकते थे। मानव-विचार और मानव संस्कृति अदृश्य रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर, एक देश से दूसरे देश में पहुँच जाया करती है। काग़ज़ का आविष्कार सर्व-प्रथम मिसिर में हुआ था, परन्तु किसी मिसिर-निवासी ने उसका प्रचार संसार में नहीं किया। छापे की युक्ति सर्व-प्रथम चीन से निकली थी, परन्तु चीनियों के प्रचार किए बिना ही वह अब संसार भर में प्रचलित हो गई है। गणना-विज्ञान सब से पहिले भारत में मालूम हुआ था, पर भारत से इसका प्रचार करने के लिए कोई उपदेशक बाहर नहीं भेजे गए, तो भी वह कुछ ही शताब्दी में सम्पूर्ण संसार में फैल गया। ज्ञान और संस्कृति का आदि स्रोत भगवान है। उसका चाहे जिस मनुष्य के मस्तिष्क में या जाति में अवतरण हो, वह सारे संसार की निधि है, उस पर सम्पूर्ण जगत का समान अधिकार है। जैसे कोई देश या सरकार हवा को अपनी सीमा में बन्द नहीं कर सकती, इसी प्रकार वह ज्ञान को भी महदूद नहीं कर सकती, उस पर कोई अपना एकाधिकार

स्थापित नहीं कर सकती और करने की चेष्टा करे तो उसमें कोई सफलता भी नहीं हो सकती। इसलिए जब जातियों का सम्पर्क होता है, तो उनमें ज्ञान और कला का विनिमय होना स्वाभाविक बात है। यह ऐतिहासिक और ईश्वरीय नियम के अनुकूल होता है। इसमें विजेताओं का कोई प्रयास नहीं।

यूरोपियन विजेताओं का कार्य

यूरोपियन विजेताओं ने अधिकृत मुस्लिम देशों में रेलें चलाईं, तार लगवाए, डाकख़ाने स्थापित किए, सड़कें तैयार कराईं, अपनी देश-भाषा का प्रचार किया, कहीं-कहीं प्रजातन्त्र शासन की छाया मात्र का दर्शन कराया, और नवीन ढङ्ग से सधी हुई सेनाओं की सवारियाँ निकाल-निकाल कर पराजित लोगों को अपने दुर्दमनीय सामर्थ्य का परिचय दिया। अपने देश के क़ानून जारी करके लोगों को समान कर दिया। सामाजिक भेद-भाव मिटाए। वाणिज्य द्वारा अपने घर की बनी हुई वस्तुओं से पराजित देशों के बाज़ार पाट दिए। अनेक व्यर्थ विलास के पदार्थों का तलवार के बल से प्रचार करके लोगों के जीवन को अस्वाभाविक और कृत्रिम बना दिया। अपने वैज्ञानिक आविष्कारों से लोगों को अचम्भित और भयभीत कर डाला। यूरोपियन जातियों का यही कार्य है, यही उपकार और यही उनकी ज़िम्मेवारी। देखना और समझना यह है कि इन सब कार्यों के करने में विजेताओं का ध्यान क्या था। स्वयं वे कुछ भी कहें, पर इतिहास क्या कहता है, यह हमको देखना चाहिए।

उनका उद्देश्य

रेलों के चलाने में सब से बड़ा स्वार्थ विदेशी विजेताओं और वणिकों का था। एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी और शीघ्रता के साथ सेना पहुँचाना, अपने देश के माल को विजित देशों में फैलाना, प्रबन्ध कार्यों में रेलगाड़ी से सहायता लेना, यह वास्तव में मूल उद्देश्य था। डाकख़ाने, तार, सड़कें, पाठशालाएँ आदि भोले-भाले लोगों को प्रत्यक्ष में हितकारी सुधार प्रतीत होते हैं, लेकिन हैं ये वास्तव में अपना अधिकार और आधिपत्य को अमर बनाने के उपाय। यह इसी से प्रकट है कि जब पराजित लोग स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन करते हैं और इन वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करते हैं तो सरकार इसको बन्द कर देती है। तार और पत्रों को रोक लेना, बेतार का तार केवल अपने अधिकार में रखना, शस्त्र आदि के कारख़ाने खोलने की आज्ञा न देना, हवाई जहाज़ न ख़रीदने देना—इन सब बातों से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक आविष्कारों से वास्तविक लाभ केवल विजेता ही उठा सकते हैं, पराजित लोग नहीं। जो देश स्वतन्त्र हैं, वे स्वयं इन चीज़ों को अपने देश में जारी कर सकते हैं। वहाँ यह आवश्यक नहीं होता कि रेल, तार आदि के आराम के लिए पहिले देश को परतन्त्र कर दिया जावे और फिर इन लोगों से नम्रतापूर्वक विदा होने की प्रार्थना की जावे। जापान और अफ़ग़ानिस्तान विदेशियों के आधिपत्य में नहीं रहे तो भी वहाँ ईराक, मिसिर और भारतवर्ष से अधिक विज्ञान का उपयोग किया जाता है। वहाँ रेल, तार जारी करने से पहिले लॉर्ड डलहौज़ी की सर्व-संहारिणी नीति का भीषण नृत्य नहीं देखना पड़ता।

सम्पर्क से लाभ

विजेता लोग तो नहीं चाहते थे कि मुस्लिम देश वैज्ञानिक ज्ञान से लाभ उठावें, उनके प्रजातन्त्र राज्य शासन का महत्व समझें, और उनकी कपट-नीति का भेद खुले, लेकिन ज्ञान-सरिता के दुर्निवार्य प्रभाव को वे क्योंकर रोक सकते थे? जब ज़बरदस्ती विदेशी भाषाओं में शिक्षा दी जाने लगी और सस्ते क्लॉर्क तैयार किए जाने लगे, तो लोगों ने अपनी मातृभाषा का महत्व समझा। जब निरङ्कुश शासन को अमर बनाने के उपाय किए जाने लगे, तो लोग प्रजातन्त्र के गीत गाने लगे। पारस्परिक सम्पर्क के कारण लोग आप से आप ही विदेशियों के ज्ञान, कला, विज्ञान और नीति को ग्रहण करने लगे, भ्रमण और प्रेस की सहायता से संसार की स्थिति को जानने लगे, राजनैतिक कपट-कौशल को समझने लगे और आत्म-रक्षा के उपाय सोचने लगे। कुछ लोग उनकी सब बातों में नक़ल करने लगे और अपनी वेष-भूषा तथा संस्कृति को भुलाने लगे।

सम्पर्क से पूर्व एशिया

पूर्व और पश्चिम के सम्पर्क से पूर्व एशियाई जातियाँ एक प्रकार की निद्रा में ग्रस्त थीं। उनके जीवन में यदि

कोई परिवर्तन होता था तो केवल इतना कि अभी उनका शासक तुर्क है तो कुछ वर्ष बाद वह मुग़ल है। शासक के परिवर्तन से देश की व्यवस्था और धर्म पर प्रायः प्रभाव पड़ा करता था, लेकिन लोगों के जीवन में कोई भारी अन्तर नहीं आता था। कभी अत्याचार कम, कभी अधिक, केवल यही अन्तर हुआ करता था। महाराज अशोक, अकबर, हारुलरशीद आदि शासकों ने लोक-धर्म को शान्तिपूर्वक बदलना चाहा और उत्तम रीति से शासन किया। उनके प्रयत्न किसी अंश तक सफल भी हुए, लेकिन इससे देशों की संस्कृति और समाज का स्वरूप न बदल सका। उस समय न विचारों के प्रचार के सुगम साधन थे, और न शासक और शासितों की संस्कृति में महान भेद। अशोक के यत्न से दूर-दूर देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, मुग़लों के समय में हिन्दू-धर्म और इस्लाम धर्म का पारस्परिक विरोध बहुत-कुछ कम होकर, भारत में एक नई संस्कृति का जन्म होने लगा, हारुलरशीद के समय में इस्लाम का धर्म, साहित्य और कला, एशिया में सर्वत्र पहुँचे। यह सब सत्य है, लेकिन साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू, तुर्क, मुग़ल आदि सब एशिया के ही निवासी थे। इनके धर्म, भाषा और रङ्ग में अन्तर अवश्य था, पर तो भी सब में कई अंशों तक समानता थी। सबके जीवन पर एशियाई जलवायु का असर था और सबके धर्माचार्य एशिया के निवासी थे। चीन, भारत और अरब के धर्मों में बहुत बातें मिलती-जुलती थीं और वास्तविक धार्मिक पुरुष चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, अरब हो या चीनी, आपस में कोई भेद-भाव नहीं समझते थे। इसके अतिरिक्त विजेता वंश शीघ्र ही पराजित देशवासियों में मिलने लगते थे। उनकी भाषा, उनके विचार, उनके रिवाज आदि को ग्रहण करने लगते थे। परिणाम यह होता था कि जेता और विजित का अन्तर भूलने लगता था और देश में पूर्ववत् सब कार्य होने लगते थे। एवं जय और पराजय के चक्र के सिवाय एशिया में अन्य गति दिखाई नहीं देती थी। मानव-जीवन स्थिर, सुषुप्त और उपेक्षाग्रस्त था। समाज और शासन की नई और उन्नत व्यवस्थाएँ सोचना, प्रकृति को अपने वश करके उससे मनुष्य का काम लेना, अज्ञात जगत् की खोज करना, अपने ज्ञान-क्षितिज को विस्तृत करना—इन बातों की एशिया-वासियों को कभी कल्पना भी नहीं होती थी। यदि कोई प्रौढ़ मस्तिष्क आगे बढ़ता था तो काव्य और दर्शन की रचना होती थी और कभी-कभी भव्य भवनों का निर्माण।

यूरोप के सम्पर्क ने एशिया की आँखें खोल दीं। पश्चिमी जातियों के अद्भुत पराक्रम, वैज्ञानिक ज्ञान, भ्रमण-अनुभव, शस्त्र-बल और अपूर्व सङ्गठन ने सबको दङ्ग कर दिया। कहीं छल, कहीं बल और कहीं कौशल से यूरोप-निवासी जिस देश में पहुँचे, वहाँ सफल हुए। एशिया के निवासी इनका सामना न बल से कर सके, न बुद्धि से। कोई शीघ्र, कोई देर से—एक-एक करके लग-भग सम्पूर्ण देशों ने इन लोगों का लोहा मान लिया। प्राचीन सभ्यताओं का अभिमान करने वाले लोगों ने स्वीकार कर लिया कि यूरोप-निवासी बुद्धि और बल—दोनों में बढ़ कर हैं। निराश होकर पराजित देश एक बार फिर शान्ति-निद्रा में डूब गए। यूरोप-निवासी अपना क़ब्ज़ा मज़बूत करने के लिए वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करने लगे, अपनी भाषाओं का प्रचार करने लगे और अनेक प्रलोभन दे-देकर देश के स्वार्थी लोगों को अपने पक्ष में करने लगे।

विदेशी भाषाओं के ज्ञान से, विज्ञान के अध्ययन से, भ्रमण की सुविधाओं से और छापेख़ानों के प्रभाव से कूपमण्डूक मुस्लिम देशों का ज्ञान-क्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होने लगा। यूरोप के धक्के से इन देशों की निद्रा भङ्ग हो गई। वे अपनी असहाय स्थिति को अनुभव करने लगे और इन लोगों के बल और पराक्रम तथा ज्ञान पर आश्चर्यान्वित होने लगे। यूरोप के सम्पर्क से वास्तव में उनको पता लगा कि संसार क्या है और इसमें उनका क्या स्थान है। इस ज्ञान के लिए उनको भारी धक्के की आवश्यकता थी, अन्यथा उनकी कूप-मण्डूकता का अन्त नहीं हो सकता था। यूरोप के सम्पर्क से उनको एक नए संसार का दर्शन हुआ।

यूरोपीय सभ्यता का अनुकरण

असंख्य मुसलमान विदेशी भाषाएँ पढ़ने लगे। कोई विदेशी शासकों तथा वणिकों के यहाँ नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए और कोई केवल विजेताओं की संस्कृति का अनुकरण करने के लिए। अनेक मुसलमान

यूरोप में भ्रमण करने लगे और वापस आकर यूरोप के समाज, राज्य और व्यवसाय की कहानियाँ अपने देशवासियों को सुनाने लगे। बहुतों ने अपना भ्रमण-वृत्तान्त देशी भाषाओं में लिखा और देश के भौगोलिक तथा व्यापक ज्ञान को बढ़ाया। मुस्लिम देशों में अन्य देशों के वृत्तान्त जानने की रुचि बढ़ी। अख़बार पढ़ने वालों की संख्या अधिक होने लगी। इन देशों में कई छापेख़ाने स्थापित होने लगे और धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त दूसरे साहित्य का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा। कुछ मुसलमान लोग यूरोपियन लोगों की तरह रहने लगे। कपड़े, भाषा, भोजन, सामाजिक व्यवहार आदि में सम्पन्न लोग इनका अनुकरण करने लगे। बहुत से लोग यूरोपियन भाषा में अपनी मातृभाषा की भाँति बोलने लगे, यूरोपियन लोगों की भाँति होटलों में रहने लगे और सदा यूरोपियन भोजन करने लगे। कुछ लोगों ने यूरोपियन महिलाओं से विवाह भी कर लिए, लेकिन ऐसे विवाहों का प्रचार न होने पाया। मुस्लिम देशों में यूरोपियन अस्पताल, यूरोपीय कॉलेज और कल-कारख़ाने खुलने लगे, जिनमें नवशिक्षित मुस्लिम लोग नौकरियाँ करने लगे। यूरोपियन महासमर से पूर्व मुस्लिम देशों में विशेष कर तुर्की, मिसिर और भारत में यूरोपीय सभ्यता का काफ़ी प्रचार होगया था। अनेक मुसलमान अपनी सभ्यता और संस्कृति को छोड़ कर विजेताओं की सभ्यता को शीघ्रता के साथ अपनाते जाते थे। ऐसे लोगों पर ही कविवर अकबर जैसों ने अपने मार्मिक कटाक्ष किए थे।

अनुकरण का ध्येय

२०वीं शताब्दी के आरम्भ तक तो यह अनुकरण ध्येय-हीन था। यह दो संस्कृतियों के सम्पर्क का स्वाभाविक फल था, लेकिन सन् १९०५ के लगभग यह अनुकरण एक विशेष उद्देश्य के साथ किया जाने लगा। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से यूरोपिय लोगों के साम्राज्यवाद में और भी अधिक स्वार्थ-भाव आ गया और वे पराजित देशों का रक्त चूसने तथा उनको सदैव दासता की श्रृङ्खलाओं में जकड़े रहने के प्रबल प्रयत्न करने लगे। सिडनी लो नामक एक प्रसिद्ध अङ्गरेज़ लेखक ने सन् १९१२ में लिखा था कि—"पिछले कुछ वर्षों में अधिकांश ईसाई राष्ट्रों का व्यवहार अपने अधीन देशों के साथ वैसा ही रहा है, जैसा डाकुओं के समुदाय निस्सहाय यात्रियों के साथ किया करते हैं। अन्य क़ौमों के जन्म-सिद्ध अधिकारों का सम्मान करना तो दूर रहा, इन्होंने उनके साथ मनुष्योचित व्यवहार भी नहीं किया। यूरोपियन साम्राज्यवादियों ने अपने आचरणों से यह सिद्ध कर दिया है कि वह बलवान द्वारा निर्बल का शिकार किया जाना न्यायोचित समझते हैं। धार्मिक और नैतिक पक्ष की घोर उपेक्षा करके उन लोगों ने अन्य देशों को इस ढङ्ग से अधिकृत किया है कि उसके आगे पूर्वी रक्त-पिपासु विजेता (तैमूर लङ्ग, चङ्गेज़ ख़ाँ आदि) भी क्या हैं!

बीसवीं शताब्दी का साम्राज्यवाद

१९वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसार-व्यापी घटना हुई है, वह है एशिया की जागृति। एकाएक पूर्वी जगत में जीवन आ गया है और वह तेज़ी के साथ पश्चिमी उन्नति को अपनाने लग गया है। जापान ने यह कार्य सब से पहिले आरम्भ किया और यह उसका सौभाग्य था कि उसने उस समय ही उन्नति-मार्ग पर क़दम बढ़ाया, जब कि यूरोपीय साम्राज्यवाद की नवीन नीति व्यवहृत न होने लगी थी और गत शताब्दी की सन्धियों और अहदनामों को पैरों के नीचे नहीं कुचल दिया गया था। १९वीं शताब्दी में जब जापान के राजनीतिज्ञों ने अपने देश को उन्नति-मार्ग की ओर बढ़ाया, तो तत्कालीन यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने उसमें हस्तक्षेप करना उचित न समझा। जापान के नवयुगारम्भ को हमने चाव और प्रशंसा के साथ देखा और जापानियों को उन्नति-पथ पर निर्विघ्न बढ़ने दिया। यदि जापान की यह जागृति ३० वर्ष बाद हुई होती तो आज हमको दूसरी ही कहानी कहनी पड़ती। उसको उन्नत होता हुआ देख कर ईसाई राष्ट्रों में तहलका मच जाता और प्रत्येक राष्ट्र उससे कुछ न कुछ हड़पने के लिए, उसके साथ युद्ध करने को तैयार हो जाता। एशिया के अन्य जिन देशों ने जापान की भाँति उसके बाद उन्नति करनी चाही वे न कर सके। पिछले १० वर्षों से यूरोप की पर-राष्ट्र-नीति बड़ी सङ्कुचित और स्वार्थमयी हो गई है, जिसके कारण पूर्व के

राष्ट्र अपने शासन-सुधार के लिए प्राणपण से यत्न कर रहे हैं। वे उन साधनों को शीघ्रता के साथ ग्रहण करते जाते हैं, जिनसे ईसाई लोग उन्नत बने हैं। यह ईसाई राष्ट्रों को रुचता नहीं है और जहाँ कहीं उनको घरू कलह के कारण किसी देश में हस्तक्षेप करने का कारण मिलता है, वे फ़ौरन करते हैं और देश का कुछ अंश अपने राज्य में मिलाने का यत्न किया करते हैं।

यूरोपीय पद्धति पर सुधार

यह नीति २०वीं शताब्दी के आरम्भ में ग्रहण की गई थी, ऐसा श्रीयुत लो का कहना है, पर वास्तव में यूरोपीय लोगों की नीति सदा से ही यही थी और ऐतिहासिक नियम के अनुसार दूसरी नीति और हो ही क्या सकती थी? निर्बलों पर बलवानों का आधिपत्य होना ही चाहिए था। जो २-४ मुस्लिम देश अब तक नाम-मात्र को स्वतन्त्र बने हुए थे, वे भी महासमर के बाद यूरोपियन राष्ट्रों के अधीन कर लिए गए। यूरोपियन लोगों की इस सर्व-संहारिणी नीति से अपनी रक्षा करने के लिए इस्लाम-सङ्गठन का कार्य आरम्भ किया गया था। धार्मिक सुधार, धर्म-प्रचार, विदेशियों से घृणा आदि उसके आरम्भिक अङ्ग थे। आगे चल कर देश-काल के अनुरूप उसके भेद होते रहे और उसका स्वरूप यह भी था कि यूरोपियन लोगों का सामना उनके ही साधनों द्वारा किया जावे और स्वयं अपने राज्य, समाज और व्यवहार आदि में भी यूरोपीय सभ्यता घुसाई जावे। १६वीं शताब्दी के अन्त में तुर्की के राजनीतिज्ञों ने उपमान साम्राज्य का सुधार यूरोपीय ढङ्ग पर करने का यत्न किया था और अन्य मुसलमान देशों में भी ऐसा ही प्रयास किया गया था। ट्यूनिस देश को यूरोपीय विधि से उन्नत करने का जो जनरल ख़ैरउद्दीन ने उद्योग किया था, वह उसका अच्छा उदाहरण है। यह सज्जन जन्म से तो सरकेसियन था, लेकिन ट्यूनिस के शासक का बड़ा विश्वासपात्र बन जाने के कारण वह वहाँ का राजमन्त्री बन गया था। सन् १८६० में उसने यूरोप का भ्रमण किया और जो कुछ उसने देखा उसका उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसको विश्वास हो गया कि यूरोप की सभ्यता मुस्लिम देशों से कहीं उन्नत है। इसलिए उसने यूरोपीय तरीक़ों को ट्यूनिस में घुसाने का भारी प्रयास किया। अमानुल्ला की भाँति वह समझता था कि ऐसा करना बिलकुल सम्भव है और उसका अनुमान था कि ट्यूनिस शीघ्र उन्नत हो जावेगा। ख़ैरउद्दीन यूरोप से बिलकुल घृणा नहीं करता था। उसने केवल यह अवश्य जान लिया था कि यदि मुस्लिम संसार शीघ्र न चेतेगा तो वह यूरोप के अधीन हो जावेगा। इसलिए वह देश-प्रेम से प्रेरित होकर अपने देश को शीघ्रातिशीघ्र उन्नत करना चाहता था, ताकि वह तो स्वातन्त्र्य को स्थिर रख सके।

ख़ैरउद्दीन

ट्यूनिस का वे भी ख़ैरउद्दीन की रिपोर्ट से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसको मनोवाञ्छित सुधार करने की आज्ञा दे दी। विरोधी अधिकारियों ने उसके कार्य में बहुत रोड़े अटकाए, लेकिन कुछ काल तक तो उसने अपूर्व साहस और परिश्रम से काम लिया। उसकी असामयिक मृत्यु के कारण उसका कार्य अधूरा रह गया और ट्यूनिस उन्नत न हो सका। परिणाम-स्वरूप २० वर्ष बाद वह फ़्रान्स के अधीन हो गया। फिर भी ख़ैरउद्दीन अगली सन्तानों के लिए एक पुस्तक लिख कर छोड़ गया। पूर्वी मुसलमानों पर इस पुस्तक का भारी प्रभाव पड़ा है। उत्तरी अफ़्रिका में—विशेषकर ट्यूनिस और अलजीरिया में—तो यह राष्ट्र-धर्म की बाइबिल है। इस पुस्तक में लेखक ने अपने सहधर्मियों को उपदेश किया है कि प्राचीन रूढ़ियों में अन्धविश्वास करना छोड़ना चाहिए और प्रत्येक विषय की ओर उपेक्षा की दृष्टि से न देखना चाहिए तथा बाह्य जगत में क्या हो रहा है, इसको आँखें खोल कर निरीक्षण करना चाहिए। लेखक का कहना है कि यूरोप की वर्तमान अद्भुत उन्नति का कारण उसकी भौगोलिक स्थिति और उसका ईसाई-धर्म नहीं है। इस उन्नति का कारण है यूरोप के विज्ञान और कला। इन साधनों के बल से वे अपने धन का निरन्तर व्यापार में उपयोग करते रहते हैं और अपने व्यापार-व्यवसाय तथा कृषि को उन्नत बनाते जाते हैं। यूरोप के अभ्युदय का आदि-स्रोत है उसका स्वातन्त्र्य तथा न्याय-प्रेम। पूर्वकाल में मुस्लिम संसार भी शक्तिशाली और उन्नत था, क्योंकि उस समय इसको ज्ञान ग्रहण करने में सङ्कोच नहीं होता था। धार्मिक कट्टरता

और अन्धविश्वास के कारण इसका फिर पतन हो गया। प्राचीन उत्साह, उमङ्ग और ज्ञान-प्राप्ति की तृष्णा फिर जीवित हो जाए तो मुस्लिम संसार भी फिर उन्नत हो जायगा।

घृणापूर्वक अनुकरण

ख़ैरउद्दीन के इन विचारों में विशेषता यह है कि इनमें यूरोप के प्रति घृणा का अभाव है। यह १९वीं शताब्दी के मध्य की बात है। १९वीं शताब्दी के अन्त में और २०वीं शताब्दी के आरम्भ में यह बात न रही। मुसलमान लोग यूरोप का अनुकरण तो करते रहे, परन्तु उनके प्रति इनकी घृणा भी बढ़ती रही। सन् १९१४ में फ़्रान्स के एक मासिक पत्र में किसी मुसलमान उच्च कर्मचारी ने लिखा था कि—"पिछले दस वर्ष की घटनाओं ने और मुस्लिम जगत पर जो वज्राघात हुए हैं, उन्होंने इसको अपूर्व रूप से सङ्गठित कर दिया है और एक मुसलमान में अपने दूसरे मुसलमान भाई के प्रति प्रेम और सहानुभूति के स्रोत उमड़ आए हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मुसलमान के हृदय में यूरोप के प्रति घोर घृणा उत्पन्न हो गई है।" अहमद अमीन नामक एक तुर्की लेखक ने सन् १९१४ में, जब कि बाल्कन युद्ध समाप्त हुआ ही था, लिखा था—"हमारा पराजय हो गया है, वह इसलिए कि हम सभ्यता और संस्कृति का अत्यधिक आदर करने लग गए हैं और न्याय तथा अन्याय के विषय में हमारे विचार बहुत ही उन्नत हो गए हैं। बल्गेरिया की सेना ने हमको बतला दिया है कि शत्रु का सामना करते समय प्रत्येक सैनिक को रक्त-पिपासु बन जाना चाहिए, उसको निर्दयतापूर्वक स्त्री और बच्चों का बध करना चाहिए, शत्रु के जान और माल की कोई परवाह न करनी चाहिए और मनुष्यत्व छोड़ कर उस समय जङ्गली बन जाना चाहिए। यदि यूरोप की यही नीति है तो हम भी इसका अनुकरण क्यों न करें? चलो! रक्तपात होने दो, शत्रुओं के दुःख, सन्ताप और क्लेश की चिन्ता मत करो। तब सम्राट फ़र्डिनेण्ड की सेना की भाँति संसार हमारा भी सम्मान करेगा।"

महासमर और मुसलमान

२०वीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोपियन लोगों के प्रति घृणा प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। ज्यों-ज्यों उनका सम्पर्क बढ़ता था और मुस्लिम लोग उनके सामाजिक सङ्गठन और राज-व्यवस्था को समझते जाते थे, त्यों-त्यों उनके प्रति असन्तोष उमड़ता जाता था। यूरोप के स्वतन्त्र वायु-मण्डल, प्रजातन्त्र शासन, उन्नत कला-कौशल और वैयक्तिक आत्म-सम्मान को देख कर मुसलमान लोग अपने देश में भी यह सब अनुभव करने की अभिलाषा करते थे। इस प्रकार उन्नत होना यूरोपियन लोगों को अखरता था। वे चाहते थे कि मुसलमान लोग उनके निरन्तर अधीन बने रहें। इसलिए मुस्लिम जगत यूरोप के व्यवहार से अधिकाधिक असन्तुष्ट और क्रुद्ध होता जाता था। यही कारण था कि जब यूरोप पर महासमर रूपी प्रलयकारिणी आपत्ति आई तो मुस्लिम संसार ने उसका अभिनन्दन किया। एक तुर्की पत्र ने लिखा था—"यूरोपियन राष्ट्र अपने देशों में होने वाले निरन्तर झगड़े और सामाजिक कुरीतियों की तरफ़ तो ध्यान देते नहीं, लेकिन हमारे देश में कोई भी गृह-कलह हुआ तो उनको हस्तक्षेप करने का कोई न कोई बहाना मिल जाता है। वे हमेशा इस ताक में रहते हैं कि हमारे स्वत्व का अपहरण किया जावे और हमारे राज्य को कोई न कोई धक्का पहुँचाया जावे। वे हमारे सजीव शरीर का विश्लेषण करने में किञ्चित भी नहीं हिचकते। इन अत्याचारों के कारण अर्से से हमारे हृदयों में क्रोधाग्नि सुलग रही है। अनुकूल अवसर के अभाव से हम केवल दाँत पीस कर रह जाते हैं। घूँसा उठाना चाहते हैं, पर रुक जाते हैं। ईश्वर करे वे आपस में लड़-झगड़ कर नष्ट हो जावें। भगवान की कृपा से आज वह वाञ्छित दिन आया हुआ जान पड़ता है। देखो, वे लोग एक-दूसरे को खाए जा रहे हैं।"

(क्रमशः)

उपन्यास-कला और प्रेमचन्द के उपन्यास

[श्री० केशरीकिशोर शरण जी, बी० ए० (ऑनर्स), साहित्य-भूषण, विशारद]

(शेषांश)

आक्षेप और उनका उत्तर



कला का देश, काल और सभ्यता से गहन सम्बन्ध है। इसी के अनुसार कला के स्वरूप में कुछ विभिन्नता होती है। पाश्चात्य कला में केवल दो गुणों की विशेष आवश्यकता मानी जाती है—सौन्दर्य (Beauty) और सत्य (Truth) की। विद्वानों का यह सिद्धान्त है और प्रकृति का नियम भी, कि जो वस्तु सत्य है वह अवश्य ही सुन्दर होगी और जो वस्तु सुन्दर होगी, वह अवश्य ही सत्यमय होगी। कीट्स ने लिखा है :—

Beauty is truth, truth beauty—that is all
Ye know on earth and all ye need to know.

परन्तु यही सब कुछ नहीं है। सौन्दर्य और सत्य के सम्मिलन से अकथनीय आनन्द का उद्रेक अवश्य होता है, जो इस जीवन के लिए अत्यन्तावश्यक है। पाश्चात्य जगत में नैतिक जीवन की कभी प्रधानता नहीं हुई, अतएव उनकी विचार-दृष्टि में आनन्द ही सब कुछ है। परन्तु भारतीय ऐहिक आनन्द को आनन्द ही नहीं मानते, उन्हें तो उन सात्विक अवयवों में सच्चा आनन्द मिलता है, जो बाहर से देखने में नीरस और सांसारिक दृष्टि से निष्प्रयोजन प्रतीत होते हैं। अतएव उनकी विचार-दृष्टि से कला का वास्तविक स्वरूप 'शिव' में है। संसार की सभी वस्तुएँ मानव-मात्र के कल्याण के लिए ही बनाई गई हैं, अतएव मनुष्यों की कृति में यदि उसका अभाव रहा तो वे उसे कला के पावन नाम से पुकारना नहीं चाहते। अतएव 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के एकत्र होने ही पर कला का उन्मेष होता है। पाश्चात्य कला में 'सुन्दरम्' का सर्व-प्रथम स्थान है, प्राच्य कला में अन्तिम; यहाँ 'सत्यं' की प्रधानता है। प्रेमचन्द जी कला के इसी स्वरूप को सम्मुख रख कर अपने उपन्यासों का निर्माण करते हैं। उनमें देश तथा समाज का सत्य चित्र रहता है और ऐसे-ऐसे अनूठे सिद्धान्तों का निचोड़, जिसे अमल में लाने से प्राणिमात्र का कल्याण हो। उनमें सौन्दर्य का स्वरूप रहता है—कारण, इसके बिना उनमें रोचकता नहीं आ सकती, परन्तु इसमें सत्य और उन्नत स्वरूप का ही दिग्दर्शन रहता है। उन्होंने सौन्दर्य को वासना की वस्तु नहीं, उपासना और उत्सर्ग की वस्तु माना है। अतएव कला की दृष्टि से उनके उपन्यास अत्यन्त ही सुन्दर हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनकी इस प्रचण्ड प्रतिभा को देख कर सभी चकित हैं। कुछ तो अवाक् हो, उनके भक्त और प्रशंसक बन गए हैं, परन्तु कुछ ऐसी प्रकृति के भी मनुष्य हैं, जो सदा इसी चिन्ता में लगे हुए हैं कि इन रचनाओं को अमौलिक प्रमाणित कर दें। समालोचना बुरी चीज़ नहीं है। यह होनी चाहिए और अवश्य होनी चाहिए, परन्तु निष्पक्ष भाव से। निष्पक्ष समालोचनाओं से लेखक तथा साहित्य और इस कारण मनुष्य-मात्र का बड़ा कल्याण होता है। यह परीक्षा की वह आँच है, जिसमें दीप्त हो सोना और भी निखर जाता है। लेखक अपनी कमी को जान जाता है और उसे यथासाध्य दूर करने का प्रयत्न करता है। श्री० इलाचन्द जोशी के समान कला के सम्बन्ध में अपना स्वतन्त्र मत रखना आवश्यक है, परन्तु श्री० हेमचन्द जोशी और श्री० अवध उपाध्याय के समान एक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक को चोर प्रमाणित करना निन्दनीय है। मेरी सम्मति में अन्तिम श्रेणी के सज्जन 'मौलिकता' का उपयुक्त अर्थ नहीं लेते। क्या उनके विचार में इसका यह अर्थ है कि किसी लेख में जो विचार आदि से अन्त तक लिखे हों, वे सब बिना किसी अपवाद के लेखक के सिर से निकले

हों ? यदि उनका यह अर्थ है तो यह अवश्य अव्यावहारिक है। 'हमारे और आपके बहुतेरे विचार, निन्यानबे दशमलव नौ (९९·९) से भी अधिक, दूसरे ग्रन्थों के आधारभूत होते हैं।'* ऐसी दशा में विद्वानों के सिद्धान्त में कुछ सामञ्जस्य न होना ही आश्चर्यजनक होता। मोपासाँ (Moupassant) के कथनानुसार "संसार में (प्राचीनतम भावों को छोड़ कर) कोई वस्तु या भाव नया† नहीं है। साहित्यिक कोई नई बात नहीं कह सकते। वे केवल किसी वस्तु या अवस्था को नई 'विचार-दृष्टि' से देख सकते हैं।" वास्तव में इसी में पूर्ण सफलता है। ढाँचे के मौलिक न होने से कोई ग्रन्थ अमौलिक नहीं हो सकता। "मौलिकता तो ग्रन्थ के प्रस्तुत करने में है; विचारों के सामने रखने की विधि में।" और यह मैं निस्सङ्कोच रूप से कह सकता हूँ कि इस दृष्टि से प्रेमचन्द जी के उपन्यास उत्कृष्ट हैं। उपरोक्त सिद्धान्तानुसार अवध जी उपाध्याय का 'वैनिटी फ़ेयर' से रङ्गभूमि की कुछेक अंश में—और वह भी केवल ढाँचे में—समानता देख कर उसे नक़ल प्रमाणित करना अत्यन्त उपहास्यास्पद है। 'वैनिटी फ़ेयर' एक 'घरेलू कॉमेडी' (Domestic Comedy) है और रङ्गभूमि (Tragedy)। पहले में चुहल और आमोद-प्रमोद की तस्वीर है, दूसरे में असफलता और निराशा की। पहले में हास्य और शृङ्गार-रस की प्रधानता है, दूसरे में करुण और वीर-रस की। 'वैनिटी फ़ेयर' का लेखक लिखता है :—

'Come children let us shut up the box and puppets for our play is played out'

परन्तु इसके विपरीत रङ्गभूमि का लेखक सूरदास के मुख से कहलवाता है—"फिर खेलेंगे, ज़रा दम ले लेने दो, हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे, और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, ज़रूर होगी।" यहाँ का खेल (या संग्राम ?) समाप्त नहीं होता, फिर बिना जीते वह आनन्द, वह उल्लास कहाँ !! वहाँ युद्ध के पश्चात् युद्ध का सैनिक द्यूत, मद्य और स्त्री-प्रेम में अपना जीवन सार्थक करता है। परन्तु भारतीयों* को इस प्रकार के रास-रङ्ग के लिए अवकाश कहाँ ? उनके लिए तो व्यक्तिगत सुख और आनन्द के स्वप्न देखने का भी अवकाश नहीं। हमारा प्यारा विनय उसके लिए तड़पता ही चला गया। और अभी हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि कितनी महान आत्माएँ इस युद्धदेव को भेंट की जायँगी। अभी तो यह हमारी भावी लड़ाई का केवल श्रीगणेश है। हमें तो आश्चर्य होता है कि श्री० अवध जी उपाध्याय के ऐसे विद्वान भी इतनी स्पष्ट असमानता के रहते हुए भी कैसे एक-दूसरे की नक़ल प्रमाणित करने के लिए लगभग एक वर्ष तक भगीरथ-प्रयत्न करते रहे। (श्री० लमगोड़ा जी के शब्दों में) "दोनों उपन्यास अपने-अपने देश की घटनाओं, वहाँ के चरित्रों, गुणों तथा दोषों की ऐसी सच्ची तसवीरें हैं कि उन उपन्यासों को एक दूसरे की नक़ल कहना उतना ही सच या झूठ है, जितना कि यह कहना कि भारतवर्ष इङ्गलिस्तान की नक़ल है।"† हाँ; यदि समानता है तो बस इतनी ही कि दोनों उपन्यासों में बहुत से पात्र एक साथ ही प्रसूत होते हैं, जिनके सम्पर्क से समाज का सम्पूर्ण चित्र आँखों के सामने चला आता है; परन्तु कला के इस प्रमुख सिद्धान्त में भी दोनों में अस्पष्ट अन्तर है। वैनिटीफ़ेयर के पात्रों का कर्मक्षेत्र विभिन्न है, उनमें किसी प्रकार की एकता नहीं। उसके पात्र अनेक रहते हैं और उनके कार्य का मार्ग भी अनेक। इसके विपरीत रङ्गभूमि के पात्र अनेक होते हुए भी सबके कार्य का सम्बन्ध एक निश्चित मार्ग की ओर है।‡ प्रेमचन्द जी की कला के मुख्य सिद्धान्तों में टॉलस्टॉय से बहुत-कुछ समानता है। टॉलस्टॉय के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'War and Peace' के सभी पात्रों का कार्य-क्रम एकत्व की ओर सङ्केत करता है। परन्तु टॉलस्टॉय का एक ही पात्र भिन्न-भिन्न स्वरूप में सम्मुख आता है—पहले सैनिक के वेश में, तब राज-

* 'मौलिकता' पृ० २

† १९वें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का भाषण—पृ० २४।

* सरस्वती में लमगोड़ा जी

† 'उपन्यास-विवेचना' शीर्षक लेख से—'सरस्वती' १९२८।

‡—Lubbock के Crafts of fiction नामक ग्रन्थ के १० से लेकर १२ पृष्ठों का सारांश।

नीतिज्ञ और अन्तिम बार युवराज के वेश में। परन्तु प्रेमचन्द जी के पात्र एक निश्चित लक्ष्य के साथ कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं और अन्त तक उनका स्वरूप एक सा रहता है। शिलीमुख जी की आलोचना* में कोई विशेष बात नहीं है। कदाचित् आप ब्राह्मण हैं और प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में ब्राह्मणों पर कुछ आक्षेप मिलते हैं, इसी कारण आप दुखित प्रतीत होते हैं! चरित्र-चित्रण सम्बन्धी आक्षेपों का उत्तर तो उक्त-सम्बन्धी मेरे लेख के प्रकरण से स्पष्ट है। इनके अतिरिक्त एक और सज्जन हैं, पं० हेमचन्द्र जी जोशी। इनकी आलोचनाओं का उत्तर स्वयं श्री० प्रेमचन्द जी ही ने दिया है, अतएव उन्हें यहाँ दुहराना असङ्गत होगा। किसी विषय पर अपना स्वतन्त्र और अनूठा विचार रखना किसी भी दशा में दोष नहीं है। पुनः प्रेमचन्द जी ने उभय पक्षों के मतों का बड़ी विद्वत्ता के साथ खण्डन-मण्डन किया है। श्री० इलाचन्द जी जोशी के शब्दों में 'ये इस विषय में निपुण हैं।' महात्मा जी के सिद्धान्तों के पूरे अनुयायी होने के कारण इन्होंने अपनी पुस्तकों में यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि वे सिद्धान्त और विचार किस प्रकार कार्य में परिणत किए जा सकते हैं। व्यर्थ की बातचीत और कौन्सिलों की वाक्पटुता से देश का कल्याण नहीं हो सकता। वह तो हो सकता है केवल हिन्दू-मुस्लिम में एकता रखने से, अस्पृश्यता को दूर करने, सादा जीवन और ऊँचा विचार रखने, कर्तव्य का पालन करने और किसानों के साथ हमदर्दी रखने से। इन्हें विज्ञान की उन्नति पर विश्वास है और सङ्गीत के प्रचार को ये बढ़ाना चाहते हैं। समाज-सुधार रचनात्मक है, वह कार्यों से ही हो सकता है, शब्दों से नहीं। धर्म-सम्बन्धी इनके जो उन्नत विचार हैं, उसकी तो कोई भी बुद्धिमान मनुष्य आलोचना नहीं कर सकता। इनके विचार में धर्म की भित्ति प्रेम पर है; हिन्दू, यहूदी, ईसाई, बौद्ध, मुसलमान—ये धर्म, धर्म नहीं, साम्प्रदायिक झगड़े हैं। कुछ लोगों का विचार है कि प्रेमचन्द जी प्राचीन हिन्दू-सभ्यता की चर्चा घृणित* समझते हैं। परन्तु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है। प्रेमचन्द जी की पंक्ति-पंक्ति में देश के प्राचीन गौरव की झलक मौजूद है। भला ऐसे सज्जन के प्रति तो ऐसा नीच ख़्याल स्वप्न में भी नहीं आ सकता, जिसके मस्तिष्क की उपज सूरदास का चरित्र हो। उसके प्रत्येक शब्द में हमारे राष्ट्रीय संग्राम का मन्त्र, हमारी सभ्यता का निचोड़ और हमारी सज्जनता का आदर्श भरा हुआ है।

* 'सरस्वती' फ़रवरी, १९२९

उपसंहार

प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, यह स्पष्ट है। इनके जोड़ का अभी तक कोई औपन्यासिक हिन्दी-साहित्य में प्रसूत नहीं हुआ है। इनका स्थान अद्वितीय है। इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास-साहित्य की दिनोंदिन वृद्धि हो रही है और निकट-भविष्य में बहुत से प्रतिभा-सम्पन्न औपन्यासिक इस क्षेत्र में अवश्य अवतीर्ण होंगे। परन्तु उक्त पथ के प्रदर्शक का सेहरा इन्हीं के सिर पर है। और, इसमें सन्देह नहीं कि इनके मस्तक पर जो 'गौरव-मुकुट' रक्खा गया है, उसके ये सदा योग्य हैं। प्रेमचन्द जी का स्थान विश्व-साहित्य में क्या है अथवा क्या होगा, यह तो अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु यदि दुनिया अन्धी और विवेकहीन नहीं है, वह नीर-क्षीर की सच्ची पारखी है, तो यह निश्चित है कि इनकी भी गणना संसार के प्रमुख साहित्य-महारथियों की श्रेणी में होगी। प्रेमचन्द जी पर "हमें नाज़ है, हिन्दी को नाज़ है, भारत को नाज़ है, और शीघ्र ही वह दिन आने वाला है, जब संसार को नाज़ होगा।"

श्री० नन्ददुलारेलाल जी वाजपेयी का 'प्रेमचन्द और स्कन्दगुप्त' शीर्षक लेख।

श्री० प्रेमचन्द जी ने प्रसाद जी के स्कन्दगुप्त नाटक की समालोचना करते हुए लिखा था—"तीन हज़ार वर्ष पहले के गड़े हुए मुर्दों को उखाड़ने से क्या लाभ?" इसके लिखने से प्रेमचन्द जी का यह तात्पर्य था कि इस समय तो ऐसे नाटक लिखे जाने चाहिए, जिसमें आधुनिक समाज की दशा का दिग्दर्शन हो।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

सातवाँ खण्ड

सन्तोषानन्द



अलिन्द की चेतावनी पढ़ते ही मैं सन्नाटे में आ गया। मेरे अचरज और भय दोनों की सीमा न रही। अलिन्द जीवित है और वह यहाँ? क्यों और कैसे? ऐसी भयङ्कर परिस्थिति में पड़ गया कि इन पर कुछ भी सोचने-विचारने का अवसर न मिला। जान के लाले पड़े हुए थे। सचमुच मोटर मुझे मृत्यु के निकट बड़ी तेज़ी से लिए जा रही थी। एक पहाड़ी टीला, जिसे मैंने रेल पर से देख कर अनुमान किया था कि स्टेशन से कोसों दूर नगर के बाहर है, उसी तरफ़ उजाड़ खण्ड मैदानों में होती हुई मोटर के जाने का लक्ष्य मालूम हुआ। टीले की परछाहीं ज्यों-ज्यों नज़दीक होती जाती थी, त्यों-त्यों वह अँधेरे आकाश में कालिमा की तरह फैलती हुई एक अजब डरावना रूप धारण कर रही थी। प्राण-रक्षा का कोई भी उपाय सूझता न था।

मोटर पर से कूदना असम्भव था और चिल्लाना भी व्यर्थ। चिल्लाहट सुनने के लिए कोई आदमी न था। और इतनी तेज़ चाल में एकाएक कूदना अपने हाथ-पैर तुड़वा कर उन हत्यारों के लिए अपने को और भी आसान शिकार बनाना था। मोटर रोकने के लिए यद्यपि 'हैण्ड-ब्रेक' सामने ही था, जिसे मैं प्रयोग कर सकता था, फिर भी मोटर रुकते-रुकते कुछ देर अवश्य लगती। इतने समय में तो मेरे शक को ताड़ते ही पीछे से एक तमञ्चे की गोली या छुरी का वार मुझे वहीं ढेर कर सकता था।

मैं जानता था कि ये लोग ऐसे मूर्ख न होंगे कि मेरी हत्या करने के लिए मुझे ज़मीन पर उतार कर मुझे मुक़ाबला करने का अवसर देंगे। मेरा प्राणवध अवश्य मोटर ही पर पीछे से अचानक आक्रमण द्वारा होगा। इसमें देर बस मेरी लाश ठिकाने लगाने के उपयुक्त स्थान पर पहुँचने भर की है। इसी बीच में और जब तक ये लोग मेरी ओर से निश्चिन्त थे, तभी तक मेरी रक्षा की कोई युक्ति की जा सकती थी, अन्यथा इनके पञ्जे से मेरा जीता हुआ निकलना बिल्कुल असम्भव था। जब ईश्वर ने इतनी कृपा की कि दुश्मनों के बीच में न जाने कहाँ से अलिन्द ऐसा मेरा सच्चा हितैषी भेज कर इस षड्यन्त्र की मुझे सूचना दिलवा दी, तो क्या ऐसे आड़े वक़्त में वह करुणानिधान अपना हाथ खींच लेगा? होना तो ऐसा नहीं चाहिए। क्योंकि यदि उसकी यह नीयत होती तो मुझे सावधान होने के लिए सूचना क्यों मिलती? इस विचार से दिल में कुछ ढाढ़स हुआ। मगर परिस्थिति ऐसी बेढब थी कि सिवाय परमात्मा पर भरोसा करने के मैं अपनी बचत का कोई उपाय कर नहीं सकता था। न पास में कोई हथियार था और न पीछे के अनजाने हमला रोकने की कोई तरकीब, और न मोटर में मेरे लिए मुक़ाबला करने का कोई अवकाश ही था। क्योंकि मैं अगली सीट पर था, जहाँ सामने जगह एक तो योंही कम होती है, उस पर चलाने वाला चक्का, ब्रेक और गियर-शैफ़्ट के मारे कोई स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने हाथ-पैरों से एकाएक काम नहीं ले सकता।

शोफ़र से मुझे बेफ़िक्री थी। उसके हाथ-पैर मोटर चलाने में फँसे हुए थे। वह मोटर बिना रोके, मुझ पर वार कर नहीं सकता था। और अगर किसी तरकीब से करने की कोशिश ही करता, तो निहत्थे होने पर भी मैं उसका मुक़ाबला अच्छी तरह से कर सकता था। इसलिए असली डर मुझे पीछे वाले आदमी से था, जिसकी आहट पर मोटर की भड़भड़ाहट में भी कान फैलाए मैं ध्यान लगाए हुए था।

वह कई दफ़े अपनी जगह पर उठ-उठ कर बैठता

हुआ जान पड़ा। सामने हवा रोकने वाले शीशे में ग़ौर करने पर, जो पुर्ज़ों के धुँधले प्रकाश में इस वक्त भद्दे आईने की तरह काम दे रहा था, मेरे सर के ऊपर कभी-कभी एक परछाईं सी प्रतीत होती थी। इससे मैंने यही अनुमान किया कि मेरे पीछे वाला आदमी मुझ तक बढ़-बढ़ कर रुक जाता है। शायद वह इस तरह अपने वार के लक्ष्य की सुविधा देख रहा था। समय चूकने का नहीं था। समझ गया कि बस एक ही दो क्षण में मेरा क़िस्सा अब तमाम होने वाला है। एकाएक मोटर बिगाड़ देने की मुझे एक चाल सूझी।

शोफ़र का पैर "क्लच" पर से हटा हुआ था। मैंने चुपके से अपना दाहिना पैर बढ़ा कर "क्लच" पर रक्खा और अँगड़ाई लेते हुए उसे दबाया। मेरा हाथ, जो अँगड़ाई लेने में उठ कर मेरे पीछे की तरफ़ झुक गया था, पीछे वाले आदमी की पगड़ी से लगा। मैं चौंक कर उस हाथ को "गियर-शैफ़्ट" पर झटके से इस तरह तिरछा गिराया कि "गियर" "टापस्पीड" से हट कर खट से "बैक स्पीड" पर जा लगा। यानी मोटर की चाल बजाय आगे बढ़ने के पीछे चलने को हो गई। वैसे ही मैंने "क्लच" पर से पैर हटा लिया। यह कार्रवाई पलक मारते ही इतनी जल्दी हुई कि इसका पता शोफ़र को भी न चल सका।

आँधी की तरह आगे बढ़ती हुई चाल में एकाएक एञ्जिन का ज़ोर पीछे ढकेलने को हो जाने से मोटर की जो दुर्गति होने वाली थी, हो गई। भीतर, पुरज़े चूर-चूर हो गए। एक कड़ाके की आवाज़ के साथ मोटर बड़े ज़ोर से उछल कर झकझोर उठी। ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने हम लोगों को तोप के गोले के भीतर बैठाल कर तोप दाग़ दिया। मेरे पीछे एक हृदय-विदारक चीख़ सुनाई पड़ी। झटके में शोफ़र की नाक और खोपड़ी चलाने वाले चक्के पर इस ज़ोरों से लगी कि वह केवल दो बार आह करके निर्जीव सा हो गया। मैं इस घटना के लिए पहिले ही से तैयार था। और मैंने "क्लच" छोड़ते ही अपने सर को अपनी दोनों बाहों के बीच में सुरक्षित कर रक्खा था। इसलिए मेरी कुहनियाँ सामने के शीशे पर टकरा कर रह गईं, कहीं ज़्यादे चोट नहीं आई।

पिछले ख़ाने में चिल्लाना और तड़पना अब तक जारी था। मगर मैं इसकी कुछ भी परवाह न करके मोटर से निकला और मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद देकर वहाँ से चलने की तैयारी की। वैसे ही वह तड़पता हुआ आदमी अपनी मर्मभेदी गिड़गिड़ाहट से अपनी बोली में दोहाई मचाने और किसी सङ्कट से उद्धार पाने के लिए नाक रगड़ने लगा। पहिले तो मुझे शक हुआ कि शायद वह मुझे अपने चङ्गुल से निकलता हुआ पाकर फिर मुझे फाँसने की चाल कर रहा है। मगर उसकी आवाज़ में कुछ ऐसा आकर्षण था कि उसे अपना ख़ूनी जानते हुए भी जेब से एक पतला सा टार्च—बिजली की बत्ती—निकाल कर, जिसे मैं सफ़र में हमेशा साथ रखता था, उसको देखने के लिए बढ़ा। मोटर के सभी लम्प धक्के में बुझ चुके थे। बाहर-भीतर हर जगह अँधेरा ही अँधेरा था। डरते-डरते अपना हाथ अपने से दूर करके इस तरह टार्च की रोशनी मैंने मोटर के भीतर डाली कि अगर वह रोशनी का निशाना लगा कर तमञ्चा चलावे भी, तो वह मेरे लिए प्राण-घातक न हो। मगर पहली ही झलक में एक विचित्र ही दृश्य दिखलाई पड़ा। वह अपने छुरे का ख़ुद ही ऐसा बुरा शिकार हो रहा था कि उठने-बैठने से एकदम लाचार था। न जाने कैसे छुरा उसकी बाईं हथेली को छेदता हुआ उसकी बाईं टाँग की पिण्डली में घुसा हुआ था और ख़ून से उसके कपड़े तर हो रहे थे।

"कहो दोस्त, तुम तो मारने मुझे चले थे, मगर मरने लगे ख़ुद ही।"

"भाई माफ़ करो, मर रहा हूँ, कुत्ते की मौत मर रहा हूँ, ज़रा मेरी हालत पर तरस खाओ। मेरे बदन से छुरे को निकालो। आह! हाय! बाप! मर गया।"

"तुम तो मुझ पर बहुत तरस खाने आए थे न? मरे क्यों जाते हो? जहाँ दूसरों को तुमने छुरे का मज़ा चखाया होगा, तहाँ थोड़ी देर तुम भी इसके मज़े अब लूट लो। आख़िर ख़ून निकलते रहने से दो-चार घण्टे बाद मर तो जाओगे ही।"

जल्लाद में भी, जब उसके ऊपर पड़ती है तभी मनुष्यत्व का सञ्चार होता है। कहाँ वह ख़ूनी दिल लेकर मेरा ख़ून करने के लिए आया था और कहाँ ईश्वर की महिमा ऐसी हुई कि उसे अपना अब मानुषी हृदय दिखला कर मेरी ही कृपाओं का मुहताज बनना पड़ा। उसने रो-रोकर बतलाया कि वह हुक्मी बन्दा था।

अगली सीट पर मेरे बैठ जाने से उसे मेरे पेट में छुरा भोंकने की सुविधा न मिली, इसलिए वह छुरा ताने मेरी गर्दन पर प्राणघातक वार करने के लिए लक्ष्य का अन्दाज़ा लगा रहा था। इसी बीच में मोटर के धक्के से वह ऐसा गड़बड़ा कर गिरा कि उसका हाथ बहक गया और उसका पूरा वार उसकी टाँग पर पड़ी हुई उसी की हथेली पर ऐसे ज़ोर से पड़ा कि दोनों छिद कर एक में गुँथ गए। मैंने परमात्मा को अपनी रक्षा के लिए बार-म्बार धन्यवाद दिया। क्योंकि अगर मोटर की कड़कड़ाहट में एक सेकेण्ड की भी देर हो जाती, तो इस समय बजाय उसके मैं दम तोड़ता हुआ नज़र आता।

वह मेरा जानी दुश्मन था, फिर भी उसकी व्यथा मुझसे देखी न गई। छुरा निकाल कर उसके साफ़े की धज्जियों से मैंने पट्टियाँ बाँधीं। उसकी चोटें प्राण-घातक न थीं, तो भी एकाध महीने उसे चारपाई पर लिटाए रखने के लिए काफ़ी थीं। शोफ़र को भी एक नज़र देखा। उसे होश अब कुछ आने लगा था। मैंने अब और ठहरना वहाँ मुनासिब नहीं समझा।

२

सीधे काशी पहुँच कर मैंने दम लिया। काशी क्यों आया? आह! दिल में एक छिपी हुई आशा थी कि शायद अब तारा घर वापस आ गई हो। मगर हाय! आशा निर्मूल निकली। उसके लिए मेरा हृदय चुपके-चुपके ऐसा कलप रहा था कि संसार में मुझे अब शान्ति दुर्लभ थी। उसी के वियोग की व्याकुलता से घबरा कर मैं भ्रमण पर निकला था। समझता था कि मेरी उचाट के कारण में बहुत बड़ा हिस्सा अलिन्द को अपने कुव्यवहार से मृत्यु के मुँह में मेरा ढकेल देना है। मगर अलिन्द के जीवित होने की सूचना पाकर भी मेरे हृदय की छटपटाहट में कमी नहीं हुई। बल्कि इस दफ़े काशी आकर मुझे पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि मेरी अशान्ति का मुख्य कारण तारा ही है, जिसके बिना मेरा घर मुझे काटे खा रहा है। एक-एक पल सौ-सौ युग के समान बीत रहा था। अब जाना कि मैं तारा को प्यार करता हूँ। सम्पूर्ण हृदय से प्यार करता हूँ। आज से नहीं, बल्कि उसी दम से, जब वह एक नन्हीं-सी अबोध बालिका थी। मगर अफ़सोस! अपने दिमाग़ के भुलावे में पड़ कर इसको न समझ सका। अपने को न समझ सका, तारा को न समझ सका। और इसी नासमझी में पड़ कर मैं अपना अनमोल रत्न हाय! खो बैठा।

मेरा प्रेम मुझे उसकी भलाई की चिन्ता में सदा तल्लीन रखता था, उसके जीवन सुधारने की कल्पना में लगाए रखता था। उसे एक आदर्श नारी बनाने के उद्योग में तत्पर रखता था। फिर भी यह कम्बख़्त प्रेम मुझसे अपने को इतना छिपाए हुए क्यों रहा? मेरे व्यवहारों को ऐसा नीरस क्यों रक्खा? उसे किसी दूसरे के गले का हार बनाने की फ़िक्र में मुझे क्यों रहने दिया? क्या समाज के डर से? बेशक यही बात थी। वह देवियों में देवी होकर भी मेरी निगाहों में शायद वेश्या-पुत्री थी। उससे बढ़ कर मैं अवश्य ही समाज का आदर करता था—उस ढोंगी, पापी और पाखण्डी समाज का, जो लाख उत्तम होकर भी उत्तमता में उसकी जूतियों की भी बराबरी नहीं कर सकता। इसी कम्बख़्त के पीछे मैं उस बेचारी का उचित सत्कार नहीं कर सका। आह! अन्याय! अन्याय!! और घोर अन्याय!!! अब जो वह कहीं मिल जाती तो उस वेश्या-पुत्री पर समाज क्या, संसार तक न्योछावर कर देता। सर-आँखों पर बिठाता! हृदय की इष्ट-देवी बनाता। आजन्म उसी की पूजा करता, उसी का इस लोक से उस लोक तक दम भरता।

अलिन्द की उस रियासत में मौजूदगी जान कर भी मैं बिना उससे मिले और बिना उसको खोज निकाले वहाँ से चला आया। अगर ऐसी दशा में बजाय अलिन्द के तारा की ख़बर मिलती, तो क्या मैं वहाँ से इस तरह आ सकता था? कदापि नहीं। आता तो तारा को साथ लेकर या उसकी खोज में प्राण गँवा कर। यह अन्तर अब मित्रता और प्रेम में पाया; सहानुभूति और अनुराग में जाना; आदर और भक्ति में देखा। क्योंकि मित्रता, सहानुभूति और आदर के नाते मैं अलिन्द के लिए उतना ही उत्सुक था, जितना प्रेम, अनुराग और भक्ति के बल पर तारा के लिए। मगर अलिन्द की ख़ातिर अपनी कुशलता के ख़्याल से वहाँ ठहरना उचित नहीं समझा और तारा के लिए प्राण तक दे देना मेरे लिए अहोभाग्य था। तब भला भक्ति के बदले केवल मेरा आदर पाकर तारा को सन्तोष कैसे

हो सकता था ? अपनी भूल अब समझी। हाय ! घर लुट गया, तब आँख खुली।

मेरी तबियत की उचाट ने काशी में मुझे दो दिन से अधिक ठहरने नहीं दिया। मैंने यात्रा की फिर ठानी। अलिन्द की भी ख़बर लेना ज़रूरी था और मैं कहने को इसी इरादे से निकला कि इस दफ़े उसे ढूँढ़ कर अपने साथ किसी न किसी तरह लेता आऊँगा। मगर उस रहस्यमय रियासत में पहुँचते-पहुँचते कई दिन लग गए। क्योंकि दिल में तो और ही धुन लगी हुई थी। उसे आशा थी कि इधर-उधर भटकने ही में मेरा खोया हुआ रत्न शायद कहीं हाथ लग जाय।

मगर उस रियासत में क़दम रखने के लिए मुझे बड़ी तैयारियाँ करनी पड़ीं। क्योंकि मेरा असली रूप में वहाँ देखा जाना सीधे मृत्यु के मुँह में जाना था। मैं जानता था कि जिस मोटर पर मेरा ख़ून होने वाला था, उसके शोफ़र को जब होश आया होगा तो उसने किसी न किसी भाँति मोटर को ढकेलवा कर अपने स्थान पर पहुँचाया होगा और जिसके इशारे पर इन लोगों ने मेरी हत्या के लिए कमर कसी थी, उससे अपनी कुशलता की ख़ातिर मेरी मृत्यु की झूठी सूचना ज़रूर ही दी होगी। इसलिए मेरी वहाँ मौजूदगी की ख़बर पाते ही सब से पहिले तो यही लोग अपनी-अपनी बचत के लिए मेरी जान के ग्राहक हो जाते, और मैनेजर तो मेरे ख़ून के प्यासे थे ही।

इसलिए वहाँ दो रोज़ पहुँचने के पहले ही मैंने एक ख़ास आदमी भेज कर नगर भर में बड़े-बड़े इश्तहार इस बात के चिपकवा दिए और ढिंढोरा भी पिटवा दिया कि पञ्जाब के विख्यात राजवैद्य, जो बूढ़ों को जवान, बाँझ को पुत्रवती और गर्भ न चाहने वालियों को बाँझ बनाने में कमाल रखते हैं, आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त और ऐसी कई बातों का विज्ञापन दिया, जिससे मैनेजर की उत्सुकता भड़के। क्योंकि जब अलिन्द के लिए मुझे उस रियासत में जाना ही था, तो मैं केवल कुतूहलवश नहीं, बल्कि अपनी औपन्यासिक प्रवृत्ति के निमित्त भी, वहाँ के अद्भुत, विचित्र और विलक्षण रहस्यों और षड्यन्त्रों की थाह भी लगे हाथों लेना चाहता था, जिनकी तुलना मुझे कल्पना-संसार तक में नहीं मिली थी, और इनका भेद पाना राज्य के कर्ता-धर्ताओं से बिना घुले-मिले सम्भव नहीं था।

मेरे विज्ञापन ने अपना ठीक काम किया, जैसे मैं दाढ़ी-मूँछ, साफ़ा और हरी ऐनक लगाए पञ्जाबी वैद्य बना हुआ रेल से उतरा, वैसे ही रियासत की ओर से मेरी आवभगत हुई और मैं फ़ौरन मैनेजर के पास पहुँचाया गया। उनसे मालूम हुआ कि राज्य के बड़े डॉक्टर फ़ालिज के पञ्जे में मौत की घड़ियाँ गिन रहे हैं। उन्हीं के लिए मेरी इतनी आवभगत हुई थी, क्योंकि स्थानीय हकीम, डॉक्टर, वैद्य, सभी उनकी बीमारी से हार चुके थे। उन्हें देखा। यह वही महाशय थे, जिनके यहाँ मैं पहिले मेहमान रह चुका था और उनकी घोड़े से गिरने की चोटों पर मलहम-पट्टी की थी। दिल में मैं समझ गया कि अधेड़ अवस्था में बाईं तरफ़ का फ़ालिज प्राणघातक होता ही है, उस पर यहाँ के डॉक्टरों पर इनके अविश्वास ने दशा और भी भयङ्कर बना दी है। वह बस अब कुछ घण्टों के मेहमान थे। मैंने हाथ लगाना मुनासिब नहीं समझा। फिर भी नुस्ख़ा लिखना पड़ा। ख़ैर, उसमें कुछ दवाइयाँ ऐसी लिख दीं, जो बाहर से मँगाना पड़े, ताकि मेरी दवा पहुँचने के पहिले ही यह क़िस्सा तमाम हो जाय और मेरी प्रतिष्ठा में कलङ्क न लगे। उनकी बीमारी की ख़बर उनके घर वालों को अब तक नहीं दी जा सकी थी। पूछने पर जाना कि उन लोगों का ठीक पता मैनेजर को भी मालूम न था, और फ़ालिज का दौरा होते ही डॉक्टर साहब की बोली बन्द हो चुकी थी। किसी से दिल का हाल कुछ कह नहीं सकते थे। वह बुड्ढा चपरासी भी, जो डॉक्टर के साथ हमेशा रहा करता था और जिसको शराब पिला कर मैंने बहुत सी भेद की बातें जानी थीं, वहाँ नहीं दिखाई पड़ा।

उसी दिन डॉक्टर साहब चल बसे। राज्य के मुख्य कर्ता होकर भी यह उनके कर्मों का फल था कि उन्हें आग तक देने के लिए कोई सम्बन्धी न मिला। दाह-कर्म एक ब्राह्मण के लड़के से कराया गया। उनके मरने के दो दिन बाद न जाने कैसे इसकी ख़बर पाकर उनका कोई आया और रोकर चला गया। क्योंकि उनके मकान में सिवाय कपड़े और बिस्तरे के कोई भी चीज़ उनकी न निकली, सब रियासत की थी।

इस झञ्झट में फँस जाने के कारण मैं अलिन्द की कोई ख़बर अब तक ले न सका। फिर भी मेरा ध्यान बराबर उसी पर बना रहा। मैं सोचता था, आख़िर उसके यहाँ आने का क्या कारण था? क्या इस जगह से सरोज का किसी प्रकार का सम्बन्ध तो नहीं है। सम्भव है, उसके पिता यानी सेठ जी इन दिनों यहीं रहने लगे हों या उसकी यहाँ ससुराल हो। फिर मैं उस कमली वाले का ख़्याल करता था, जिसने उस रात को मोटर पर चढ़ते वक़्त मुझे पत्र दिया था। क्या वह अलिन्द था या उसका कोई भेजा हुआ आदमी। अगर अलिन्द था तो वह इस रूप में क्यों था? इसके बाद मेरी विचार-धारा इस बात पर बहकने लगती थी कि मुमकिन है कि वह उस दिन संयोगवश यहाँ आ गया हो और अब वह यहाँ हो या न हो। मगर मेरी हत्या के षड्यन्त्र का भेद पाना बिना यहाँ से गहरा सम्बन्ध हुए सम्भव नहीं था। ऐसा सम्बन्ध दो-चार दिन में पैदा नहीं हो सकता था। इसलिए मुझे अन्त में यह विश्वास करना पड़ा कि जब से वह काशी से भागा, अवश्य यहीं रहा और जिस कारण ने उसे यहाँ इतने दिनों रोक कर यहाँ के ऐसे गूढ़ मामले में इतनी पैठ कराई, वह कदापि ऐसा साधारण नहीं हो सकता, जो उसे आसानी से छुटकारा दे सके। वह अब भी यहीं होगा।

इसलिए उसे पाने की पूर्ण आशा रक्खे हुए मैं अपने डेरे में, जिसे मेरे आदमी ने पहिले ही से ठीक कर रक्खा था, रहने लगा। और अपने विज्ञापन के प्रभाव से बड़े-बड़े लोगों में अपनी पहुँच भी आरम्भ की। मैनेजर साहब की भी कृपा-दृष्टि मुझ पर बढ़ने लगी। यद्यपि डॉक्टर साहब की मृत्यु से वह बहुत परेशान नज़र आते थे, तथापि वह मेरी ख़ातिर करने में कभी नहीं चूके। प्रायः नित्य ही वह राज्य के बग़ीचों से मेवे, फल, तरकारी वग़ैरह भेजा करते थे। आदमी भेज कर मेरी कुशलता पुछवाते थे। वे दो-एक बार मामूली दवाइयाँ बनवाने ख़ुद भी आए।

बातों-बातों में उन्होंने एक दिन पूछा—बाँझ होने की दवा तो आपको बनानी न पड़ती होगी; क्योंकि संसार में शायद ही कोई स्त्री ऐसी हो, जो पुत्रवती न होना चाहती हो।

मैंने दिल में हँस कर जवाब दिया—जी नहीं, इसकी माँग छिपे तौर से बौत ज़्यादा होती है। यों तो तवायफ़ें, जो अपणी जवानी देर तक बचाए रखना चाहती हैं; इस दवा का इस्तैमाल करती ही हैं। मगर इनके एलावे उन राँडों को भी इसकी ज़रूरत रहती है, जो अपणी मस्ती रोक नहीं पातीं। डॉक्टरों के यहाँ ऐसी कोई मुजर्रब दवा अपणा दायमी असर डालने वाली है नहीं।

वह गड़बड़ा कर बोल उठे—हाँ? तभी।

मैंने उत्सुक होकर पूछा—क्या?

उन्होंने टालते हुए कहा—कुछ नहीं। मैं यही सोच रहा था कि सारे अनर्थ की जड़ वासना यानी मस्ती है। अगर इसको निर्मूल करने की कोई दवा ईजाद हो जाती, तो किसी को इसके पञ्जे में पड़ कर अपना धर्म गँवाने की ज़रूरत नहीं पड़ सकती थी।

यह कोरी आलोचना थी या इसके भीतर कोई भेद भी? इस विषय में उनकी दिलचस्पी देख कर मेरी एक छिपी हुई शङ्का उभरने लगी। इसलिए उनकी उत्सुकता ज़रा और भड़का कर देखने के लिए मैंने दून की हाँकी—

"ईजाद की क्या ज़रूरत, हमारे वैदक में इसकी भी दवा है। मगड़ इसका इस्तैमाल न होने से दुणिया इसको भूल गई।"

वह उत्सुकता से उछल कर पूछ बैठे—हाँ सचमुच, भला वह दवा आपको मालूम है?

मैंने साफ़ जवाब न देकर ज़रा उन्हें उलझन में और डाला—मगर एक-एक ख़ुराक में हज़ारों का खड़च बिठता है। काहे को नौ मण तेल होगा काहे को डाधा नाचेगी?

वह गड़बड़ा कर बोल उठे—"ओह! ख़र्च की क्या परवाह? मैं तो इसकी बहुत दिनों से तलाश में हूँ।" फिर सँभल कर बातें बनाने लगे—"शायद आपको मालूम नहीं कि मेरी स्त्री मर चुकी है और दूसरी शादी करना मैं नहीं चाहता × × ×"

मैंने बात काट कर झट उनकी सहायता दी—हाँ-हाँ, समझ गया। ऋषी-मुणी जब मस्ती से हाड़ चुके हैं, तो आदमी की क्या गिणती? आप इस दवा को ज़रूर बणवाइए। आपका धड़म कभी बिगड़ने नहीं पाएगा।

उन्होंने ख़ुश होकर कहा—धन्य ईश्वर, कि आप

मुझे मिल गए। आप कल ही से यह दवा बनाएँ। ख़र्च का ख़्याल न कीजिएगा।

मैंने निहायत मुस्तैदी से जवाब दिया—बहुत अच्छा। महीने भर में बना कर दे सकूँगा। क्योंकि इसके बनाने में बड़ी मेहनत और देर लगती है। मगर इतना ख़्याल रखिएगा कि भूल से भी इसकी एक रत्ति किसी औरत के मुँह में न पड़ने पाए। नहीं तो वह मारे मस्ती के पागल हो जाएगी। क्योंकि यह मर्दों के लिए दवा होगी, लुगाइयों पर उल्टा असर करेगी।

मैनेजर का चेहरा सूख गया। इधर-उधर की बातें कर, चलते समय कहने लगे कि—अच्छा अभी यह दवा न बनाइए। ज़रा और सोच लूँ तब बताऊँगा।

मैं दिल ही में मुस्कुरा कर रह गया।

दूसरे दिन मिलने पर "मौत का दौरा" का प्रसङ्ग उठा। इसका भेद तो मुझे मालूम ही था। फ़ौरन समझ गया कि यह किसके लिए पूछ-पाछ हो रही है। और मैं यह भी जानता था कि यह डॉक्टर के ज़हर की करामात थी, जिनकी मृत्यु हो जाने से अब इस दौरे की शङ्का बेकार थी। इसलिए इस विषय पर ख़ूब लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँध कर मैंने कहा कि यह बीमारी बड़ी ख़तरनाक है। लुगाइयों को पकड़ती है। मगर हज़ारों में कहीं एक को। और बिना जान लिए नहीं छोड़ती। ख़ैर, मेरे पास इसका भी इलाज है और बौत बेहतरीन, पन्द्रह रोज़ खा ले तो ज़िन्दगी भर न हो।

मैनेजर साहब मारे ख़ुशी के उछल पड़े। डॉक्टर की मृत्यु से जो परेशानी की झाँई उनके चेहरे पर रहा करती थी, वह एकाएक उड़ गई। वह अब ऐसा चहकने लगे मानो उन्हें कहीं खोया हुआ ख़ज़ाना मिल गया। इनकी यह रङ्गत देख कर दिल में मैंने डॉक्टर के दिमाग़ की प्रशंसा की। बेशक अगर वह इन अनोखी युक्तियों से अपनी रक्षा और धाक जमाए रखने की फ़िक्र न किए रहते, तो उनसे काम निकल जाने पर हज़रत कौड़ी को भी न पूछे जाते, बल्कि उन्हें अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ता।

मैनेजर ने देश में अपनी किसी भतीजी के पास भेजने के बहाने से "मौत के दौरे" की दवा माँगी। मैंने भी मामूली पाचक की गोलियाँ देने का इरादा कर, दूसरे दिन देने का वादा किया। अब मेरी प्रतिष्ठा मैनेजर की दृष्टि में और बढ़ गई। यहाँ तक कि शाम को राजभवन में मेरी दावत भी की गई।

दावत के समय मेरे अतिरिक्त मैनेजर के साथ उनके दो-चार घने मित्र और थे। राजा साहब दिखाई नहीं पड़े। बातचीत से पता चला कि वह रात में अधिकतर कोई रङ्गमहल नामक कोठी में रहते हैं। यद्यपि मुझे लगभग पन्द्रह दिन इस राज्य में रहते हो चुके थे और इस बीच में मैनेजर से मुझसे बराबर भेंट भी होती रही, तथापि उन्होंने कभी मेरा परिचय राजा साहब से नहीं कराया और न वह मुझे इस बार कहीं देखने ही को मिले। मैनेजर की नीयत मुझे उनसे दूर ही दूर रखने की थी और इसीलिए शायद वह आज यहाँ से खसका दिए गए थे।

खाते वक़्त राजा साहब की विलासिता की कहानियों की बड़ी धूम रही। बड़े गर्व से कहा जाता था कि हिन्दुस्तान में कोई ऐसी रूपवती वेश्या नहीं है, जो यहाँ बुलवाई नहीं गई। अपने डेरे पर भी जनता के मुँह से ऐसी बहुत सी बातें मैं सुन चुका था, जिनको सुन-सुन कर मैं दिल ही दिल हँसा करता था।

खाना खाने के बाद वहाँ अटक कर अलिन्द की टोह लेने के लिए मैंने नशा का ऐसा ढोंग किया कि मैनेजर साहब को मेरे लिए एक बाहर के कमरे में लेटने का इन्तज़ाम कराना पड़ा। क्योंकि अलिन्द का ख़त मुझे इसी मकान के पोर्टिको में पहले दफ़े मिला था। मुझे ख़्याल था कि वह यहीं होगा। अगर वह मुझे और कहीं अब तक नहीं मिला, तो यहाँ वह कभी न कभी ज़रूर दिखाई पड़ेगा। इसी उम्मीद पर एक दफ़ा नशे का बहाना करते हुए मैं कमरे के बाहर सीढ़ियों पर गिर कर बेतुके ढङ्ग से लेट भी गया। शोर-ग़ुल भी मचाया। वहाँ के सभी लोग नौकर-चाकर तक मेरा तमाशा देखने दौड़ पड़े, मगर उसकी कहीं भनक तक न मिली। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ कि मेरा अनुमान क्यों ग़लत निकला।

क्या अलिन्द यहाँ से कहीं चला गया? क्या उसे अब मैं यहाँ न पाऊँगा? अगर वह यहीं है तो उसका पता किस तरह लगाऊँ? कहाँ रहता है, किससे और कैसे पूछूँ, जिससे मेरा यहाँ पहिले आने का भण्डा भी न फूटे। यही सब सोचते-विचारते क़रीब-क़रीब आधी रात हो गई। उस वक़्त मुझे ज़रूरतन् बाहर निकलना

पड़ा। रात अँधेरी थी। पानी की फुइयाँ पड़ रही थीं। चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। पहरे के सिपाही भी सर्दी और बौछार के मारे जहाँ-तहाँ कोनों में दबके हुए ऊँघ रहे थे। मैं मकान के किनारे-किनारे नाली ढूँढ़ता हुआ कुछ दूर निकल गया। सर में एकाएक किसी चीज़ की ठोकर से मैं चौंका। टटोल कर ग़ौर से देखा तो जाना कि मकान के उस हिस्से में शायद चूनाकारी या कुछ मरम्मत के लिए पाड़ बँधा है। इतने में मेरे सर के ऊपर एक हृदय-विदारक, परन्तु हल्की सी "आह" की आवाज़ सुनाई पड़ी। सर उठा कर देखा, वहाँ भीतर के कमरे की रोशनी रोशनदान पर फैली हुई थी। वैसे ही कोई भारी चीज़ पाड़ पर से नीचे धमाक से गिरी। मैंने तुरन्त बिजली की बत्ती जलाई और देखा कि कोई आदमी मृतवत् पड़ा है और उसके पास ही काग़ज़ का एक पुलिन्दा भी गिरा हुआ है। वह आदमी कौन था? उसके सर और मूँछ सफ़ाचट होने पर भी मैंने उसे पहचान लिया और पहचानते ही मैं 'अलिन्द-अलिन्द' कहता हुआ उस पर गिर पड़ा।

(क्रमशः)

※ ※ ※

सच्चा धर्म

[श्री० देवशङ्कर जी त्रिवेदी, एम० ए०]

धर्म न अङ्कित है पुस्तक में,
धर्म न है मन्दिर के द्वार।
धर्म न है चन्दन-अक्षत में,
धर्म न गङ्गा की मझधार।

❀

धर्म न है चोटी में बसता
या यज्ञोपवीत के तार।
धर्म न है चूल्हे-चौके में,
खान-पान के या व्यवहार।

❀

धर्म नहीं झूठे वैभव में
अथवा धनियों के धन-धाम।
धर्म नहीं मिलता करने में
या प्रति दिन का झूठा नाम।

❀

धर्म सिखाता है न स्वार्थ को,
या करने को कपटाचार।
धर्म न परवश करता मन को,
हत्या करने को लाचार।

धर्म वही जिसके द्वारा हो,
प्राणिमात्र का कुछ उपकार।
धर्म वही जिस पर ठहरा है,
ब्रह्मदेव का यह संसार।

❀

धर्म वही, जो जग में भर दे
विश्व-प्रेम का मञ्जुल गान।
धर्म वही, जो नीच-ऊँच का
एक भाव से करता मान।

❀

धर्म नाम है उसी वस्तु का,
जो न कष्ट दे किसी प्रकार।
जो जग की उन्नति के पथ में,
बाधक बने न किसी प्रकार।

❀

छोड़ें सब पाखण्ड धर्म के—
केवल सत्य यही सुविचार।
अपने कर्त्तव्यों को पालें—
यही धर्म है परम उदार।





फ़िजी-प्रवासी भारतीय बालिकाएँ, जो यहाँ के विभिन्न कन्या-गुरुकुलों में रह कर आय-धर्म और आर्य-संस्कृति की शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

कानपुर के गाँधी कन्या-विद्यालय की अध्यापिकाएँ तथा कार्य-निर्वाहिनी (ऑफ़िस बेयरर्स) महिलाएँ।



पण्डित कुँवर श्यामसुन्दर जी, अटल। आप हरदोई ज़िले के एक बड़े रईस हैं। गत सत्याग्रह-संग्राम में आपको ६ मास की सज़ा दी गई थी।



श्रीमती इलाश्रौङ्ग, एम० बी० ई०, के० आई० एच०—आप ब्रह्मदेश की विख्यात विदुषी और 'बर्मा वीमेन लीग' की प्रेज़िडेण्ट हैं।



प्रिन्सिपल दीवानचन्द जी, एम० ए० (कानपूर)—जो आगरा-विश्वविद्यालय के वॉयस चान्सलर चुने गए हैं।



श्रीमती के० एस० वी० लक्ष्मी अम्मानी अम्मल, ज़मींदारिनी मारुङ्गापुरी (मद्रास)—सरकार ने आपको त्रिचिनोपोली की एजूकेशनल कौन्सिल के लिए नामज़द किया है।



कॉमरेड मुबारकअली 'साग़र'। आप कराँची की नवजवान भारत-सभा के मन्त्री हैं और राष्ट्रीय आन्दोलन में बारह महीने की सज़ा काट चुके हैं। आप कराँची के एक उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं।



पं० श्रीकृष्ण जी शर्मा 'आर्य-मिश्नरी'। आपने तीन साल तक फ़िजी में वैदिक-धर्म का प्रचार किया है। इस समय भारतोत्थान में लगे हैं और ४ मास की सज़ा भी पा चुके हैं।



पं० अमीचन्द जी विद्यालङ्कार और आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सर्ववती देवी। आप आजकल फ़िजी-प्रवासी भारतीयों में सफलतापूर्वक शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं।



गत तृतीय राजपूताना-मध्यभारत प्रान्तीय राजनीतिक परिषद् का एक दृश्य। कस्तूर बा गाँधी झण्डा-अभिवादन के बाद व्याख्यान दे रही हैं।



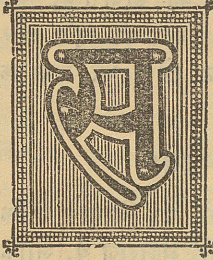
श्रीमती विद्यावती देवी विदुषी और आपका सद्यजात शिशु। आप श्रीयु त पुरुषोत्तमदास जी टण्डन की पुत्र-वधू हैं। आपने गत आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था।



भारत में विद्या प्राप्त करने की इच्छा से आए हुए, फ़िज़ी-प्रवासी भारतीय बालक-वृन्द, जो सब मे आगे की श्रेणी में विराजमान हैं।

कायस्थों की ऐतिहासिक उत्पत्ति

[श्री० हरिशरण जी श्रीवास्तव 'मराल', बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



मय था, जब कि यह भारत-भूमि केवल आर्य पुरुषों का ही निवास-स्थान थी। उस प्राचीनतम काल में न विभिन्न जातियाँ थीं, न अनेक धर्म। एक ही वेद-विहित धर्म था, और वेदों के सार-रूप 'ओ३म्' का सब जाप करते थे, एक ही देव-नारायण की उपासना की जाती थी। एक ही स्थान पर सब मिल कर अग्नि-होत्र करते थे और एक ही वर्ण था। इसी समय को लक्ष्य करके भागवत में कहा है —

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्व वाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्या, एकोऽग्नि वर्ण एव च॥

—भागवत ९। १४

वह था आर्य जाति की उन्नति का सुख-समृद्धि-शाली काल। वैदिक सभ्यता का अश्रुत-पूर्व उत्कर्ष। आर्यावर्त के सौभाग्य की चरम सीमा उन्हीं दिनों देखी जा सकी थी, चतुर्वर्ण की सृष्टि भी तब तक नहीं हुई थी। सतयुग, कृतयुग, स्वर्ण-काल चाहे उसे किसी नाम से पुकारिए, परन्तु धर्म और जाति की समानता का वह युग विचित्र था।

कहना न होगा कि सृष्टि के आरम्भ में केवल एक मनुष्य जाति थी। क्रमशः देश-भेद, अवस्था-भेद के कारण उसमें वर्गीकरण प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार आर्य, मङ्गोल, द्रविड़ इत्यादि जातियों की प्रतिष्ठा हुई। तत्पश्चात् देश-विशेष से सम्पर्क होने पर जातियों का विभाग और भी बढ़ने लगा।

क्रमशः जन-संख्या की वृद्धि होने पर वर्ण चतुष्टय की रचना हुई। मनुष्यों के कार्य के अनुरूप चार वर्ण स्थिर किए गए। वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए वैशम्पायन ऋषि युधिष्ठिर से कहते हैं —

"हे युधिष्ठिर! यह सारा संसार पहले एक ही वर्ण था, परन्तु कर्म और क्रिया में भेद होने के कारण चार वर्ण हो गए। सब मनुष्य एक ही प्रकार जन्म लेते हैं, और उनकी इन्द्रियाँ तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी एक-से होते हैं, केवल गुणों के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहलाते हैं।"

—महाभारत, वन-पर्व, अ० १८०

इस प्रकार समाज-रूपी शरीर के चार अङ्गों के समान चार वर्णों की रचना हुई। पठन-पाठन तथा ब्रह्म-ज्ञान से सम्बन्ध रखने के कारण ब्राह्मण समाज-शरीर के मस्तिष्क समझे जाने लगे। अर्थात् मनुष्य-समाज में वह अग्रणी तथा प्रमुख रहे। बाहुबल और शारीरिक शक्ति के सङ्गठन के कारण क्षत्रिय, समाज की भुजाएँ हुए। वाणिज्य और व्यवसाय उदर-पूर्ति के साधन हैं, अतएव वैश्यों को समाज-शरीर की उदर अथवा उरु संज्ञा प्राप्त हुई और इस बृहद् शरीर की स्थिति शूद्रों पर अवलम्बित होने के हेतु शूद्र पद बन गए। मनुष्य-समाज को विशालकाय होने से ब्रह्मा कहा गया है और यह चार वर्ण इस ब्रह्मा के चार अङ्ग थे। एवं इन चार वर्णों के होते हुए भी उस समय का आर्य-समुदाय एक था। उच्च-नीच, मानास्पद तथा घृणास्पद भावनाओं की सत्ता का लेश भी न था। परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार प्रचलित था। कार्य-सम्पादन की सुविधा के लिए यह चार पृथक् नामकरण मात्र किए गए थे।

महाभारत के काल तक वर्ण-व्यवस्था के बन्धन दृढ़ नहीं थे। ब्राह्मण अन्य वर्ण हो जाता था और वर्णेतर ब्राह्मण बन सकते थे। अद्यावधि कर्म प्रधान था। महाभारत के पश्चात् वर्णों की सीमा बलवती होने लगी। वर्ण-व्यवस्था जन्म पर निश्चित हुई। कार्यानुरूप चार विभागों के स्थान में चार वर्ण चार जातियों के रूप में परिणत होने लगे। परस्पर भोजन तथा विवाह का सम्बन्ध बन्द हो चला। उसी समय भारतवर्ष में बुद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। बौद्ध धर्म में वर्ण-व्यवस्था कोई नहीं रही। वही सब समान और एक मनुष्य जाति वाला सिद्धान्त फिर काम करने लगा।

इसके पश्चात् एक और युग-परिवर्त्तन हुआ। बौद्ध धर्म का प्रभाव क्षीण होने लगा। ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ चला। तात्कालिक गुप्त राजाओं से ब्राह्मण-धर्म के विस्तार में सहायता मिली। बहुत दिनों का दबा हुआ ब्राह्मणों का अहम्मन्यता का उत्साह द्विगुण रूप से प्रतिफलित होने लगा। देवताओं की रचना हुई। ब्रह्मा, विष्णु और महेश पहले त्रिदेव बनाए गए। फिर शक्ति, महाकाली इत्यादि देवियों की सत्ता हुई। उसी समय ब्राह्मण-धर्म के उद्धार के लिए कुमारिल भट्ट तथा शङ्कराचार्य का जन्म हुआ। बस क्या था? फिर तो ब्राह्मण-धर्म में एक साथ बाढ़ सी आ गई। अष्टादश पुराणों की रचना हुई। नाना स्मृति, जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, ग्रन्थों के ढेर लग गए। तीन से तैंतीस करोड़ देवता बन गए। घर-घर देव-मन्दिरों की प्रतिष्ठा होने लगी। भारतवर्ष मूर्ति का उपासक बन गया।

वर्तमान महाभारत ग्रन्थ के रचना-काल अर्थात् सन् ईसवी के प्रारम्भ होने से लगभग २५० वर्ष पूर्व भारत में साकार देव-मूर्तियों की कहीं स्थापना नहीं थी, इसके लिए महाभारत ही स्वयं प्रमाण है। न तो देव-मन्दिर थे, और न लोग देवताओं को इस प्रकार पूजते ही थे। वर्तमान अष्टादश पुराणों का अस्तित्व भी उस समय न था। देवतावाद, देव-पूजन तथा वर्ण-व्यवस्था का सुदृढ़ बन्धन भगवान् शङ्कर के समय के पश्चात् बौद्ध धर्म के ह्रास होने पर ही प्रारम्भ हुआ। यह तो निश्चित ही सा है कि विभिन्न जाति तथा उपजातियों की सृष्टि शङ्कराचार्य के समय के पश्चात् ही भारत में हुई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराण और उसके रचयिताओं ने इन अनेक जातियों के सृजन में साधन-रूप से बहुत-कुछ भाग लिया।

देवयुग में वर्ण-व्यवस्था के विचार में भी पहले से नितान्त प्रतिकूल परिवर्तन हो गया। समाज-रूपी शरीर को ब्रह्मा कहने के अतिरिक्त ब्रह्मा का व्यक्तित्व पृथक् स्थापित किया गया और चारों वर्ण उसके चार अङ्गों से उत्पन्न हुए बखाने गए। 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्' वेद-मन्त्र का अर्थ से अनर्थ होने लगा। उदाहरणार्थ ब्राह्मणों को समाज के सिर के समान कहने के स्थान में उन्हें ब्रह्मा के सिर से उत्पन्न बताया गया। सुतराम् ब्रह्मा के अङ्गों के समान अपने जन्म के कारण वह उत्तम, मध्यम, निकृष्ट और नीच समझे जाने लगे। ब्रह्म देवता की इस अद्भुत कल्पना ने प्रत्येक जाति को यथा-सम्भव अपने पूर्व पुरुषाओं को ब्रह्मा से सम्मिलित करने की चेष्टा के लिए प्रोत्साहित किया।

कायस्थ जाति भी इसी काल की उत्पत्ति है, ऐसा हमारा विचार है, तथा चित्रगुप्त देवता की सृष्टि और उनका ब्रह्मा की काया से उत्पन्न होना भी उपरोक्त भावना का फल है।

(१) चित्रगुप्त-कथा

कायस्थों का साधारण रूप से यह विश्वास है कि हमारे पूर्व-पुरुष श्री० चित्रगुप्त जी महाराज थे, जोकि ब्रह्मा की काया अर्थात् शरीर से उत्पन्न हुए। उनको सांसारिक मनुष्यों के पाप-पुण्य का लेखा रखने के लिए सृजन किया गया। यह विचार इतना प्रचलित हो गया है कि बड़े-बड़े ऐतिहासिक भी इसके मानने में कोई इन्कार नहीं करते। सुतराम् नगेन्द्रनाथ वसु भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दी विश्व-कोष' में लिखते हैं—

"चित्रगुप्त देव ही कायस्थ जाति के आदि-पुरुष हैं।" अतएव सबसे पहले यह विचारना है कि चित्रगुप्त कौन थे।

चित्रगुप्त शब्द के अर्थ

चित्रगुप्त यौगिक शब्द है और चित्र+गुप्त दो शब्दों से निर्मित हुआ है। 'चित्र' के अर्थ विचित्र, रङ्ग-विरङ्गा तथा प्रतिकृति के हैं और 'गुप्त' अन्तर्हित को कहते हैं। इस प्रकार सरल रूप में जो गुप्त रह कर चित्रण करे वह चित्रगुप्त कहला सकता है, क्योंकि चित्रगुप्त मनुष्यों के चरित्र का चित्रण करते हैं अर्थात् विश्व-चारित्र्य लेखक हैं, अतः 'यथा नाम तथा गुण' के अनुरूप उनका यह नामकरण उनके कर्त्तव्य के आधार पर किया गया। इसके अतिरिक्त अन्य विद्वानों की सम्मति में —

१—चित्रायते पाप-पुण्य विचारा चित्रं करोति लिखतीत्यर्थ यम विशेषः।

—शब्द कल्पद्रुम

२—चित्राणां पाप पुण्यादि विचित्राणां गुप्तं रक्षणं यस्माद्।

—हिन्दी विश्वकोष

३—चतुः गुप्तः स चित्रगुप्तः।

—कायस्थ-मीमांसा

अर्थात्—जो पाप-पुण्यों का विचार करे अथवा लेखा रक्खे तथा जिसके द्वारा इनका रक्षण हो वह चित्रगुप्त कहलाता है। तीसरे अर्थ चमत्कारक हैं और एक मस्तिष्क-विशेष की खींचातानी है। चारों ऋषि (अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा) जिसमें अन्तर्हित हों, उन्हें यह महानुभाव चित्रगुप्त कहते हैं। इस प्रकार चित्रगुप्त महाराज कातिबे-तक़दीर किम्बा Recording Angel हैं। यह एक यम-विशेष कहे जाते हैं।

चित्रगुप्त और १४ यम

यम १४ होते हैं, जिनमें से श्री० चित्रगुप्त भी एक हैं—

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठितो।
वृकोदराय, चित्राय, चित्रगुप्ताय वै नमः॥

—बङ्गला विश्वकोष

इन चौदह नामों पर यदि विचार किया जाय तो सबके सब द्विअर्थक नाम निकलते हैं तथा सबों के अर्थ ब्रह्मपरक हैं। यथा—अन्तक (अन्त करने वाला), सर्व भूतक्षय (सर्व प्राणियों का नाशक) इत्यादि। इन चौदह यमों का वास्तविक अस्तित्व कुछ भी नहीं है और यह सब एक ही परमात्मा के नाम हैं। इस पर आगे विचार किया जावेगा। चित्रगुप्त के नमस्कार मन्त्र पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रगुप्त स्वयम् यम अर्थात् धर्मराज नहीं, वरन् केवल आजकल के अदालती पेशकारों की भाँति उसके लेखक मात्र हैं—

उत्पत्तौ प्रलये चैव त्यागे दाने कृताकृते।
लेखकस्त्वं सदा श्रीमांश्चित्रगुप्त नमोस्तुते॥

इससे यह भी ज्ञात होता है कि जन्म, मृत्यु, दान, त्याग तथा पाप-पुण्य करने के अवसर पर चित्रगुप्त को नमन करना चाहिए।

चित्रगुप्त की उत्पत्ति का कारण

भविष्योत्तर पुराणान्तर्गत आई हुई यम-संहिता में चित्रगुप्त की उत्पत्ति का कारण इस प्रकार कहा गया है कि जब सारी सृष्टि उत्पन्न हो चुकी और प्रजा बढ़ने लगी तो यम को चिन्ता हुई। कार्याधिक्य के कारण धर्मराज व्यग्र हो उठे और उन्होंने ब्रह्मा के समीप पहुँच कर आर्त्तनाद किया—

"हे प्रभु, आपके द्वारा मैं मनुष्यों का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त हूँ, परन्तु अब मैं बिना सहायक के अपने कर्त्तव्य को कैसे पूरा कर सकता हूँ?" यह सुन कर ब्रह्मा ने यमराज को सान्त्वना दी और एक सहायक की उत्पत्ति के लिए ध्यान करने लगे।

निष्कर्ष यह कि कार्याधिक्य के कारण एक असिस्टेण्ट की मञ्ज़ूरी ही चित्रगुप्त की उत्पत्ति का कारण थी। बहुत से मनुष्यों के कर्मों का लेखा रखना भी अकेले यमराज के बस का नहीं था। इसके अतिरिक्त किसी अन्य पुराण में चित्रगुप्त की उत्पत्ति का कोई अन्य कारण नहीं प्राप्त होता।

चित्रगुप्त की उत्पत्ति

चित्रगुप्त की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न पुराणों में विविध प्रकार से वर्णन की गई है। विस्तार-भय से मूल संस्कृत के श्लोक यथासम्भव कम उद्धृत किए जावेंगे। परन्तु सारांश रूप से सब पुराणों के वर्णन का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

भविष्य पुराण

हस्तलिखित भविष्य-पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के ११ हज़ार वर्ष समाधि में बैठने पर उनके शरीर से एक श्याम वर्ण, कमल-लोचन सुन्दर पुरुष हाथ में लेखिनी, खड्ग और दावात लिए हुए उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा ने उस विचित्र पुरुष से चकित होकर पूछा कि आप कौन हैं, तो उसने जवाब दिया कि मैं निस्सन्देह आपके शरीर से उत्पन्न हुआ हूँ। आप मेरा नामकरण कीजिए और मेरा कर्त्तव्य बताइए। यह आख्यान पुलस्त्य और भीष्म के सम्वाद-रूप में है।

भविष्योत्तर-पुराण

इस पुराण की यमसंहिता में, जोकि हिन्दू-व्यवस्था की पुस्तक अहिल्या कामधेनु के नवें अध्याय का अंश है; चित्रगुप्त की उत्पत्ति का प्रसङ्ग इसी प्रकार बखाना गया है।

पद्म-पुराण

इस पुराण में चित्रगुप्त की उत्पत्ति का प्रसङ्ग सृष्टि-खण्ड, पाताल खण्ड तथा उत्तर खण्ड—इन तीन स्थानों पर आता है।

सृष्टि खण्ड में चित्रगुप्त-उत्पत्ति के आख्यान में एक विचित्रता है। यहाँ ब्रह्मा के क्षण भर के ही ध्यान में, उनकी सारी काया से क़लम-दावात लिए हुए चित्रगुप्त जी प्रकट हो जाते हैं।

ब्रह्म-पुराण

इस पुराण में परमहंस दत्तात्रेय जी महाराज तीर्थों की यात्रा करते हुए चित्रगुप्त की कथा सुनने के समुत्सुक विशाला नदी के किनारे हिमालय की शिला पर बैठे हुए पुलस्त्य मुनि से यह वार्त्ता वर्णन करने को कहते हैं। पुलस्त्य मुनि बोले कि यही कथा पूर्वकाल में भीष्म-पितामह ने अगस्त ऋषि से पूछी थी। वही कथा मैं अब तुम्हें सुनाता हूँ। तत्पश्चात् पूर्वोक्त कथा दुहराई जाती है। अन्तर केवल यह है कि नारद जी महाराज ब्रह्मा को चिन्तित देख कर उन्हें नारायण का ध्यान करने को कहते हैं। तदनन्तर ब्रह्मा जी १२ वर्ष तप करके १२वें वर्ष के अन्तिम दिन चित्रगुप्त को उत्पन्न करते हैं।

स्कन्द-पुराण

पुरातन काल में एक धर्मात्मा कायस्थ मित्र नामी था, जिसके उसकी स्त्री से चित्र नाम पुत्र और चित्रा नामी कन्या हुई। इन बालकों के उत्पन्न होने पर मित्र की मृत्यु हो गई और उसकी स्त्री उसके साथ सती हो गई। इस प्रकार ये दोनों अनाथ बच्चे ऋषियों द्वारा पाल-पोस कर बड़े हुए। यह चित्रगुप्त की उत्पत्ति की एक नितान्त नूतन कथा है।

गरुड़-पुराण

ब्रह्मा के तप से वायु उत्पन्न हुई, वायु से सूर्य और तब सूर्य से चित्रगुप्त और धर्मराज उत्पन्न हुए। यहाँ चित्रगुप्त धर्मराज अर्थात् यम के सहोदर भ्राता हैं।

चित्रगुप्त के माता-पिता, भ्राता तथा भगिनी

अधिकतर पुराणों के मतानुकूल चित्रगुप्त ब्रह्मा की काया से उत्पन्न हुए, अतएव वह ही एक प्रकार से उनके पिता हो सकते हैं, माता कोई नहीं थी। परन्तु स्कन्द-पुराण के अनुसार उनके माता थी, जिसका नाम पुराणकार ने नहीं लिखा और उनका पिता मित्र नामक कायस्थ था। गरुड़-पुराण चित्रगुप्त के पिता का नाम सूर्य और भ्राता का नाम धर्मराज बताता है। स्कन्द से चित्रगुप्त की एक भगिनी चित्रा नामक भी सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त मद्रास के कर्णाय फ़िर्क़े की एक रवायत है कि चित्रगुप्त के पिता का नाम सूर्य और उनकी माता का नाम नीला देवी था। (देखिए 'भटनागर समाचार' यम-द्वितीया-नम्बर सन् १६२६)।

चित्रगुप्त का नामकरण और वर्ण

भविष्य-पुराण (हस्त-लिखित) में लिखा है—

ब्रह्मा जी बोले कि—'हे वत्स ! क्योंकि तुम मेरी काया से उत्पन्न हुए हो, इसलिए तुम्हारी कायस्थ संज्ञा होगी और संसार में तुम्हारा नाम चित्रगुप्त होगा। क्षात्र-धर्म के अनुकूल नियमों को तुम यथा-विधि पालन करो।' भविष्योत्तर पुराण (यमसंहिता) में भी यह विवरण इसी प्रकार है, केवल इतना और अधिक है कि ब्रह्मा की आज्ञा सुन कर चित्रगुप्त जी कोट काङ्गड़ा में जाकर देवी की उपासना करने लगे। आजकल के छपे हुए किसी भी भविष्य-पुराण में उपरोक्त हस्तलिखित भविष्य-पुराण की चित्रगुप्त-कथा प्राप्त नहीं होती, न जाने किस समय में और क्यों यह कथा भविष्य-पुराण से पृथक् कर दी गई।

पद्म-पुराण

उस (पुरुष) का नाम चित्रगुप्त हुआ और धर्मराज के समीप प्राणियों के सत् और असत् कर्मों का लेखा रखने के लिए वह नियुक्त किया गया। ब्रह्मा की काया से उत्पन्न होने के कारण उसका कायस्थ वर्ण कहा गया। उसके वंश के अनेक गोत्रों के कायस्थ पृथ्वी पर हैं।

पद्म-पुराण के उत्तर खण्ड में यह वर्णन परिवर्त्तित रूप में प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने बहुत प्रसन्न होकर कहा कि पुत्र, तुम मेरे अन्तःकरण से उत्पन्न हुए हो, परन्तु पहले उज्जैन में जाकर महाकाल महादेव की अर्चना करो। तत्पश्चात् तुम्हें तुम्हारा नाम और वर्ण तथा जीविका बताई जावेगी। तपस्या करने के उपरान्त ब्रह्मा जी उस पुरुष के पास अवन्तीपुरी में ८८,००० ऋषियों सहित गए और उसका यज्ञोपवीत करके चित्रगुप्त नाम

रक्खा और कहा कि काया से उत्पन्न होने के कारण तुम कायस्थ हो, तुम्हारा चारों वर्णों से न्यारा पाँचवाँ वर्ण है और तुम्हारी जाति में १० संस्कार होंगे। यही कथा ब्रह्मपुराण में भी दत्तात्रेयी पुलस्त्य के सम्वाद-रूप में मिलती है।

स्कन्द-पुराण के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा ने चित्रगुप्त से कहा कि आप क्षत्रिय वर्ण हैं, और समस्थान अर्थात् समतल भूमि (Plains) में उत्पन्न हुए हैं (अथवा शरीर से उत्पन्न हुए हैं)। कायस्थ क्षत्री के नाम से आप प्रसिद्ध होकर भुवन में विराजेंगे तथा तुम्हारे वंशज भी तुम्हारे जैसे होंगे। उनकी लिखने-पढ़ने की वृत्ति होगी और वह क्षत्रिय धर्म का पालन करेंगे। जो कुछ क्षत्रिय जाति में संस्कार इत्यादि होते हैं, वही मेरी आज्ञा से तुम्हारे यहाँ भी होंगे। अन्तर्द्धान हुए ब्रह्मा के इन वचनों से चित्रगुप्त अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इन विभिन्न वर्णनों से हम देखते हैं कि काया अथवा समस्थान से उत्पत्ति होने के कारण कायस्थ नाम हुआ तथा चित्रगुप्त का जन्म-नाम कायस्थ था, तत्पश्चात् चित्रगुप्त नाम से लोक में प्रसिद्धि हुई।

चित्रगुप्त का कार्य

स्कन्द-पुराण में चित्रगुप्त की नियुक्ति का ढङ्ग ही निराला है। चित्र को देख कर यमराज ने सोचा कि यदि यह मेधावी पुरुष मेरा लेखक हो जावे, तो विधि ठीक मिले। अतः एक समय जब कि चित्र अग्नितीर्थ में लवण समुद्र में स्नान के लिए गया हुआ था, तो अपने गणों द्वारा सिन्धु में से यमलोक को पकड़वा मँगाया। तब से चित्र विश्व-चारित्र्य लेखक बन गया।

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो चुका कि चित्रगुप्त यमराज के लेखक (Writer) या सहायक (Personal Asstt.) हैं। गरुड़-पुराण के अनुसार सूर्य से उत्पन्न होने के कारण वह यमराज के सहोदर भाई हैं।

चित्रगुप्त का नगर और निवास-स्थान

पुराणों में चित्रगुप्त के नगर को चित्रनगर, चित्रगुप्त-पुर तथा यमपुर कहा गया है और उसका वर्णन अद्भुत है। इसका विशद विवरण गरुड़-पुराण (प्रेतकल्प तथा उत्तर खण्ड) और बाराह-पुराण में मिलता है। चित्रगुप्त-पुर का गरुड़-पुराण में क्षेत्रफल देखिए—

"वहाँ पर चित्रगुप्तपुर है, जोकि २० योजन (८० कोस) का है और जहाँ पर कि कायस्थ लोग सबके पाप-पुण्यों का विचार करते हैं। बहुत दान देने पर मनुष्य वहाँ जाकर सुखी होता है। उस स्थान पर २४ योजन (९६ कोस) का चित्रगुप्त का अपना नगर है।"
महागरुड़-पुराण उत्तर खण्ड (कलकत्ता) १९। २

चित्रगुप्त के विवाह

पुराणों के अनुसार चित्रगुप्त जी के दो विवाह हुए। एक ब्राह्मण की कन्या से और दूसरा क्षत्री की कन्या से। पौराणिकों को दो विवाहों की रचना क्यों करनी पड़ी, इस पर आगे विचार किया जावेगा। यहाँ केवल यह बात दर्शनीय है कि चित्रगुप्त जी एक विवाह के क़ायल न थे। कायस्थों ने भी शायद इसी बाइस अपने मूरिसेआला की तक़लीद की। तभी तो अपनी विवाहिता स्त्री के साथ एक ग़ैर बिरादरी की स्त्री रखने का क़ायदा चल पड़ा और खरे और दूसरे का झगड़ा उठ खड़ा हुआ। अस्तु। अब विवाह का वृत्तान्त सुनिए—ब्रह्मा के वरदान से प्राप्त इरावती नामक कन्या का सुशर्मा ऋषि ने चित्रगुप्त के साथ विवाह कर दिया। दूसरा विवाह मनु की कन्या दक्षिणा से हुआ।

चित्रगुप्त की सन्तान और उनके निवास-स्थान

चित्रगुप्त की सन्तान, उनके निवास-स्थान तथा उनके विवाह के विषय में पुराण पृथक-पृथक अपना राग अलापते हैं। यहाँ पृथक्-पृथक् विवरण न दिया जाकर एक तुलनात्मक कोष्ठक में भविष्योत्तर-पुराण (यमसंहिता), पद्मपुराण (पाताल तथा उत्तर खण्ड), ब्रह्मपुराण इत्यादि का मत प्रकाशित किया जाता है।

प्रथम स्त्री के आठ पुत्र

स्त्री का नाम—इरावती अथवा शुभावती किम्बा मञ्जुकेशिनी।

इरावती के पुत्र—चारु, सुचारु, चित्राक्ष, मतिवान (या मान्), हिमवान्, चित्रचारु, अरुण, अतीन्द्रिय। जिनसे क्रमशः माथुर, गौड़, भटनागर, सुखसेन, अम्बष्ठ, अहिष्ठान, कुलश्रेष्ठ और वाल्मीक हुए।

शुभावती के पुत्र—श्यामसुन्दर, शार्ङ्गधर, धर्मदत्त, सुमति, दामोदर, दीनदयाल, सदानन्द, राघवराम। जिनसे क्रमशः सूर्यध्वज, अम्बिष्ठ, गौड़, निगम, करण अहिष्ठान, कुलश्रेष्ठ और वाल्मीक हुए।

मञ्जुकेशिनी के पुत्र—वाल्मीक, अमिष्ट, कुलश्रेष्ठ, सुरधुज, निगम, करण एठान, गौड़।

अब कहिए, कौन सा नाम और किसको किसका पुत्र सत्य रूप से मानें, अब दूसरी स्त्री के पुत्रों को देखिए—

दूसरी स्त्री (छोटी) के चार पुत्र

स्त्री का नाम—नन्दिनी या दक्षिणा (सुदक्षिणा) अथवा सुकेशी।

दक्षिणा या सुदक्षिणा के पुत्र—भानु, विभानु, विश्वभानु, वीर्यवान, जिनसे क्रमशः श्रीवास्तव्य, सूर्यध्वज, करण, निगम हुए।

नन्दिनी के पुत्र—जुगन्धर (योगेन्द्र), भानुप्रकाश, रामदयाल, धर्मध्वज, जिनसे माथुर, भटनागर, श्रीवास्तव्य और शक्सेन हुए।

सुकेशी के पुत्र—माथुर, भटनागर, श्रीवास्तव्य, सुखसेन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुराणों में चित्रगुप्त के पुत्रों के नामों में भी महान भेद है। भविष्य-पुराण में तो शुद्ध संस्कृत प्रणाली के नाम हैं, परन्तु अन्य पुराणों में लौकिक साधारण नामों की भरमार है। पद्मपुराण में पुत्रों का कोई नाम-विशेष न दिया जाकर प्रचलित १२ उप-जातियों को ही १२ पुत्र बना दिया गया है। भविष्य में इन पुत्रों के विवाह का कोई वर्णन नहीं, परन्तु अन्य पुराणों में यह सोच कर कि इन्हें क्वारा ही क्यों रक्खा जावे, नाग-कन्याओं से उनका विवाह करा दिया गया है, जिनके पद्मपुराण में दिए हुए काल्पनिक नामों की सूची यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। 'कायस्थ राजतरङ्गिणी' के लेखक ने तो प्रत्येक पुत्र का अपने पिता चित्रगुप्त की भाँति दो विवाह एक देव-कन्या और एक नाग-कन्या से होना लिख दिया है। प्रत्येक पुत्र को १२ इष्ट-देवियाँ भी पुराणकारों ने पृथक्-पृथक् बाँट दी हैं।

वास्तविकता यह है कि चित्रगुप्त के कोई १२ पुत्र न थे और न उनके पिता का ही कोई अस्तित्व था। हाँ, १२ उपजातियाँ अवश्य थीं, जोकि भिन्न-भिन्न देशों में रहने के कारण भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती थीं। क्योंकि पुराणकारों को कायस्थों का एक पूर्व-पुरुष स्थिर करके उसे ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न कराना था, अतएव यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि इन १२ उपजातियों का भी एक-एक पूर्व-पुरुष बनाया जाकर चित्रगुप्त से जोड़ दिया जावे। क्योंकि यह १२ उपजातियाँ एक ही उद्गम से निकली थीं। सुतराम् पौराणिकों ने उन्हें एक ही दादा की सन्तान बताया। चार और आठ के विभाग की आवश्यकता का भी कारण यही है कि उन उपजातियों के निकास या नस्ल में कुछ न कुछ भेद था। अतः ४ को तो क्षत्राणी माँ की सन्तान और ८ को ब्राह्मणी माँ की सन्तान कहा गया। स्पष्ट रूप से इस पर आगे विचार किया जावेगा।

चित्रगुप्त की सन्तान के निवास-स्थान और उनके नाम पड़ने के कारणों में समानता अवश्य है। केवल ४ उपजातियों के नामकरण में कुछ अन्तर है। प्रथम शकसेन या सुखसेन। एक पुराण में तो इस उपजाति के पूर्व-पुरुष का नाम स्त्री-सहित पिता से पृथक् हो जाने के कारण सुखसेन हुआ तथा दूसरे पुराण में काबुल-कन्धार में बस कर शकों की सेना रखने के कारण शकसेन नाम कहलाया। सूर्यध्वज के नामकरण के भी दो कारण हैं। प्रथम सूरसेन का मथुरा में निवास करना तथा द्वितीय मगध देश में जाकर रहना, जहाँ के राजा जरासिन्धु आदि की पताका पर सूर्य का चिन्ह था। कुलश्रेष्ठ उपजाति के पूर्व-पुरुष का नाम कुल में श्रेष्ठ होने के कारण कुलश्रेष्ठ हुआ। ऐसा एक पुराण का मत है तथा दूसरे का वर्णन यह है कि उसका नाम अलकापुरी के पास क़ायिक ग्राम में बसने के कारण ऐसा हुआ। अम्बष्ठ नाम पड़ने के दो हेतु अम्बा देवी की उपासना तथा अम्बष्ठ देश में निवास मिलते हैं। शेष उपजातियों के नामकरण के कारण समान हैं। श्रीवास अथवा श्रीनगर (काश्मीर) में रहने से श्रीवास्तव्य, सरयू के तट पर निगम ग्राम अथवा नैगम देश में बसने के कारण निगम, अहिष्ठान (नैपाल) में जा रहने से अहिष्ठान, गौड़ देश में बसने से गौड़, मथुरावासी होने से माथुर, चित्र नदी के किनारे भटनेर में रहने से भटनागर, कर्णा-

टक में बसने से कारण और वाल्मीक देश में रहने से वाल्मीक आदि नाम पड़े।

चित्रगुप्त की पूजा-विधि पद्मपुराण (पाताल तथा उत्तर-खण्ड) और ब्रह्मपुराण में विस्तारपूर्वक कही गई है। उदाहरण भी दिए गए हैं। भीष्म पितामह उसी विधिपूर्वक चित्र गुप्त की पूजा करके उनसे वरदान पाकर अमर हो गए। सौदास नामक महा दुराचारी राजा को चित्रगुप्त ने केवल एक बार जीवन भर में अपनी उपासना करने के कारण धर्मराज के विरोध करने पर भी स्वर्ग में स्थान दिया, इत्यादि। पौराणिक ब्राह्मणों का सर्वदा यह ढङ्ग रहा है, जिसका खाया उसका बजाया, परन्तु अपना मतलब कहीं न जाने दिया। इसी हेतु पद्म-पुराण में (पौष्टारो निज वर्गस्य ब्राह्मणानां विशेषतः) कायस्थों को ब्राह्मणों का विशेष पोषक कहा गया है। सुतराम् यह स्पष्ट है कि जिस समय पुराण लिखे गए, कायस्थों का भारतवर्ष में बहुत प्राबल्य था और वह ब्राह्मणों के पालन-कर्त्ता अन्य क्षत्रियों की भाँति थे। अतः ब्राह्मणों ने अपने कायस्थ प्रभुओं को प्रसन्न करने के लिए पुराणों में एक चित्रगुप्त देवता स्थिर करके उन्हें उनका पूर्व-पुरुष बना दिया, परन्तु अपने गौरव को न्यून न करते हुए उसे केवल धर्मराज का लेखक रक्खा; क्योंकि कायस्थ लोग स्वयं यही कार्य करते थे। यही कारण था कि सब कुछ करने पर भी चित्रगुप्त की पूजा भारतवर्ष में कभी प्रचलित नहीं हुई। कायस्थों ने ब्राह्मणों की कल्पना-सृष्टि अपने इस विचित्र पूर्व-पुरुष पर कभी अधिक विश्वास नहीं किया, अन्यथा राजा, मन्त्री तथा अन्य महान पदाधिकारी होते हुए भी भारतवर्ष में कायस्थ द्वारा निर्मित चित्रगुप्त के अनेक प्राचीन मन्दिर प्राप्त हो सकते थे। केवल श्रीमन्त (Goa) के भाङ्गोश की शङ्खा नदी के पास एक चित्रगुप्त का प्राचीन मन्दिर प्राप्त हुआ है (Encyclopedea India)। सन् १८९१ की मनुष्य-गणना (Census) में बयालीस लाख उन्तालीस हज़ार आठ सौ दस (४२,३९,८१०) कायस्थों की जन संख्या के होते हुए भी चित्रगुप्त के पूजने वालों की संख्या केवल १,९६७ थी। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व का कायस्थों का लिखा हुआ चित्रगुप्त विषयक पुराणों के अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। यह सब बातें चित्रगुप्त की सत्ता को काल्पनिक सिद्ध करती हैं।

(अगले अङ्क में समाप्त)

वर्तमान

कानपूर—सोमवार; १४ दिसम्बर, १९३१

'चाँद' की लिमिटेड कम्पनी

यह बात हिन्दी-संसार से छिपी नहीं है कि, इलाहाबाद के फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज के सञ्चालक श्री० रामरखसिंह सहगल, 'चाँद' तथा 'भविष्य' द्वारा अपने ज्ञान और साधनों के अनुसार मातृ-भाषा की रोचक सेवा करते आ रहे हैं। दोनों ही पत्र, अपने-अपने क्षेत्र में काफ़ी लोक-प्रिय हैं, और उनका प्रचार भी यथेष्ट है। लेकिन हिन्दी-संसार में अभी पत्र-सञ्चालन का व्यवसाय सफल व्यवसाय नहीं बन पाया है। कारण यह है कि लोग अच्छी पूँजी लगा कर, इस व्यवसाय से लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते। लगभग सभी पत्रों को घाटा होता रहता है, और उनके सञ्चालक अथवा हितैषी मित्र उसकी पूर्ति किया करते हैं। एक बार यदि हिन्दी-प्रेमी व्यवसाय के तौर पर इस कार्य को सफल करके दिखला सकें, तो अच्छा उदाहरण बन सके। इस कार्य के लिए, 'चाँद' और 'भविष्य' को एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी बनाना, एक ऐसा ही नवीन प्रयास है। सहगल जी ने ४ लाख की पूँजी मान कर इस प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी का रूप देना चाहा है। उनका कथन है कि एक लाख बीस हज़ार के शेयर सात सज्जनों ने ख़रीद भी लिए हैं।

अच्छा हो, यदि हिन्दी-प्रेमी इस चालू काम में हिस्सा लें, और इस अनूठे व्यवसाय के प्रबन्ध-ज्ञान को हासिल करके हिन्दी में, व्यापारिक प्रकाशन-कार्य को सफल कर दिखलावें।

मेरा यूरोप-भ्रमण

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

यात्रा की तैयारी



विलायत जाकर यूरोप के मुख्य-मुख्य नगरों तथा दर्शनीय स्थानों का भ्रमण न करना उसी प्रकार है, जिस प्रकार आगरा जाना और ताजमहल को न देखना। जिस समय मैं विलायत को गया था, तब जहाज़ पर सीधा लन्दन को चला गया था। उसके दो कारण थे। एक तो यह कि मेरी इच्छा जिब्राल्टर देखने की थी। दूसरा यह कि मैं बिस्के की खाड़ी की कठिनाइयों का कुछ अनुभव करना चाहता था। जिब्राल्टर स्पेन देश का एक समुद्र-तटस्थ स्थान है, जो एक चट्टान पर बसा है। नगर की हैसियत से इसमें कोई विशेषता नहीं। विशेषता इसकी यह है कि यह भूमध्य-सागर (Mediterranean Sea) में घुसने का द्वार है और इसकी चाबी अङ्गरेज़ों के हाथों में है। बिस्के की खाड़ी (Bay of Biscay) के विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसमें सदा तूफ़ान आया करते हैं। जहाज़ खिलौने की भाँति हिलता है और यात्रियों को अधिकता से समुद्री बीमारी (Sea Sickness) हो जाती है। जिन दिनों मौसम ख़राब होता है, उन दिनों तो बस नानी याद आ जाती है।

जहाज़ हमारा पहुँचा तो सीधा लन्दन ही था, परन्तु मार्ग में यूरोप के दो-तीन नगरों के किनारे ठहरता अवश्य गया था। सबसे पहला उनमें से नेपल्स था। यह नगर इटली का एक अत्यन्त सुन्दर नगर है, परन्तु इतना नहीं कि इस कहावत को चरितार्थ कर सके See Naples and die (नेपल्स देख लेने के बाद मृत्यु भी हो जाय तो कोई दुःख नहीं)। इससे कहीं सुन्दर नगर यूरोप में पड़े हैं। हाँ, यदि कोई यूरोप में पहले इसी नगर को देखे और इसके समुद्र के किनारे के प्रोमेनाड (Promanade) बड़ी-बड़ी इमारतें, सुव्यवस्थित बाज़ार, पृथ्वी के नीचे चलने वाली रेलें, आदि का प्रथम बार दर्शन करे, तो वह अवश्य इस नगर को सुन्दरता की कान समझेगा। इस नगर की एक विशेषता यह अवश्य है कि इसके निकट ही विस्यूवियस नामक ज्वालामुखी पर्वत तथा उसी के नीचे एक ओर प्रसिद्ध नगर पौमपी के भग्नावशेष स्थित हैं। इनके कारण नेपल्स, वास्तव में, एक दर्शनीय और आवश्यक नगर बन जाता है।

इसके बाद दूसरा नगर हमें मिला टूलाँ (Toulon)। यह फ़्रान्स का एक छोटा सा नगर है, जहाँ उस देश का समुद्री बेड़ा रहता है। इस नगर को देख कर हमें दो बातें बड़े महत्व की विदित हुईं। एक तो यह कि यूरोप के छोटे-छोटे नगरों में भी बिजली का प्रकाश, टेलीफ़ोन, ट्राम आदि आधुनिक वस्तुओं का प्रचार हो गया है। टूलाँ की जन-संख्या केवल सहस्रों में ही है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई इतनी है कि एक दिन में नगर भली-भाँति घूमा जा सकता है, फिर भी वहाँ ऐसी बातें देखने को मिलती हैं, जो हमारे बड़े-बड़े नगरों में देखने को मयस्सर भी नहीं होतीं। दूसरी बात हमने यह देखी कि फ़्रान्स आदि देशों में अङ्गरेज़ी का बहुत कम प्रचार था। यही बात नेपल्स में भी हमें दिखाई दी थी। बहुत कम लोग अङ्गरेज़ी समझ पाते थे। यह उसी समय हमें विदित हो गया कि बिना दो-तीन अन्य यूरोपीय भाषाएँ जाने यूरोप-भ्रमण का पूरा आनन्द नहीं उठाया जा सकता। हमें सर में डालने का तेल लेना था। कई दूकानों में फिरे, लड़कियों को इशारों से तथा अङ्गरेज़ी में समझाया, परन्तु सब व्यर्थ गया। हमें बिना तेल के वापस लौटना पड़ा।

इङ्गलैण्ड के विषय में कुछ लेख मैं 'चाँद' में पहले लिख चुका हूँ, कुछ लेख आजकल 'भविष्य' में निकल रहे हैं। इन पृष्ठों में मैं केवल यूरोप के महाद्वीप के भ्रमण का वृत्तान्त लिखूँगा। कुछ दिनों तक और भी मेरा विचार इङ्गलैण्ड में रहने का था, अतः मैंने इङ्गलैण्ड

छोड़ते समय यूरोप-भ्रमण की कोई विशेष तैयारी नहीं कर पाई थी। केवल दो दिन ही में सारा प्रबन्ध करना पड़ा था।

यहाँ पर मैं अपने पाठकों को पहले यह बता दूँ कि यूरोप-भ्रमण का पूरा आनन्द उठाने के लिए किन मुख्य बातों के प्रबन्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई व्यक्ति लन्दन से भारत लौटते समय भ्रमण करना चाहता है, तब तो इन बातों का लन्दन में प्रबन्ध होना आसान है। परन्तु यदि यात्री भारत से सीधा इस भ्रमण पर जाना चाहता है, तब बात उतनी सरल नहीं रह जाती, क्योंकि भारत के प्रत्येक नगर में इन सब बातों का प्रबन्ध होना कठिन और कहीं-कहीं असम्भव होता है।

पहली आवश्यक बात है, कुछ यूरोपीय भाषाओं का कम से कम बोलचाल का ज्ञान प्राप्त कर लेना। इनमें से मुख्य हैं फ़्रेञ्च, जर्मन तथा इटालियन। इटालियन भाषा का काम तो केवल इटली में ही पड़ता है, अतः उसके बिना काम चल सकता है। परन्तु फ़्रेञ्च तथा जर्मन जानना आवश्यक है। अधिकांश भारतीयों का यह विचार है कि अङ्गरेज़ी संसार में सर्वत्र समझी जाती है। कम से कम मैं इस विचार को ठीक नहीं समझता। यूरोपीय नगरों में अङ्गरेज़ी सर्वसाधारण द्वारा नहीं समझी या बोली जाती। केवल बड़े-बड़े होटलों में अवश्य इसका प्रयोग होता है। परन्तु सब भारतवासी इन होटलों में ठहर नहीं सकते, क्योंकि इनमें व्यय बहुत होता है। इतना ही नहीं, जब तक सर्वसाधारण से विचार-विनिमय न हो, जो केवल उन्हीं की भाषा में होना सम्भव होता है, तब तक भ्रमण न तो उतना रोचक होता है और न उतना शिक्षाप्रद। होटलों में ठहरना तथा सड़कों पर घूम कर मकानों को देखना तो किसी न किसी प्रकार सर्वत्र हो सकता है।

जर्मन तथा फ़्रेञ्च का सीखना सरल बात नहीं है, फ़्रेञ्च का उच्चारण बहुत कठिन है, तथा जर्मन का व्याकरण, जिसमें रूपों का पाश संस्कृत की ही भाँति है। परन्तु बोलचाल के आवश्यक वाक्य तथा शब्द लगभग तीन मास के अध्यवसाय तथा अध्ययन के अनन्तर आ सकते हैं। जो लन्दन में हैं, वे Woolworths Stores से छः-छः पैन्स में What you want to say and how to say it माला की फ़्रेञ्च, जर्मन आदि प्रत्येक भाषा की पुस्तिकाएँ ख़रीद सकते हैं। इनमें नित्यप्रति के व्यवहार की अनेक बातें दी गई हैं। इनके अतिरिक्त Midget Series Dictionaries अथवा Hugo's Series आदि पुस्तकों से भी सहायता मिल सकती है। भारत में भी इस प्रकार की पुस्तकें तथा बम्बई आदि बड़े नगरों में अध्यापक भी मिल सकते हैं। यदि कोई यात्री जर्मन अथवा फ़्रेञ्च जहाज़ पर जाय तो वहाँ भी भाषा सीखने में बहुत-कुछ सहायता मिल सकती है।

दूसरी आवश्यक बात है, अपने भ्रमण का ख़ूब सोच-विचार कर पहले से ही एक चार्ट तैयार कर लेना। यह मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह रहा हूँ। यदि आप पहले से ही यह जानते हैं कि आपको कहाँ-कहाँ होकर जाना है, किस-किस नगर में कितने-कितने दिन ठहरना है, आदि, तो एक तो आप इससे अपने भ्रमण का व्यय पहले से ही मालूम कर सकते हैं। दूसरे, आप कम समय में बहुत-कुछ देख सकते हैं।

तीसरी आवश्यक बात है, जिन देशों में भ्रमण करना हो, उनके सम्बन्ध में कुछ जानकारी के लिए उन देशों का इतिहास, भूगोल आदि पढ़ना आवश्यक है। जिन नगरों को देखना हो, उनके विषय में बातें जानने के लिए Thomas Cook & Son, Lindsay & Co., American Express Co., Cox & Kings आदि कम्पनियों को लिख देने से उन नगरों के सम्बन्ध की सचित्र पुस्तकें मिल जाती हैं। मैं यहाँ संक्षेप में पाठकों को यह बता देना चाहता हूँ कि भ्रमण प्रारम्भ करने से पूर्व मैं क्या करता हूँ। ये बातें यूरोप के यात्रियों के लिए ही लाभदायक हों, सो बात नहीं है। इनसे वे यात्री भी लाभ उठा सकते हैं, जो भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में भ्रमण करना चाहते हैं। मैंने विलायत जाने से पूर्व लगभग सारा भारतवर्ष घूम डाला था, और उस भ्रमण में भी मैं जहाँ तक हो सकता था, अपनी निम्नाङ्कित प्रणाली से ही काम लेता था।

सबसे पहले मैं उन देशों की भाषाओं का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लेता हूँ, विशेषकर, मैं नित्यप्रति के व्यवहार के कई सौ शब्द छाँट लेता हूँ और उनके अर्थ कई भाषाओं में एक नोट-बुक में लिख कर सदा अपनी जेब में

रखता हूँ। जहाँ आवश्यकता हुई और कोई शब्द याद न आया, वह नोट-बुक निकाली और काम चला लिया। इसके अतिरिक्त, मैं उन भाषाओं के व्याकरण का भी थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर लेता हूँ, ताकि छोटे-छोटे वाक्य बनाना तथा भाषा के शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना आ जाय। इन सब बातों में थोड़ी कठिनाई अवश्य होती है, परन्तु नित्य रात्रि को कुछ देर उन शब्दों को दुहराने से बहुत-कुछ याद हो जाता है। मैं तो जिस होटल में ठहरता था, उसी के मालिक या मालकिन से कुछ नए शब्द उसकी भाषा के अवश्य सीख लेता था। इस प्रकार मैत्री भी बढ़ती थी और मनोरञ्जन भी होता था। वे लोग, जिस प्रकार छोटे बच्चों को पाठ पढ़ाते हैं, उसी प्रकार मुझे अपनी भाषा की प्रारम्भिक बातें बताने में बड़ा कौतूहल समझते थे। अनेक बातें मैं दूकानदारों से भी सीखता था। जिस किसी वस्तु का नाम न आया, उसकी ओर इशारा किया और दूकानदारों से नाम पूछ कर नोट-बुक में लिख लिया। यह बात मैंने यूरोप में ही नहीं, बल्कि अपने महाराष्ट्र, मद्रास तथा लङ्का के भ्रमण में भी की थी।

भाषा की सुविधा हो जाने पर मैं अपने भ्रमण का चार्ट बनाता हूँ, और जहाँ तक हो सकता है, उसी के अनुसार कार्य करने का प्रयत्न करता हूँ। इसके लिए Continental Railway Time Table तथा यूरोप का रेलवे का नक़्शा रखना परमावश्यक है। जब चार्ट बन जाता है, तो मैं पूरे भ्रमण का रेलवे-टिकट किसी भ्रमण-कम्पनी से ले लेता हूँ। इस प्रकार पहले ही टिकट ख़रीद लेने में कई सुविधाएँ होती हैं। एक तो इस टिकट को दो-तीन मास तक रख सकते हैं, बार-बार स्टेशनों पर टिकट लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे, किराए में भी बहुत बचत होती है। यूरोप के लगभग प्रत्येक देश में ऐक्सप्रैस ट्रेन से यात्रा करने में चार-पाँच रुपए अधिक देने पड़ते हैं। परन्तु यदि टिकट एक साथ ही लिया है, तो यह अधिक टैक्स केवल एक बार ही देना पड़ता है और प्रत्येक देश में वही कूपन काम आ जाता है। भ्रमण-कम्पनी से टिकट ख़रीदने में यह सुविधा रहती है कि जहाँ-जहाँ उस कम्पनी की शाखाएँ हैं, वहीं-वहीं अनेक प्रकार की सहायता मिल सकती है। यह सहायता कहीं-कहीं मुफ़्त और कहीं-कहीं स्वल्प व्यय पर मिल जाती है। इन कम्पनियों में Thomas Cook & Son तथा American Express Co. अच्छी हैं, क्योंकि इनकी शाखाएँ संसार में लगभग सभी बड़े तथा भ्रमण-सम्बन्धी नगरों में हैं। भारतवासियों ने तो अभी इस प्रकार की संस्थाएँ खोलने का स्वप्न भी नहीं देखा। विदेश में तो क्या, भारत में ही भ्रमण के लिए ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं है। एक बङ्गाली नवयुवक ने लन्दन में कुछ कार्य प्रारम्भ किया है, परन्तु ऐसा कार्य एक साधारण व्यक्ति के वश का नहीं। इसके लिए तो बड़े-बड़े धनिकों तथा अनुभवी व्यक्तियों की एक कम्पनी की आवश्यकता है। यदि इस प्रकार की एक कम्पनी खुल जाय और उसका काम अनुभवी हाथों में हो, तो उसका चलना कठिन नहीं है। आजकल जब हम विदेशी संस्थाओं का बहिष्कार करने का कार्यक्रम सोच रहे हैं, तो साथ ही हमें अपनी संस्थाओं की स्थापना भी करनी चाहिए। प्रति वर्ष सहस्रों भारतवासी भिन्न-भिन्न देशों के लिए भारत से बाहर जाते हैं। यदि कोई अपनी भ्रमण-कम्पनी हो तो इनमें से अधिकांश उस कम्पनी द्वारा अपना कार्य करावें और इस प्रकार कमीशन आदि का जो रुपया विदेशी कम्पनियों के हाथ पड़ता है, वह भारतवासियों के ही हाथों में रहे।

यह सब कुछ हो जाने पर मैं, जिन देशों में भ्रमण करना होता है, उनके भूगोल तथा इतिहास के विषय में कुछ पढ़ता हूँ। यह बात भ्रमण में बहुत काम आती है। यदि आप फ़्रान्स में भ्रमण करते समय देवी जोन के विषय में या नेपोलियन के विषय में या विक्टर ह्यूगो के विषय में कुछ बातें कर सकते हैं, तो वहाँ के लोगों की दृष्टि में आपका सम्मान बढ़ जायगा। इसी प्रकार जर्मनी में गुइटे (Goete) कवि की कविताओं के विषय में कुछ कह सकें तथा स्ट्राउस के सङ्गीत के विषय में कुछ बातें कर सकें, तो वहाँ के लोग आपसे बड़े प्रसन्न होंगे। इसीलिए इतिहास-भूगोल आदि के अतिरिक्त उन देशों की सामाजिक व्यवस्था, कविता, साहित्य, वर्तमान राजनीति, संस्कृति आदि पर कुछ ज्ञान आपको है, तो यह भ्रमण में बहुत काम आता है।

इस विषय का ज्ञान प्राप्त करके मैं उन नगरों के विषय में जानकारी प्राप्त करता हूँ, जहाँ-जहाँ मुझे जाना

होता है। वहाँ के होटलों की लिस्ट भ्रमण-कम्पनी से मिल जाती है। ऐसी लिस्ट अपने पास अवश्य होनी चाहिए। इस लिस्ट में होटलों के नाम, उनकी श्रेणी, प्रतिदिन का रहने का किराया, प्रतिदिन के भोजन का व्यय, मुहल्ला आदि लिखा रहता है। मैं जहाँ-जहाँ गया, स्टेशन पर पहुँचते ही अपनी जेब के अनुसार होटल तलाश करने में इस प्रकार की पुस्तकों से बड़ी सहायता मिली। होटलों की लिस्ट के साथ ही साथ मैं प्रत्येक नगर का एक नक़्शा तथा वहाँ के दर्शनीय स्थानों की सूची अवश्य ही ले लेता हूँ। जब मैं किसी नगर में पहुँचता हूँ, तो नगर के नक़्शे में उन स्थलों पर निशान लगा देता हूँ, जिनको देखना आवश्यक है। इस प्रकार करने से लाभ यह होता है कि एक बार एक दिशा में जाने से वे सब स्थान देख लिए जाते हैं, जो उस दिशा में होते हैं। यदि इस प्रकार न किया जाय तो बड़ी कठिनाई पड़ती है। पहले तो चारों ओर यही पूछना पड़ता है कि अमुक नगर में कौन-कौन स्थान दर्शनीय हैं। यह भाषा न जानने वाले के लिए सरल बात नहीं। मान लीजिए कि आपको उन स्थानों के नाम मिल गए, अब सड़कों के पते पूछते फिरिए। कभी-कभी चार स्थानों को देखने के लिए एक ही दिशा में चार बार आना-जाना पड़ता है। इस प्रकार समय तो नष्ट होता ही है, साथ ही ट्राम आदि में पैसे अधिक व्यय होते हैं। और यदि भ्रमण पैदल चल कर किया जाय, जिस प्रकार मैं करता हूँ, तो पैरों का दिवाला एक ही दिन में निकल जाय। नक़्शा तथा दर्शनीय स्थानों की सूची पास होने से मैंने बर्लिन और पैरिस की सभी मुख्य-मुख्य चीज़ों को तीन-तीन दिन में ही देख लिया था और वह भी पैदल चल कर। साथ ही वहाँ के सिनेमा, थिएटर तथा लाइब्रेरियों आदि का भी अनुभव कर लिया था। कभी आप किसी मित्र से मिलिए, जो पैरिस में दो दिन रहा था।

"पैरिस में आपने क्या देखा?"—आप पूछिए।

"देखा क्या, केवल दो दिन तो रहे ही। इतने समय में क्या देख सकते थे? मोटर में बैठ कर सीन नदी के किनारे तथा एलिसी के इधर-उधर घूम लिए थे।"—वह उत्तर देंगे।

"आपने नेपोलियन की समाधि नहीं देखी?"

"नेपोलियन की समाधि? हमें तो पता ही न लगा कि वह किधर थी।"

ये प्रश्न मैंने अनेक मित्रों से लन्दन में किए थे और ऐसे ही उत्तर उनसे मिले थे। इसीलिए मैं लिख रहा हूँ कि नगर को बिना समझे उसके विषय में कुछ जानना कठिन है और जब तक उस नगर के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त न हो जाय, जब तक हम उस नगर से परिचित-से न हो जायँ, तब तक हम भ्रमण का पूरा आनन्द नहीं उठा सकते। हाँ, उस नगर में कोई केवल कुछ दिन व्यतीत करने के अर्थ से ही जाय, तो बात दूसरी है। परन्तु ऐसे व्यक्तियों को भी यदि उस नगर का दिशा-ज्ञान हो, तो अच्छा ही है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें अनेक व्यक्ति ऐसे नगरों में मार्ग भूल जाते हैं, तथा इधर-उधर भटकते फिरते हैं।

चलने से पूर्व यह जानना भी आवश्यक है कि क्या-क्या सामान साथ ले जाना चाहिए। पाठकों को यह बताना तो व्यर्थ ही होगा—क्योंकि अब तक तो सभी इस बात को जानते होंगे—कि यूरोप में भ्रमण करते समय बिस्तर साथ रखने की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक होटल में बिस्तर सहित कमरा मिलता है, अतः बिस्तर का लादना व्यर्थ ही नहीं, असुविधाजनक भी है। एक छोटा-सा सूटकेस तथा एक हैण्डबेग बहुत काफ़ी होते हैं। इनमें पहनने के वस्त्र तथा कुछ पुस्तकें और नित्यप्रति के व्यवहार की वस्तुएँ—कङ्घा, उस्तरा आदि आ सकती हैं। इतना सामान रहने पर रेल में बड़ी सुविधा होती है और जब एक देश से दूसरे देश में प्रवेश करते हैं, तो चुङ्गी वालों से शीघ्र और सरलता से जान छूट जाती है। थोड़ा सामान देख कर बहुधा वे सूटकेस आदि को बिना खुलवाए ही पास कर देते हैं। यदि सामान अधिक होता है, तो एक-एक चीज़ खोल-खोल कर देखी जाती है। इससे समय भी नष्ट होता है और कभी-कभी सामान की हानि भी हो जाती है।

पहनने के वस्त्र साथ रखने में ऋतु का तथा देश का ध्यान रखना पड़ता है। गर्मी में जब इङ्गलैण्ड में जाड़ा रहता है और ओवरकोट का प्रयोग करना आवश्यक होता है, तब जर्मनी तथा स्विटज़रलैण्ड में बिना ओवरकोट के काम चल जाता है और ऑस्ट्रिया तथा इटली में तो ऊनी कपड़ों का पहनना असम्भव हो जाता है।

एक रेनकोट का रखना अच्छा है, क्योंकि यूरोप के देशों में वर्षा चाहे जब होने लगती है, उसके लिए कोई विशेष ऋतु नहीं होती। यह तो रही गर्मी की बात। सर्दी की ऋतु में स्विटज़रलैण्ड, जर्मनी आदि देशों में भी बड़े कड़ाके का जाड़ा पड़ता है और काफ़ी गर्म वस्त्र पहनने की आवश्यकता पड़ जाती है। रेलगाड़ियाँ यद्यपि गर्म होती हैं, कहीं गर्म वाष्प द्वारा, कहीं बिजली द्वारा, फिर भी एक गर्म कम्बल की आवश्यकता पड़ती ही है।

चलने से पहले प्रत्येक देश के थोड़े-थोड़े सिक्के अपने पास रखना आवश्यक है। यों तो प्रत्येक स्थान पर विनिमय (Exchange) के लिए कम्पनियाँ तथा बैङ्क हैं, परन्तु कभी यात्रा करते हुए छोटे-छोटे दूकानदार विदेशी सिक्के को नहीं लेते और सौदा लेने तक में कठिनाई होती है।

अधिक रुपया अपने साथ रख कर चलना कभी उचित नहीं। गिरहकट तथा ठगों की यूरोप के देशों में कमी नहीं। बात की बात में रुपया उड़ा देना इनके बाएँ हाथ का खेल है। रेलों में जुआ खेलने वाले बहुत सफ़र करते हैं। वे जानते हैं कि यूरोप आने वाले भारतीय धनवान होते हैं, अतः उनका शिकार करना बड़ा लाभदायक होगा। वे बातों-बातों में यात्री के साथ मैत्री कर लेते हैं और फिर खेलना शुरू कर देते हैं। मिनटों ही में जेब ख़ाली करा लेने में वे सिद्धहस्त होते हैं। इन सब बातों से बचने का एक सुगम उपाय है। वह यही कि अपने रुपए को नक़दी के रूप में अपने साथ लेकर न चलना। प्रायः सभी भ्रमण-कम्पनियाँ रुपया लेकर अपने Traveller's cheques (यात्रियों के चेक) देती हैं। ये चेक दर्शनी हुण्डी का काम करते हैं। किसी बैङ्क में या भ्रमण-कम्पनी के दफ़्तर में उस चेक के रुपए मिल सकते हैं। इस प्रकार आप सहस्रों रुपया अपने साथ लिए फिर सकते हैं और आपको उसके खोने का तनिक भी डर नहीं रहेगा।

यही बात सामान के विषय में भी कही जा सकती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि सामान रेल में से या स्टेशन पर उतरते समय अथवा किसी होटल में से ग़ायब हो जाता है। फिर उसका पता लगाना बड़ा कठिन होता है। उसकी रक्षा के लिए, उसका बीमा करा लेना अच्छा होता है। बीमा कराने में कुछ रुपए ही व्यय होते हैं, परन्तु यात्री इससे बहुत निश्चिन्त हो जाता है।

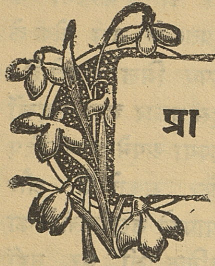
यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व इन बातों पर ध्यान देना अच्छा है। ये बातें हैं बहुत साधारण, परन्तु इन पर ध्यान देने से जितनी सुविधा, जितना आराम और जितना लाभ होता है, वह पाठकों को अनुभव द्वारा ही ज्ञात हो सकता है।

(क्रमशः)

मनोहर धार्मिक कथाएँ

[श्री० जयनारायण जी कपूर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०; तथा श्री० बलखण्डोदीन जी सेठ]

रविवार की कथा



प्राचीन काल में धारा नगरी में एक निर्धन ब्राह्मण रहता था। वह रोज़ अपने घर से पेट की चिन्ता में निकल जाता। किसी जङ्गल से घास और सूखी लकड़ियाँ काट कर लाता और उन्हें बेच कर जो कुछ दो-चार पैसे मिल जाते, उन्हीं से किसी प्रकार अपने पापी पेट की ज्वाला शान्त करता और अपने बीबी-बच्चों के लिए दो रोटियाँ जुटाता। इसी तरह उसके ग़रीब परिवार के दिन कटते चले जाते थे। एक दिन जिस जङ्गल में वह घास काटने गया, वहाँ उसको बड़ी भारी चहल-पहल दिखलाई दी। जङ्गल भर में धूमधाम मची हुई थी। एक पेड़ के नीचे बहुत-सी पूजा की सामग्री रक्खी हुई थी। वहीं पर कुछ वन-देवियाँ नहा-नहा कर एकत्र हो रही थीं। यह लीला देख कर उस ब्राह्मण को बहुत ताज्जुब हुआ। वह डरा और कुछ सकबका सा गया। लेकिन उसने साहस करके कुछ झिझक और सङ्कोच के साथ उन वन-देवियों से पूछा कि यह सब क्या हो रहा है। उन्होंने कहा—"डरो मत, लेकिन इस सवाल को छोड़ कर और जो चाहो सो पूछो, अगर इस सवाल का जवाब हमने दिया तो तुम घमण्डी हो जाओगे और जो पूजा हम तुम्हें बतलाएँगी उसे तुम विधिपूर्वक न कर सकोगे।" परन्तु ब्राह्मण ने निडर होकर कहा—"नहीं, मैं वादा करता हूँ कि जो कुछ पूजा तुम बतलाओगी, मैं उसको विधिवत् करूँगा। और कभी घमण्ड न करूँगा।" वन-देवियों को ब्राह्मण पर दया आ गई। उन्होंने कहा—"यह सावन का महीना है, हम सूर्यनारायण की पूजा का अनुष्ठान कर रही हैं। तुम इस पूजा को श्रद्धा और भक्ति के साथ करना, सूर्य-नारायण प्रसन्न होकर तुम्हारा घर धन-धान्य से भर देंगे। यह पूजा सावन के पहले इतवार को प्रारम्भ की जाती है। इस दिन तुम नहा-धोकर लाल चन्दन से सूर्यनारायण का एक चित्र खींचना और फल-फूलों से उसकी पूजा करना। बराबर ६ महीने तक इसी विधि से पूजा करते रहना। जिस दिन पूजा समाप्त हो, उस दिन अपनी सामर्थ्यानुसार निर्धन ब्राह्मण, अतिथि और अभ्यागतों को भोजन-वस्त्र का दान देना।"

ब्राह्मण देव-कन्याओं की वाणी सुन कर उलटे पैरों लौट पड़ा। घर पहुँचा और उसी दिन से उसने पूजा का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया और बड़े संयम-नियम और श्रद्धा-भक्ति के साथ बराबर ६ मास तक पूजा करता रहा। सूर्यनारायण ब्राह्मण के जप-तप से बहुत प्रसन्न हुए। ब्राह्मण को मुँह-माँगा वरदान मिला। उसके घर में लक्ष्मी ने डेरा डाल दिया। घर का कोना-कोना धन-धान्य से भर गया। उसके यहाँ रोज़ नगर के ग़रीब, भिखारी, लँगड़े-लूले, अपाहिजों को पेट भर अन्न और वस्त्र मिलने लगा। उसका यश और कीर्ति नगर भर में फैल गई और दूर-दूर तक वह प्रसिद्ध हो गया। अन्त में नगर की रानी के कान में भी उसके यश की दुन्दुभि पहुँची। रानी ने ऐसे प्रतापी ब्राह्मण को देखने की इच्छा प्रकट की और उसको बुलवा भेजा। बेचारा ब्राह्मण काहे को कभी राज-दरबार में गया था, रानी के सन्देश को सुन कर वह डर गया और थर-थर काँपने लगा। परन्तु जब रानी के पास पहुँचा तो रानी ने उसको ढाढ़स देकर कहा—"डरो मत, मैं तुम्हारी कीर्ति को सुन कर बहुत प्रसन्न हुई हूँ। मैं चाहती हूँ कि तुम अपनी लड़कियों को हमारे कुल में ब्याह दो।" ब्राह्मण ने कहा—"रानी जी, भला मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ, जो राजकुल से सम्बन्ध करने के योग्य बन सकूँ। मेरी लड़कियाँ अपढ़, मूर्ख और राज-सम्बन्ध के सर्वथा अयोग्य हैं। वे ग़रीब घर की ग़रीब कन्याएँ हैं। आप अधिक से अधिक उनको दासी के काम पर लगा देंगी।" रानी ने कहा—"मैं उनको दासी न बनाऊँगी, बल्कि उनमें से एक राजा

को ब्याह दूँगी और एक मन्त्री को।" ब्राह्मण रानी की बात को न टाल सका, और उसने वहीं मञ्जूरी दे दी। जब माघ का महीना आया तो उसने अपनी दोनों बेटियों को राजकुल में ब्याह दिया। एक राजा को ब्याही गई और दूसरी मन्त्री को।

लड़कियों को अपने-अपने स्वामी के घर बिदा करके ब्राह्मण अपने कर्तव्य से छुट्टी पा गया। घर के काम-धन्धे में लगे रहने से वह अपनी किसी भी बेटी के पास बारह बरस तक न जा सका। इतने अर्से में उसकी किसी बेटी ने भी उसकी सुध न ली। एक दिन जब ब्राह्मण का जी न माना तो वह अपनी बड़ी बेटी के पास गया। यह बेटी राजा के घर ब्याही थी। बेटी ने जब अपने बूढ़े पिता को आते देखा, तो वह कुछ मलिन हो गई। उसे पिता का आना अखरा। उसने जल्दी कुछ खिला-पिला कर बूढ़े को वहाँ से टाल देना चाहा। इसीलिए उसने जल्दी से पिता के लिए एक आसन बिछा दिया और एक मामूली थाली में खाना परोस दिया और कहा—पिता जी, जल्दी से भोजन कर लीजिए, देखिए कितने बढ़िया पकवान हैं, देरी करने से ये सब ख़राब हो जायँगे।

बाप ने कहा—बेटी, जल्दी काहे की है, अभी तो मैं आया ही हूँ, ज़रा दम मार लूँ तो खाऊँगा। बेटी! तूने तो मेरी कुशल-क्षेम भी न पूछी, ले मैं अपने आप ही तुझे अपना हाल बताता हूँ, ज़रा चित्त धर के सुन।

बेटी कुछ अनख कर बोली—अरे! पिता जी, मुझे कहाँ इतनी फ़ुरसत, जो यह सब तुम्हारी गाथा सुनूँ, राजा शिकार को जा रहे हैं, वह मेरी बाट जोहते होंगे, उन्हें जाकर भोजन कराना है, तुम्हें जल्दी से बिदा कर दूँ तो उनके पास जाऊँ।

बेटी की ये अपमानजनक बातें सुन कर ब्राह्मण को बड़ा दुःख हुआ। ग्लानि और क्रोध के मारे वह बिना भोजन किए ही वहाँ से चला गया।

इसके बाद वह अपनी छोटी बेटी के पास पहुँचा। छोटी बेटी ने उसकी बड़ी आवभगत की, पिता को प्रणाम करके उसे ऊँचे आसन पर बिठाया और बड़े आदर तथा प्रेम के साथ उसे भोजन कराया। इसके बाद बेटी ने कहा—"पिता जी! आपकी याद मुझे दिन-रात आया करती है, घर का कुछ हाल कहिए, जिससे मेरे दिल को कुछ ढाढ़स मिले।" बेटी के प्रेम-भरे वचनों से ब्राह्मण का हृदय आनन्द से खिल गया। उसने बेटी को वह सब कथा कह सुनाई, कैसे वह जङ्गल में लकड़ी और घास काटने गया और किस प्रकार उससे और वन-देवियों से भेंट हुई। कथा कह चुकने के बाद उसने बेटी को यह उपदेश दिया कि बेटी, तुम प्रत्येक इतवार को सूर्यदेवता की पूजा किया करना। पूजा के सब विधान उसने बेटी को बता दिए। बेटी यह कथा सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने पिता को विश्वास दिलाया कि मैं यह पूजा प्रति रविवार को ज़रूर किया करूँगी। इसके बाद उसने पिता को बहुत से रत्न देकर आदर के साथ बिदा किया।

ब्राह्मण ने घर लौट कर अपनी दोनों बेटियों के आदर-सत्कार की बात अपनी पत्नी से बतलाई और कहा कि बड़ी बेटी ने घमण्ड के नशे में मेरा आदर नहीं किया और न मेरी कथा को ही सुना। इसमें उसकी भलाई न होगी।

पिता के वचन ख़ाली नहीं गए। बड़ी बेटी पर बड़ी भारी विपत्ति आ गई। उसका पति राजा, जो बड़ी भारी सेना लेकर शिकार खेलने गया था, लौट कर न आया। उसके राज्य भर में बड़ी गड़बड़ मच गई और उसका सारा धन धीरे-धीरे लोप हो गया। वह रोटियों तक को मुहताज हो गई। इधर छोटी बेटी बड़े सुख से अपने दिन काट रही थी। वह पहले की अपेक्षा अब और भी अधिक अमीर हो गई थी।

बड़ी बेटी के पास जब कानी कौड़ी तक न रही, तो एक दिन उसने अपने बड़े बेटे को यह कह कर अपनी छोटी बहिन के पास भेजा कि जा अपनी मौसी के पास से कुछ माँग ला। लड़का मौसी के यहाँ गया, मौसी ने जब देखा कि उसकी हालत बड़ी ख़राब है, वह फटे-चिटे कपड़े पहने है, न पैर में जूता है और न सर पर टोपी, तो उसको बड़ी दया आई। उसने उसके कपड़े बदलवाए, उबटन लगा कर नहलाया-धुलाया, साफ़-सुथरे कपड़े पहनने को दिए और उत्तम-उत्तम भोजन उसको खिलाए। चलते समय एक नारियल उसको दिया और कहा कि मेरी बड़ी बहिन को मेरी ओर से यह भेंट देना। छोटी बेटी ने छिपा कर उस नारियल को रत्नों से भर दिया था। लड़का जब नारियल लेकर वहाँ से

चला तो रास्ते में उसे एक भिखमङ्गा मिला और लड़के से नारियल ले लिया। वास्तव में वह भिखमङ्गा और कोई न था, वह सूर्यनारायण थे, जो भिखमङ्गे के भेष में रत्नों से भरा नारियल बड़ी बेटी के लड़के से माँग कर ले गए।

लड़के के घर पहुँचने पर माँ ने पूछा—"बेटा, मौसी के पास से क्या लाए?" बेटे ने कहा—"माँ! लाया तो सब कुछ, लेकिन क्या करूँ, कर्मों ने छीन लिया।" माँ मन मार कर रह गई। जब दुबारा इतवार आया तो उसने अपने मँझले बेटे को अपनी बहिन के घर भेजा। उसने इस बेटे का भी ख़ूब आदर-सत्कार किया और चलती बेर उसे एक छड़ी भेंट की और कहा—"बेटा! इसे सँभाल कर ले जाना, ख़बरदार इसे कहीं इधर-उधर रख न देना!" यह छड़ी खोखली थी और उसके अन्दर बड़े-बड़े क़ीमती रत्न भरे थे। जब छड़ी लेकर मँझला बेटा वहाँ से चला तो रास्ते में सूर्य भगवान भिखमङ्गे के रूप में उसे मिले और उससे छड़ी ले ली। वह बेचारा ख़ाली हाथ घर पहुँचा। जब माँ ने पूछा कि बेटा, मौसी ने क्या दिया तो कहा कि भाग्य ने दिया, लेकिन कर्म ने छीन लिया। माँ फिर अपना माथा ठोंक कर रह गई। तीसरे रविवार को उसने अपने तीसरे लड़के को अपनी बहिन के पास भेजा। उसकी मौसी ने दूसरे लड़कों की भाँति उसको भी नहलाया-धुलाया, नए-नए कपड़े पहनाए, अच्छा-अच्छा खाना खिलाया और जब वह जाने लगा तो सोने की मोहरों और जवाहरातों से भर कर एक तरबूज़ उसको दिया और कहा—"इसको कहीं गिरा न देना और न कहीं रास्ते में इसको रखना, बहुत सावधानी से ले जाकर मेरी ओर से बड़ी बहिन को इसे भेंट में दे देना।" लड़का रास्ते में अपनी मौसी के उपदेश को भूल गया और प्यास लगने पर पानी पीने के लिए वह एक कुएँ के पास रुका तो उस तरबूज़ को कुएँ की जगत पर रख दिया। अकस्मात तरबूज़ लुढ़क कर कुएँ के भीतर गिर गया। लड़का रोता हुआ अपनी माँ के पास पहुँचा। उसने माँ से सब हाल बताया और कहा—अम्मा! यह सब भाग्य का खेल है, हमारे कर्म ही खोटे हैं, नहीं तो यह कैसे होता।

माँ ने अब की बार चौथे लड़के को भेजा। इस बार छोटी बेटी ने एक मिट्टी के बर्तन में हीरे-जवाहरात भर कर दिए। परन्तु इस बार भी सूर्य देवता एक चील के रूप में वह पूरा बर्तन का बर्तन झपट्टा मार कर उससे छीन ले गए। लड़के ने रोकर अपनी माँ से सब हाल कहा। माँ निराश हो गई और छाती पीट-पीट कर रोने लगी। उसने सोचा कि कोई न कोई देवता उससे ज़रूर रुष्ट हैं, नहीं तो उसकी इतनी कोशिशें कभी बेकार न जा सकती थीं।

पाँचवें रविवार को माँ ख़ुद अपनी बहिन के पास गई और उससे रो-रोकर अपनी विपत्ति का सब हाल कहा। छोटी बेटी ने बहिन को समझाया और कहने लगी कि ये सब आफ़तें तुम्हारे ऊपर इसलिए आई हैं कि तुमने पिता जी की सूर्यनारायण की कथा का तिरस्कार किया। इसी कारण सूर्य देवता तुमसे नाराज़ हो गए। उनको प्रसन्न करने के लिए उनकी पूजा का अनुष्ठान करो। बहिन की बात सुन कर उसको होश आया और बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह वहीं रुक कर सूर्यनारायण की पूजा का अनुष्ठान करने लगी। श्रावण के रविवार को उसने विधिवत पूजा की और श्रद्धा और भक्ति के साथ सूर्य देवता का प्रसाद पाया।

उसी दिन से उसका भाग्य-चक्र पलट गया और उसके सुख के दिन लौट आए।

उसका पति जो बड़ी भारी सेना लेकर शिकार के लिए गया, भटक कर दूसरे राजा के देश में जा पहुँचा था। उस राजा ने यह समझ कर कि यह हमारे ऊपर हमला करने आया है, उससे युद्ध ठान दिया। राजा शत्रुओं से घिर गया और जब तक रानी पर सूर्य देवता की टेढ़ी दृष्टि रही तब तक वह भी हार पर हार खाता रहा और जब रानी पर सूर्य देव प्रसन्न हुए, तब उसके भी भाग्य ने पलटा खाया। उसने एक ही हमले में शत्रुओं को मार भगाया। शत्रु राजा हार गया। उसके देश को जीत कर राजा बहुत सा धन-धान्य लेकर अपने देश को वापस आया।

मार्ग में उसे ख़बर मिली कि उसकी रानी अपनी बहिन, मन्त्री की स्त्री, के यहाँ है। राजा मन्त्री के महल में आकर उतरा। अपने पति के आने की ख़बर सुन कर रानी का अङ्ग-अङ्ग आनन्द से फूल उठा। वह दौड़ी हुई आई और पति के पैरों से लिपट गई। उसने कुल आप बीती राजा को सुनाई। राजा सूर्यनारायण की

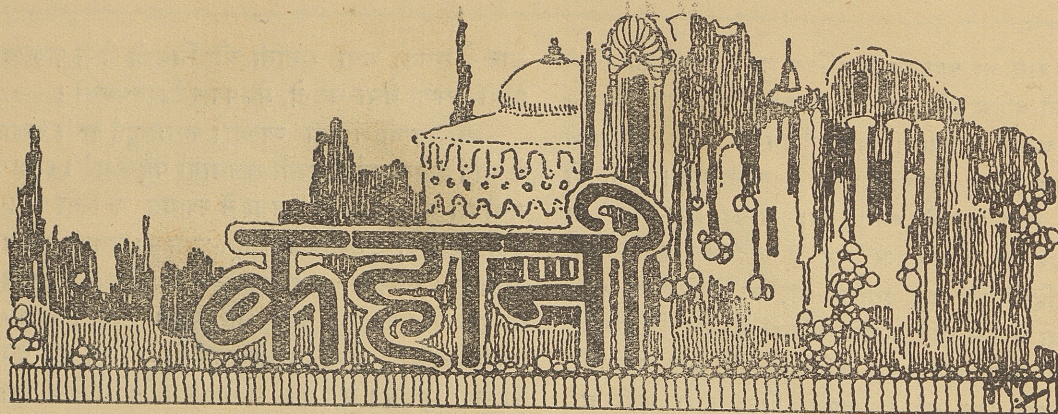
कथा सुन कर अत्यन्त आनन्दित हुए। मन्त्री की स्त्री ने अपनी बहिन और बहनोई को बड़े प्रेम से विदा किया।

अपनी राजधानी तक पहुँचने में राजा को अपने लश्कर के कई पड़ाव रास्ते में डालने पड़े। रानी को अब कथा सुनाने का इतना चस्का लग गया था कि हर एक पड़ाव पर वह ढूँढ़-ढूँढ़ कर भूखों-नङ्गों, अपाहिजों और उन मनुष्यों को, जो किसी बड़ी भारी विपदा में फँसे होते अपने नौकरों के द्वारा बुलवाती, नहला-धुला कर उन्हें बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनाती, तब बड़े नेम-धर्म से अपने पिता द्वारा कही हुई सूर्यनारायण की कथा सुनाती। इसके बाद उन्हें आदरपूर्वक अपने आप भोजन करा कर बहुत से रत्न दे, उन्हें विदा करती। उन भिखमङ्गों, अपाहिजों और शोकार्त मनुष्यों पर उस कथा के सुनने का इतना प्रभाव पड़ता कि उनके सारे दुःख शीघ्र ही मिट जाते थे। इसका फल यह हुआ कि रानी की कथा की सर्वत्र धूम मच गई। हज़ारों दीन-दुखियों की भीड़ की भीड़ रानी के द्वार पर प्रति दिन उमड़ी पड़ती थी और रानी भी उनको देख-देख फूले अङ्ग न समाती थी। वह बड़े चाव से सबको कथा सुनाती और जिसको जैसी ज़रूरत होती उसको वैसा धन दे, प्रेमपूर्वक विदा करती।

सब पड़ावों में यही व्यवहार करती हुई रानी राजा के साथ कुशल-पूर्वक अपनी राजधानी पहुँच गई। राजा-रानी का आना सुन कर प्रजा ने स्वागत के लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँ कीं और बड़ी धूम-धाम से उनका जुलूस निकाला। रानी ने अपने राजमहल में पहुँच कर अपनी समस्त प्रजा को एक बड़ा भारी भोज दिया। भोजन प्रारम्भ करने के पहले उसने स्वयं ही सब को सूर्य देव की कथा सुनाई। सूर्य देव रानी की प्रीति को देख कर, बहुत प्रसन्न हो गए थे। इस कथा को सुनने वह स्वयं पधारे। रानी उनके दर्शन पाकर अत्यन्त आनन्दित हुई। राजा, रानी और प्रजा ने मिल कर सूर्यनारायण जी की स्तुति की। सूर्य देव ने रानी को वरदान दिया कि तू जन्म-जन्मान्तर सुख और ऐश्वर्य में रहेगी और तेरे कारण यह राजा और प्रजा भी कभी दुखी न होंगे। तब से राजा-रानी, प्रजा और कोई भी मनुष्य, जिसने यह सूर्यनारायण की कथा सुनी, कभी दुखी नहीं हुए और उसकी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गईं।

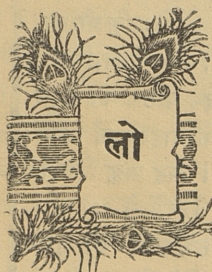
श्रीयुत रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल्० लिखते हैं :—

"चाँद" का "राजपूताना-अङ्क" मिला, जिसके लिए कोटिशः धन्यवाद। सचमुच "चाँद" की यह चन्द्रिका पाठकों के हृदय-कुमुद को प्रफुल्ल करने में तनिक भी कसर नहीं करेगी। इसकी धवल ज्योत्स्ना में राजपूताने के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का नग्न-चित्र देख कर पाठकों के मानस-चक्षुओं के सम्मुख परस्पर विरोधी, हर्ष और विषाद का एक अपूर्व सम्मिलन अवश्य उपस्थित होगा। प्राचीन राजपूत-नरेशों की निःशङ्क वीरता, प्रजा-वत्सलता आदि सद्गुणों के उज्ज्वल-चित्रों के मुक़ाबले में उनके वर्तमान वंशधरों की भोग-विलासिता, निरङ्कुश शासन, अकर्मण्यता, स्वेच्छाचारिता आदि दुर्गुणों का काला चित्र देख कर किस सहृदय पाठक का हृदय उक्त परस्पर विरोधी मानसिक आवेगों के कारण आलोड़ित न हो उठेगा? विविध विषयों के महत्वपूर्ण लेखों तथा कविताओं से सुसज्जित "चाँद" का यह अङ्क आपकी गुण-गरिमा का परिचायक है। यह अङ्क हिन्दी-साहित्य का केवल एक अनूठा रत्न ही नहीं, बल्कि एक अमूल्य निधि है। इसके रङ्ग-विरङ्गे चित्रों ने इसे और भी संग्रह योग्य बना दिया है; तिस पर राजपूताने के विविध राजवंशों की चित्रावली ने तो सोने को सुगन्धित कर देने का श्रेय लाभ किया है। राजपूत-नरेश चाहे प्राचीन शक, हूण, गुर्जर आदि विदेशी जङ्गलियों की औलाद हों अथवा भारत के प्राचीन आर्य क्षत्रियों के वंशधर हों, इससे कुछ बहस नहीं। उनकी उत्पत्ति, उनकी जाति, उनकी नस्ल आदि देखने की हमें ज़रूरत नहीं। हमें तो केवल यही देखना है कि राजपूताने के नरेन्द्रगण इस अङ्क में बताई हुई शासन-पद्धति का अनुसरण कर प्रजाहित-चिन्तन द्वारा "क्षतात् किल-त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः" महाकवि के इस वचन को कहाँ तक चरितार्थ करते हैं !!



पगली

[श्री० हर्षवर्धन नैथाणी, बी० एस-सी०]



ग कहते हैं कि वह पगली है। परन्तु वह किसी का कुछ नहीं बिगाड़ती। या तो सदा हँसती ही रहती है या रोती ही। हाँ, एक बात अवश्य है कि यदि ध्यान देकर देखा जाय तो साफ़ पता चल जाता है कि उसकी हँसी में प्रफुल्लता और आह्लाद नहीं रहता और न उसमें नैराश्य की ही प्रतिध्वनि गूँजती है। वह कहाँ रहती है, इसका किसी को पता नहीं। कभी उसका हास्य या रुदन-ध्वनि जङ्गल की ओर सुनाई देती है तो कभी नदी की तरफ़।

पगली अक्सर गाँव में भी आ जाया करती है। यहाँ बच्चे उसे 'पगली माई' 'पगली माई' कह कर दिक़ भी करते हैं, परन्तु वह हँसती ही रहती है। बालकों को खेलते देख कर उसके मुख पर प्रसन्नता की एक अजीब आभा झलकने लगती है। वह एकटक होकर कुछ भूले हुए-से नेत्रों द्वारा उन्हें देखती ही रहती है। जब तक बच्चे अपना खेल समाप्त कर चले नहीं जाते, वह भी निश्चल भाव से वहीं खड़ी रहती है। इसके बाद हृदय-विदारक चीत्कार कर जङ्गल की ओर दौड़ जाती है।

यही नहीं, पगली को कभी-कभी बड़ा भयङ्कर क्रोध भी आया हुआ-सा दीखता है। परन्तु होता है यह बहुत कम। जब वह इस अवस्था में होती है तो उसके बाल खुले हुए होते हैं। दाँतों को वह पीसती रहती है और मुट्ठियों को बाँधे रहती है। लाल-लाल नेत्रों से चिनगारियाँ-सी निकलती दीखती हैं। मुँह से कुछ बड़बड़ाती भी है, परन्तु उसका समझना कठिन है। उस समय ऐसा मालूम होता है, मानो समस्त संसार ही उसका शत्रु हो और उसको वह अपनी क्रोधाग्नि द्वारा भस्म कर देगी। उस समय किसी को उसके निकट जाने की हिम्मत नहीं होती। परन्तु हाँ, यदि कभी कोई शिशु ऐसी अवस्था में उसके निकट आ पड़ता है, तो न मालूम कैसे अचानक उसका वह क्रोध शान्त हो जाता है और वह भयावनी रुद्रता एक मृदुल परन्तु नैराश्यजनक हास्य में परिणत हो जाती है।

यह सब होते हुए भी कुछ लोगों का कहना था कि वह एक दार्शनिक है। वे लोग मानते थे कि जैसे कबीर साहब का उल्टा कुछ न कुछ अर्थ रखता ही है, वैसे ही पगली की वाणी भी निरर्थक नहीं है। एक दिन शाम की बात है। मन्दिर में पूजा हो रही थी। भक्त लोग आरती हो जाने के उपरान्त—'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'—गाने लगे। पगली भी आज वहाँ पहुँची हुई थी। त्वमेव माता—शब्द का सुनना था कि अचानक उसे क्रोध चढ़ आया। उसी में होकर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी—मा......ता। कौन तुम..... माता?

कैसे ? कैसे माता मा......ता । झू......ठ...झूठ...... झूठ ! हा ! हा !! हा !!! तुम......और यही बकती हुई जङ्गल की ओर चली गई ।

एक दूसरे दिन की बात है। गाँव में किसी विधवा स्त्री का इकलौता पुत्र मर गया था। लोग आ-आकर उसे सान्त्वना दे रहे थे। पगली भी कहीं से वहाँ आ पहुँची और चुपचाप एक किनारे खड़ी हो गई। सबने देखा कि उसके मुख पर भी शोक छाया हुआ था। उसकी मौनता और एकटक नेत्र एक पङ्गु और मूक की सी सहानुभूति प्रकट कर रहे थे। इसी बीच गाँव के पुरोहित आए और कहने लगे—"देखिए, शोक करना व्यर्थ है। संसार में कोई किसी का पुत्र नहीं। यह सब माया का जाल है।" इन शब्दों का सुनना था कि पगली ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी—"माया ? मा......या ? मा...... मा......या ? मैं......मा......या ? ये ......मा ...... या ? हा ! हा !! हा !! पगली के...मैं ये मा...माया ! हा हा हा !" इन शब्दों में क्रोध के साथ तिरस्कार भी भरा हुआ था। कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि वह पण्डित जी के उपदेश का उपहास-सा कर रही हो। और फिर हा-हा-हा करती हुई जङ्गल की ओर दौड़ गई। लोग सन्न हो गए और फिर उसके इन शब्दों के कई अर्थ निकाले जाने लगे। कोई कहता था—"अजी ! पगली है, जो चाहे सो बक दिया।" परन्तु एक वृद्ध सज्जन बोले—"नहीं-नहीं, पगली होते हुए भी वह समझ की बात कह जाया करती है। उसका मतलब था कि माता के प्रेम को माया कह कर क्यों तिरस्कार कर रहे हो।" इसी बीच तीसरे साहब बोल उठे—"अजी कहाँ की बातें कर रहे हो, रहने भी दो अपनी यह गीता !"

यह विषय अभी बन्द भी न हुआ था कि पगली फिर गाँव की ओर आती हुई दिखाई दी। इस समय वह अपने दोनों हाथों में कोई चीज़ थामे हुए थी। उसे लेकर वह सीधी दौड़ती हुई मन्दिर में चली गई और वहाँ जाकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। लोगों ने सोचा कि पगली है ही। कहीं मन्दिर में कुछ तोड़-फोड़ न मचाए। इसलिए कुछ सज्जन वहाँ जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने जो कुछ देखा उससे उनके रोंगटे खड़े हो गए। पगली मृत बालक के शव को क़ब्र से उखाड़ लाई थी। उसे उसने प्रभु-मूर्ति के चरणों में रख दिया था और ज़ोर-ज़ोर से प्रार्थना सी करती हुई चिल्ला रही थी। पहले उसने या तो लोगों की परवाह ही न की और या उसी का आना सबको मालूम न हुआ हो, परन्तु शीघ्र ही गाँव भर में ख़बर फैल गई कि पगली ने मन्दिर अपवित्र कर दिया और सब लोग वहाँ आने लगे। अब पगली चुप हो गई। उसे क्रोध चढ़ आया और कुछ बड़बड़ाती हुई वह जङ्गल को भाग गई।

कुछ दिनों तक लोगों ने पगली को कहीं न देखा। सबने यही समझ लिया कि वह अब नहीं आवेगी। परन्तु एक दिन की बात है, लोग आपस में बैठे हुए बातें कर रहे थे। विषय था ज़मींदार के छोटे भाई की हत्या करने के अपराध में सुमेरू पासी की सज़ा का। एक ने कहा—बेचारा सुमेरू निरपराध था। पहले तो पुलिस की अदावत के सबब से मुक़दमा बनाया गया है और फिर सुमेरू तो निरपराध था ही। इतने ही में एक सज्जन बोल पड़े—भाई न्याय के प्रतिकूल कहना पाप है। मुक़दमा हाईकोर्ट से फ़ैसल हुआ है। इतने ही में न मालूम पगली कहाँ से आ पड़ी और कहने लगी—न्याय ! हा...हा...हा . न्याय...हा...न्याय । निकट ही सुमेरू का ४ बरस का बच्चा गेसू भी बालकों के साथ खड़ा था। इस बेचारे की माता पहले ही मर चुकी थी, पिता कल ही फाँसी पर झूल गया था और संसार में कोई अपना न था।

पगली की निगाह अब उसी पर जा पड़ी और कहने लगी—"हा...हा...हा...मुन्ना-मुन्ना...न्याय...ये यह न्याय ! हा...हा...हा न्याय !" इसी समय आरती की घण्टी सुनाई दी। फिर बस, उसी ओर उँगली उठा कर कहने लगी—"हा...हा...हा...न्याय...कौन मैं...पगली हा...हा...हा . मैं पगली...हा...हा...हा... ।" न मालूम क्या कारण था कि दूसरे के दुःख को देख कर पगली का पागलपन कुछ उतर सा जाता था। इस समय भी वह इस असहाय बच्चे को देख कर मतलब के दो-एक शब्द बोल पड़ी—"मेरा भी बच्चा न्याय हा... हा...हा...मुन्ना था, हा...हा...हा...और फिर माया न्याय जगदीश !" कहती हुई जङ्गल की ओर दौड़ गई। लोगों ने उसे पकड़ना चाहा, पर सब व्यर्थ हुआ।

कुछ दिनों के बाद लोगों ने सुना कि पगली नदी के किनारे घूमा करती है। परन्तु साथ ही साथ यह भी

देखा गया कि अब उसकी विक्षिप्तता कुछ कम हो गई थी और बात भी यह ठीक थी। पगली अब उतना नहीं चिल्लाती थी और न बक-झक ही ज़्यादा मचाती थी। अब अक्सर जब वह गाँव में आती तो बालकों के सामने जङ्गल से तोड़ कर लाए हुए फल फेंक देती। वैसे तो वह सभी बच्चों को देख कर प्रसन्न रहती थी, पर गेसू को विशेष स्नेह से देखती थी। गेसू भी उसे ख़ूब चाहता था। दूर से ही उसे आते देख उसकी ओर हँसता हुआ दौड़ आता। गेसू को प्रसन्न-मुख लिए अपनी ओर उछलता-कूदता हुआ आता देख, उसकी रही-सही विक्षिप्तता भी ग़ायब हो जाती थी। यहाँ तक कि कभी-कभी वह उसे गोद में उठा कर और छाती से लगा कर चूम भी लिया करती थी।

एक दिन पगली आई तो उसने गेसू को चुपचाप रोते हुए पाया। वह समझ गई कि उच्च स्वर में वह इसलिए नहीं रो पाता है कि कहीं चाची न सुन ले। पगली हँसती हुई उससे बोली—रोता क्यों है, मुन्ना? और जङ्गल से लाए हुए सुन्दर-सुन्दर फल उसने उसे दे दिए।

गेसू ने कहा—पगली, मैं तुम्हाले ही छाथ लहूँगा।

पगली बोली—मेरे साथ कहाँ रहेगा मुन्ना, चाची के साथ रहो।

गेसू बोला—"वह तो माललती है, काने को नहीं देती। तुम नहीं ले तलोगी?" और यह कह कर और अधिक रोने लगा।

अब पगली से न रहा गया, उसने गेसू को उठा लिया और उसे चूमने लगी। इसी समय मन्दिर की घण्टी सुनाई दी। पगली खिलखिला कर हँस पड़ी। जगदीश! हः-हः-हः कहती हुई गेसू को लेकर जङ्गल को भाग गई।

गाँव में यह ख़बर तो फैली कि गेसू ग़ायब हो गया है, परन्तु किसी ने ज़्यादा खोज न की। बेचारे का था ही कौन? चाचा-चाची ने भी सोच लिया, चलो अच्छा हुआ, बला टली।

एक दिन दोपहर की बात है। पगली गाँव में आई। अब उसके मुख पर विक्षिप्तता का कोई चिह्न न था। चेहरे से कुछ शोक टपक रहा था। पैरों में घबड़ाहट के कारण कुछ लड़खड़ाहट-सी आ गई थी। बेचारी की अवस्था अत्यन्त ही शोकजनक दीखती थी। वह आई और सीधी पं० रामाधीन के मकान की ओर चली गई। वहाँ जाकर कातर स्वर में पण्डित जी को पुकारने लगी। पण्डित जी ने आकर उसकी ओर देखा ही था कि वह बोल पड़ी—"पण्डित जी, अब मैं पगली नहीं हूँ। मुन्ना बीमार है, बचा दीजिए।"

पण्डित जी कुछ देर चुप रह कर बोले—कौन मुन्ना पगली?

पगली ने कहा—"मेरा मुन्ना।" और उसकी आँखों में आँसू भर आए।

पण्डित जी ने पूछा—तेरा मुन्ना कहाँ है?

पगली ने रोते हुए उत्तर दिया—चलिए बता दूँ।

पं० रामाधीन गाँव के भले आदमियों में से थे। दर्शन-शास्त्र का भी उन्होंने कुछ अध्ययन किया था। वह पहले ही कहा करते थे कि पगली के जीवन में अवश्यमेव कोई रहस्य छिपा हुआ है। अपने पूर्व विचार को ठीक निकलते देख उन्हें जो प्रसन्नता होनी चाहिए थी, वह इस समय पगली के दुःख को देख कर न हुई। उन्होंने कहा—अच्छा पगली, चलो।

दोनों चलने लगे। गाँव की सीमा को पार कर पगली पण्डित जी को घनघोर जङ्गल में ले गई। कुछ दूर और चलने के बाद वे लोग विपिन की एक गुफा में जा पहुँचे। वहाँ उँगली से एक ओर इशारा करके पगली ने कहा—"पण्डित जी वह देखिए, वह मेरा मुन्ना है। बीमार पड़ा हुआ है।" पण्डित जी ने देखा कि उस छोटी-सी साफ़-सुथरी गुफा में एक जगह कुछ मुलायम घास बिछी हुई है। और उसी के ऊपर कुछ दिनों का खोया हुआ गेसू पड़ा कराह रहा है।

पण्डित जी पहले तो आश्चर्य में आए, परन्तु फिर बच्चे की हालत को देख कर बोले—"अच्छा पगली, मैं वैद्य जी को बुला लाता हूँ।" 'वैद्य' शब्द का सुनना था कि जैसे पगली को हज़ारों बिच्छुओं ने एक साथ ही डङ्क मार दिए हों। क्रोध और घृणा का भाव लाकर वह कहने लगी:—

"वैद्य और डॉक्टर, ये तो सब रुपए के लोभी होते हैं। हा, क्या मेरा मुन्ना संसार छोड़ कर मुझसे ऐसे विदा हो जाता, अगर इनमें ज़रा भी दया और कृपा का भाव

होता ? उन्हें मनुष्यता से क्या मतलब ? उनके तो जीवन का आदर्श ही धन है। मुझ ग़रीबिनी के पास धन ही नहीं। मेरी सहायता वह क्यों करने लगे ?"

पण्डित जी बोले—नहीं-नहीं पगली, ऐसा मत कहो। सब मनुष्य एक तरह के नहीं होते। जगदीश की सृष्टि में सब एक से नहीं हैं। धन की बढ़ती हुई नई चमक ने अभी सब को अन्धा नहीं कर पाया है।

परन्तु पगली इन बातों पर कुछ अधिक ध्यान न देकर कहने लगी—ईश्वर ! जगदीश !! किसे जगदीश पुकारते हो पण्डित जी ? उसे भी तो लक्ष्मी ही प्यारी है महाराज ! क्या पिता के होते हुए पुत्रों पर ऐसा अत्याचार हो सकता था ? मैं तो समझती थी कि आप इस धोखे में न होंगे।

पण्डित जी पगली की बातों का कुछ उत्तर न दे पाए। वे अच्छी तरह समझ गए कि अब यह शोकातुर प्राणी ईश्वर की पुड़िया पीकर अपने को न भूल पाएगा। इस पर कोई गहरी चोट पड़ी हुई है। परन्तु फिर भी कुछ सोच कर बोले—तो पगली बताओ, मैं क्या करूँ ? मन्दिर में प्रार्थना करना ही मेरा काम है।

पगली बोली—"हाँ, और आपसे हो ही क्या सकता है। मैं आपको इस बच्चे के लिए कुछ करने न लाई थी ? मैं तो यही दिखाने आई थी कि संसार से विरक्त हो गई हूँ। सब कुछ तज दिया है, फिर भी मुझे दुःख क्यों दिया जा रहा है ? क्या अब भी आप उसकी सत्ता को मानते हैं ? यह तो अच्छा हो ही जावेगा। परन्तु कहाँ गया आपका जगदीश, जिसकी सब को पूजा करनी चाहिए ? कहाँ गया वह न्याय जिसकी किसी को अवहेलना नहीं करनी चाहिए ? अभी-अभी गाँव का ज़मींदार कहीं से यहाँ आया था। अचानक इस कुटिया में मुझको और गेसू को देख कर बोला—"क्यों री पगली ! लड़कों को चुराती है ? मैं अभी पुलिस को बुलाए लाता हूँ। तूने मेरे दुश्मन के लड़के को पाला है। अच्छा ठहर...।"

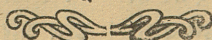
"पण्डित जी, मैं जानती हूँ कि कुछ ही समय में पुलिस यहाँ पहुँच जावेगी। हाँ, और न्याय के अनुसार लड़का चुराने के अपराध में मुझे क़ैद की सज़ा मिलेगी। अपराध तो किया केवल मैंने, परन्तु मेरे साथ-साथ गेसू को भी मुझसे छुड़ा कर कष्ट दिया जावेगा। अपने लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं। सदा से दुःखों के साथ खेलती आई हूँ। अपने सम्बन्ध में आपसे कुछ कहना चाहती हूँ, सुनिए :—

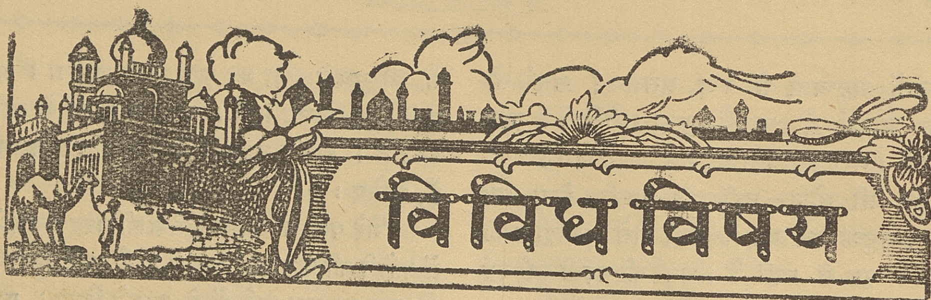
"मेरे पति पहले ही सुमेरु की तरह एक झूठे अपराध में फाँसी की सज़ा पा गए थे। मैं उन्हें छुड़ा न पाई। जो कुछ था सब वकीलों के हवाले किया। परन्तु उनके लिए वह काफ़ी न था। मुक़दमे में ढील दिखा दी। और हाय ! वे मुझे छोड़ कर सदा के लिए चल दिए। मैं इस कष्ट को किसी प्रकार सहन कर ही रही थी कि मेरा बच्चा, मेरा मुन्ना बीमार पड़ा। डॉक्टर बुलाने के लिए मेरे पास धन न था। हाँ, मैं मन्दिरों में गई, ग़रीबों का रक्षक कहाने वाले के सम्मुख हृदय खोल कर रोई। सब कुछ किया, परन्तु सुनता कौन था ? मेरा बच्चा धन की कमी के कारण मुझसे सदा के लिए विदा हो गया। पति के निरपराध होने के सुबूत मुझे अब मिले। न्याय, मैं तुम्हारी आँखें खोल सकती हूँ, परन्तु क्या तुम भी मेरे उस आँखों के तारे को मुझे दे सकते हो ?

"मैंने निश्चय कर लिया कि अब इस संसार से अलग रहूँगी, परन्तु माता का स्नेह, जिसे आप लोग माया और ममता कहते हैं, मुझे इस बच्चे की ओर खींच ले गया। इसे भी मैं अपना ही समझने लगी हूँ......।"

इसी समय बच्चे ने एक चीत्कार किया। पगली उठ कर उसके पास गई। थोड़ी देर तक चुप रही और फिर उसे छाती से लगा कर मुर्झाई हुई लता की भाँति भूमि पर लेट गई। बेचारी इस वज्रपात को न सह सकी। उसे नहीं मालूम था कि उसका प्यारा मुन्ना उसे इस प्रकार तज देगा। हृदय-विदारक दृश्य था। सदा दुःखों में ही पली हुई माता से भी बच्चे का विछोह न सहा जा सका। पण्डित जी अभी जगदीश के इस खेल के मर्म को समझ भी न पाए थे कि गाँव का ज़मींदार, दारोग़ा और पुलिस के सिपाहियों को लिए हुए आ धमका और कड़क कर बोला—कर लो गिरफ़्तार इस पगली को। यह क़ब्रों को खोदती है और लड़कों को चुराती है।

पुलिस के सिपाही हताश पड़ी हुई पगली के ऊपर झपटे ही थे कि देखते हैं, वह भी मूर्तिवत् हो गई है।





कलकत्ते की दलित-सुधार सोसाइटी

संसार में कोई भी सभ्य राष्ट्र ऐसा नहीं है, जो अपने अल्पसंख्यक अनुन्नत भाइयों को दलित या अपने से हीन न समझता हो। अमेरिका के श्वेताङ्ग अधिवासी आज भी वहाँ के आदिम-निवासियों—हबशियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, और सामान्य कारण-वश उनके ऊपर ऐसे राक्षसी अत्याचार करते हैं, जिन्हें देख-सुन कर निर्दयता भी काँप उठेगी। वर्जिनिया और केनिया के आदिम-निवासियों की भी वही दशा है। वहाँ भी अल्पसंख्यक तथा अनुन्नत समाज के व्यक्तियों पर नाना प्रकार के दिल दहलाने वाले अत्याचार होते हैं। भारत में भी काले और गोरे ईसाइयों के गिर्जे अलग-अलग हैं। मुसलमानों में भी शेख़ और सय्यद का भेद-भाव मौजूद है। सय्यदवंशीय अपने को सब मुसलमानों से प्रतिष्ठित और पूज्य समझते हैं।

परन्तु यह सब होते हुए भी अछूतपन की कलङ्क-कालिमा का जैसा गहरा दाग़ हिन्दुओं के ललाट पर लगा है, वैसा और किसी जाति के ललाट पर नहीं है। हमारे विधर्मी भाई हमारी इस कमज़ोरी से केवल लाभ ही नहीं उठाते, बल्कि अछूतों को हमसे अलग करके अपना उल्लू सीधा कर लेने की चेष्टा में हैं। साम्राज्य-वादी गोरे और भारत में मुस्लिम राज्य का स्वप्न देखने वाले हमारे कुछ मुसलमान भाई भी आज भारत के अछूतों की चिन्ता में दुबले हो रहे हैं। उन्हें 'आदि हिन्दू' की आख्या प्रदान कर, हमसे अलग कर देने की प्रबल चेष्टाएँ हो रही हैं। इसके लिए प्रचुर रुपए भी ख़र्च किए जा रहे हैं। वास्तव में इस धराधाम से हिन्दू जाति का अस्तित्व मिटा डालने के लिए ये तदवीरें हो रही हैं। मोहग्रस्त, रूढ़िवादिनी हिन्दू-जाति इन बातों को समझती है, देखती है, परन्तु अपनी दुर्बलता के कारण अछूतों को अपनाने की चेष्टा नहीं करती।

अभी हाल में ही बम्बई प्रान्त की कॉङ्ग्रेस कमिटी ने हिन्दुओं का ध्यान इधर आकर्षित किया है और प्रार्थना की है कि उच्च जाति के हिन्दू अपने निम्न श्रेणी के भाइयों को नौकर रक्खें और छुआछूत के भेद-भाव को मिटाने के लिए उन्हें अपने संसर्ग में रक्खें। उच्च जातियों के संसर्ग में आने से अछूत भी सफ़ाई और सभ्यता से रहना सीख सकेंगे और धीरे-धीरे अछूतपन का भेद-भाव भी तिरोहित हो जाएगा। निस्सन्देह यह युक्ति अच्छी है और हमें आशा है कि उच्च श्रेणी के हिन्दू बम्बई प्रान्त की कॉङ्ग्रेस कमिटी की इस समयोचित प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।

साथ ही हम 'चाँद' के पाठकों का ध्यान कलकत्ते की दलित-सुधार सोसाइटी की ओर भी आकर्षित करना चाहते हैं, क्योंकि सोसाइटी ने इस सम्बन्ध में सुन्दर और अनुकरणीय आदर्श हिन्दू-जनता के सामने रक्खा है। हम समझते हैं कि अगर सोसाइटी के आदर्शानुसार कार्य हो तो बड़ी जल्दी यह घोर कलङ्क हमारे सिर से मिट सकता है।

कलकत्ता बड़ा बाज़ार के मशहूर दानी श्री० घनश्यामदास जी बिड़ला, श्री० प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका, श्री० दुर्गाप्रसाद जी खेतान, श्री० पद्मराज जी जैन तथा श्री० बसन्तलाल जी मुरारका के दान, उद्योग और प्रयत्न से गत सन् १९२६ के जून मास में सोसाइटी की स्थापना हुई थी। सबसे पहले सोसाइटी ने अछूतों में शिक्षा-प्रचार का काम आरम्भ किया। कलकत्ता के आस-पास की अछूत बस्तियों में कई रात्रि और दिवस-पाठशालाएँ खोली गईं। जिनकी संख्या इस समय १९ है और उनमें प्रायः ७०० अछूत (मेहतर, चमार, डोम और दुसाध आदि) बालक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं

विद्या-शिक्षा के साथ ही उन्हें सफ़ाई और स्वास्थ्य की भी यथासम्भव शिक्षा दी जाती है। इसके सिवा सोसाइटी ने शिल्पकला और उद्योग-धन्धों के प्रचार-कार्य की ओर भी ध्यान दिया है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए कलकत्ता के १४० सरकार लेन में सोसाइटी की ओर से एक शिल्प-विद्यालय की भी स्थापना की गई है, जहाँ शिक्षार्थियों को सिलाई, मोज़े बुनना, टीन के खिलौने बनाना, छापेख़ाने का काम और बढ़ई का काम सिखाया जाता है। इस विद्यालय से अब तक २५० विद्यार्थी सिलाई का काम सीख कर निकले हैं, जो देश के विभिन्न स्थानों में दूकानें खोल कर स्वतन्त्र-रूप से जीविकार्जन कर रहे हैं।

सोसाइटी का प्रचार-विभाग सुयोग्य उपदेशकों द्वारा जन-समाज में सोसाइटी के उद्देश्यों का प्रचार करता है। मौखिक उपदेशों, व्याख्यानों और छाया-चित्रों के प्रदर्शन द्वारा अछूतों को मद्यपान तथा गोमांस-भक्षण आदि निन्दनीय कृत्यों से बचने और मायावी विधर्मियों के मायाजाल में न फँसने का उपदेश दिया जाता है। इस सम्बन्ध में सोसाइटी ने आशातीत सफलता भी प्राप्त की है। स्थायी प्रचार के लिए प्रत्येक बस्ती में पञ्चायतें क़ायम की गई हैं, जो बड़ी मुस्तैदी से अछूतों को जीवनोपयोगी शिक्षा प्रदान करती हैं।

शिल्पकला के प्रचार तथा गृहशिल्प की उन्नति के लिए सोसाइटी ने 'उद्योग-धन्धा' नाम के एक मासिक पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया है। इस सुन्दर और अत्यावश्यक मासिक पत्र में कृषि, शिल्प और वाणिज्य सम्बन्धी लेखादि छपा करते हैं। यदि सोसाइटी ने इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त की तो वह केवल अछूतों का ही नहीं, वरन् समस्त हिन्दू जाति का महान उपकार कर सकेगी।

इस सोसाइटी ने जो सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, वह है सहयोग समिति द्वारा आर्थिक सहायता-कार्य। इस समिति द्वारा अछूतों को बिना व्याज के ही रुपए उधार दिए जाते हैं, जिससे सूदख़ोर काबुली मुसलमानों से उनकी रक्षा होती है और उनके नाना प्रकार के अत्याचारों से परित्राण पाते हैं। इसके साथ ही सोसाइटी के सुयोग्य कार्यकर्त्ता अछूतों को लागत मूल्य में खाद्य-पदार्थ और कपड़े देने की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी विचार कर रहे हैं।

इस सोसाइटी के वर्त्तमान कार्यकर्त्ता और 'उद्योग-धन्धा' नामक मासिक पत्र के सञ्चालक श्री० भोलानाथ जी बर्मन एक सच्ची लगन वाले राष्ट्रीय सैनिक हैं। इस वीर सिपाही ने देश-सेवा की धुन में अपना लाखों रुपए का कारबार चौपट कर दिया है और देश-सेवा के पुरस्कार-स्वरूप एकाधिक बार जेल-यातना भी भोग चुके हैं। आप शिल्पकला के प्रेमी ही नहीं, स्वयं कई प्रकार की कलाओं के जानकार भी हैं। आपका जीवन त्यागमय है और आजकल तन-मन से दलितों के उद्धार-कार्य में लगे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि कलकत्ते के उत्साही और जाति-प्रेमी धनवानों की सहायता से आप इस सोसाइटी को तथा शिल्प-विद्यालय को एक आदर्श संस्था के रूप में परिणत कर डालेंगे।

अब देशवासियों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि जब तक अछूत जाति में विवेक, सम्मान और धर्म के भावों का उदय न होगा, तब तक हिन्दू-जाति भी पददलित और निर्बल बनी रहेगी। जब तक हम अपने त्याग और सेवा-भाव द्वारा अछूतों को न अपनाएँगे, तब तक स्वतन्त्रता या स्वराज्य हमारे लिए आकाश-कुसुमवत् ही रहेगा। अपने सात करोड़ भाइयों को पददलित और पराधीन रख कर हम कदापि स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि वे हमारी जाति के प्रधान अङ्ग हैं, हमारे बाहुबल हैं।

—नवजादिकलाल श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

हिन्दुओं के तीर्थ-स्थानों का भौगर्भिक महत्व

श्रीयुत पं० श्रीराम शर्मा ने "विशाल भारत" के किसी अङ्क में लिखा था कि पवित्र गङ्गा नदी पर हिन्दी में एक भी पुस्तक नहीं है। वास्तव में यह बात ठीक है। हम हिन्दू धार्मिक अन्ध-विश्वास के कारण तीर्थ-स्थानों को जाते अवश्य हैं, किन्तु हम

इस बात पर कभी विचार नहीं करते कि तीर्थ-स्थानों का महत्व क्या है, वे किस लिए बनाए गए हैं और किस तीर्थ-स्थान में क्या महत्व की वस्तु है। तीर्थ-स्थानों के महत्व और उद्देश्य को जानने का हम प्रयत्न नहीं करते और यही कारण है कि उनके सम्बन्ध में कोई वर्णनात्मक और परिचयात्मक सामग्री तैयार नहीं होती। प्रति वर्ष हज़ारों हिन्दू श्री बद्रीनाथ के दर्शनार्थ हिमालय पर्वत की यात्रा करते हैं, परन्तु हिन्दी में एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है, जिसमें उस यात्रा का भौगोलिक तथा भौगर्भिक वृत्तान्त चित्रों सहित दिया हो। हमारे पूर्वजों ने जो तीर्थ-स्थान हमारे लिए निर्माण किए हैं, वैसे स्थान कदाचित् ही किसी अन्य देश में पाए जाते हों। प्रत्येक स्थान कुछ न कुछ विशेषता और प्राकृतिक सौन्दर्य रखता है।

उत्तर में बद्रिकाश्रम को ही लीजिए। पर्वत-श्रेणियों के अध्ययन, हिम (बर्फ़) के अनुभव, गङ्गा जैसी विशाल नदियों की घाटियों का दृश्य तथा जड़ी-बूटी और जल-स्रोतों (Springs) का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हिमालय की यह यात्रा सब से उत्तम है। मनुष्य को प्रकृति की छटा देखनी हो, तो जीवन में एक बार यह यात्रा अवश्य करे। पश्चिम में द्वारकापुरी दूसरा तीर्थ-स्थान है। यहाँ पर अरब महासागर की भयावनी लहरों का दृश्य तथा सामुद्रिक टापू के जीवन का अनुभव प्राप्त होता है। साथ में छोटी सी जहाज़-यात्रा भी हो जाती है। इधर पूरब में जगन्नाथपुरी और दक्षिण में रामेश्वरम् समुद्र के अध्ययन तथा जल-वायु के लिए उत्तम स्थान हैं। केवल इन चारों धामों को ही यदि मनुष्य विधि-पूर्वक समाप्त कर ले, तो उसको भारत भर का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन समय में इन तीर्थों की यात्रा पैदल ही की जाती थी। पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि उस मनुष्य को, जो इतना भ्रमण कर चुका हो, किस विषय का ज्ञान न होता होगा !

परन्तु आजकल इसके विपरीत क्या होता है? पिछले तीन धामों की यात्रा करने के लिए हम लोग वापिसी टिकट कटाते हैं और रेल के एक डिब्बे में बैठ कर सीधे तीर्थ-स्थान ही में जाकर उतरते हैं। वहाँ पर पण्डे हमारे स्वागत के लिए तैयार होते ही हैं, और अक्सर सौ-पचास मील से ही पण्डा लोग हमारे साथ हो लेते हैं। बस, पण्डा जी महाराज के यहाँ हम ठहर जाते हैं और दो-तीन बार मन्दिर में मूर्त्ति के दर्शन (सो भी धक्कमधक्का भीड़ में) करके हम लोग उसी प्रकार रेल से वापिस घर आ जाते हैं। यह सब यात्रा केवल एक-दो सप्ताह में समाप्त हो जाती है। पाठक, ज़रा सोचिए, ऐसी यात्रा से हमको क्या लाभ हुआ? क्या हमारी मानसिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति हुई? वस्त्र-आभूषणों से लदी हुई देवता की मूर्त्ति के केवल दर्शन-मात्र के लिए हमारे निर्धन भाई चालीस-पचास रुपयों की चपत खाते हैं। यदि हमारी तीर्थ-यात्रा का केवल यही अभिप्राय है, तो आजकल फ़ोटोग्राफ़ी के युग में देवताओं की मूर्त्तियों के बढ़िया फ़ोटो खींचे जा सकते हैं, जिनको ख़रीद कर हम अधिक एकाग्रचित्त होकर घर पर ही पूजन कर सकते हैं और साथ में धन का अपव्यय भी रोक सकते हैं। परन्तु सच पूछिए तो जिन महापुरुषों ने इन तीर्थ-स्थानों को नियत किया था, उनका अभिप्राय ही कुछ और था। मैं जब-जब भारतवर्ष का भौगर्भिक इतिहास तथा यहाँ की शिलाओं और खनिज पदार्थों का वृत्तान्त अङ्गरेज़ी भाषा में पढ़ता हूँ, तब-तब मुझे अपने पूर्वजों की तीक्ष्ण बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य होता है। उन्होंने हमारी ज्ञान-वृद्धि करने के लिए कैसा सुगम उपाय सोच निकाला था।

हिन्दुओं के तीर्थ-स्थान भौगर्भिक दृष्टि से भी बड़े मार्के के हैं। उदाहरण के लिए मैं केवल थोड़े से ही स्थानों का दिग्दर्शन पाठकों को कराऊँगा। बद्रिकाश्रम हिमालय पर्वत के बीच में वर्तमान है। आधुनिक भूगर्भ-वेत्ता यह मानते हैं कि प्राचीन समय से आधुनिक युग तक के समुद्रीय जीवों के विकास का पूरा इतिहास हिमालय पर्वत की शिलाओं में उन जीवों की फ़ॉज़िल्स (Fossils) द्वारा जाना जा सकता है। कारण, हिमालय पर्वत की आयु भौगर्भिक समय के अनुसार थोड़ी ही है और इसके स्थान पर एक समुद्र प्राचीन काल से ही वर्तमान था, जो हिमालय के उठने से ही हट गया। हिमालय पर्वत की भिन्न-भिन्न समय की शिलाएँ उसी समुद्र में कणों के एकत्रित होने से बनी हैं। तात्पर्य यह कि हिमालय पर्वत भूगर्भशास्त्र के विद्यार्थी के लिए भूगर्भ का एक बड़ा अजायबघर (Museum) है।

जूनागढ़ राज्य (काठियावाड़) में गिरनार पर्वत और पालीताना रियासत (गुजरात) में पावागढ़ पर्वत जैनियों और हिन्दुओं के पवित्र स्थान हैं। इन दोनों पर्वतों के शिखरों पर सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं, जिनको देखने प्रतिवर्ष हज़ारों मनुष्य जाते हैं। इन दोनों तीर्थों की भौगर्भिक महत्ता के विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन दोनों स्थानों की शिलाओं के अध्ययन करने पर दो भारतीय विद्यार्थियों को लन्दन-विश्वविद्यालय की डॉक्टर की डिग्री प्राप्त हो चुकी है। फिर भी अभी इन दोनों स्थानों पर बहुत-कुछ अनुसन्धान किया जा सकता है। एक और जैनियों का तीर्थ-स्थान आबू पर्वत है, जहाँ पर "दिलवारे" का मन्दिर भारतीय कला का एक अद्वितीय नमूना है। इस मन्दिर की बड़े-बड़े पश्चिमीय विद्वानों ने प्रशंसा की है। यहाँ की सुन्दरता और जलवायु से मुग्ध होकर ही अजमेर-मेरवाड़ा की सरकार ने कुछ सालाना कर देने की शर्त पर इस स्थान को सिरोही राज्य से ले लिया है। इस पर्वत का शिखर ग्रेनाइट (Granite) नामक आग्नेय शिला का बना हुआ है। भौगर्भिक अनुसन्धानों से विदित हुआ है कि इसी प्रकार का और उसी समय में बना हुआ पत्थर राजपूताने के प्रायः अनेक स्थानों पर मिलता है।

खोज की दृष्टि से भी कुछ स्थान बड़े प्रसिद्ध हैं। लेखक को ऐसे ही एक स्थान का भौगर्भिक अनुसन्धान करने का अवसर प्राप्त हुआ था। दान्ता राज्य (उत्तरी गुजरात) में हिन्दुओं का प्रसिद्ध अम्बाजी का मन्दिर है, जो आबू रोड स्टेशन से क़रीब १४ मील की दूरी पर है। यहाँ पर लाखों यात्री प्रतिवर्ष आते हैं। इस मन्दिर के पास ही एक और मन्दिर पजावों (ईंटों की भट्ठी) में से निकले हुए कङ्कड़ों की ज़मीन पर बना हुआ है। कदाचित् ही किसी यात्री ने यह अनुसन्धान किया हो कि इस प्रकार के कङ्कड़ कहाँ से आए। अम्बाजी के मन्दिर की बग़ल में ही एक मील लम्बी एक छोटी सी पहाड़ी है, जिस पर कई गहरे गड्ढे खुदे हुए हैं। इस पहाड़ी के पत्थरों का निरीक्षण करने से विदित हुआ कि इस पहाड़ी के अन्दर ताँबे की खान छिपी हुई है और पुराने समय में आर्यों ने इस पदार्थ को निकाल कर और भट्ठियों में शोध कर ताँबा निकाला था। कङ्कड़ों का समूह उन भट्ठियों में से फेंका हुआ मैल (Slag) है। यह अनुमान किया जाता है कि इस स्थान पर ताँबा लगभग ७०० वर्ष पूर्व निकाला गया था। ताँबे की खान के अतिरिक्त उत्तम श्रेणी का सङ्ग-मरमर भी इस स्थान के निकट ही पाया जाता है।

एक और स्थान ज्वालामुखी (काङ्गड़ा) को लीजिए। ज्वालाजी की देवी के दर्शनार्थ लाखों मनुष्य नवरात्रि में पश्चिमीय यू० पी० और पञ्जाब से जाते हैं। कदाचित् हज़ार में से केवल एक-दो ही को यह पता होगा कि देवी के मन्दिर में चारों तरफ़ उसी प्रकार के और उसी समय के पत्थर हैं, जिनमें से आसाम प्रान्त तथा ब्रह्म देश में मिट्टी का तेल निकाला जाता है। शायद यहीं के पत्थरों से मिलान करके भूगर्भ-शास्त्रज्ञों ने अटक (पञ्जाब) में तेल ढूँढ़ ही तो निकाला। वहाँ पर अटक ऑयल कम्पनी आजकल अनेक गैलन प्रति दिन तेल निकाल कर काफ़ी लाभ प्राप्त कर रही है।

पञ्जाब में "सॉल्ट रेञ्ज" (Salt Range) नामक पहाड़ पर "कटास राज" एक तीर्थ-स्थान है। अजमेर के पुष्कर राज्य की तरह यह पञ्जाबी हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ है। यहाँ के यात्रियों को विदित ही होगा कि इसी स्थान के पास खेउड़ा में नमक की एक प्रसिद्ध सरकारी खान है। प्रायः भारत का सब "लाहौरी" नमक इसी खान में से आता है।

इसी प्रकार अनेक स्थानों के उदाहरण दिए जा सकते हैं। परन्तु मेरा उद्देश्य इस लेख द्वारा जनता को अपने पवित्र माने जाने वाले स्थानों की केवल महत्ता दिखलाने का है। अस्तु।

प्राकृतिक सौन्दर्य का भौगोलिक और भौगर्भिक शास्त्रों से बहुत-कुछ सम्बन्ध है। अभाग्यवश हम लोगों को इन दोनों विषयों से ही अरुचि है। यही कारण है कि प्रतिवर्ष लाखों हिन्दू तीर्थ-यात्रा करते हैं, किन्तु यदि उनसे प्रश्न किया जाय कि देव-मूर्तियों के अतिरिक्त वहाँ और क्या देखा, तो वे कोई उत्तर नहीं दे सकते। दें भी क्या, वे तो इन दृष्टियों से वहाँ जाते ही नहीं। पश्चिमीय लोग हमसे कहीं अधिक प्रकृति के उपासक हैं। हज़ारों अमेरिका-निवासी प्रति वर्ष पृथ्वी की प्रदक्षिणा को निकलते हैं। परन्तु यह मानी हुई बात है कि पहले वे अपने देश को तो अवश्य ही देख चुकते होंगे। इधर

उनकी नक़ल करके हमारे भी कोई-कोई नवयुवक साइकिलों पर संसार की सैर करने कभी-कभी निकल पड़ते हैं। क्या ही अच्छा हो कि संसार की सैर की इच्छा करने से पहले वे भारतवर्ष के तीर्थ-स्थानों का ही एक चक्कर कर लें। ऐसा करने से उनको शारीरिक, मानसिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और सामाजिक तथा अनेक वैज्ञानिक बातों का ज्ञान प्राप्त होगा।

—निरञ्जनलाल शर्मा, एम० एस्-सी०

❀ ❀ ❀

शिखा-सूत्र का प्रश्न

गत सितम्बर मास के 'चाँद' में 'क्या शिखा सूत्र वैदिक है?' शीर्षक एक लेख महाशय बी० भास्कर ने लिखा है। उस पर सम्पादक जी की टिप्पणी ने मेरी लेखनी को भी लोभी बना डाला। अतः थोड़े से शब्द विचार-विनिमय के उद्देश्य से मैं भी लिखता हूँ।

'क्या शिखा-सूत्र वैदिक है?' इस प्रश्न में से एक ऐसी वस्तु निकलती है, जिससे आज समस्त भारतवर्ष घोर अन्धकार में निमग्न है। वह वस्तु है वेदों का प्रमाण। इस प्रश्न का अर्थ ही यह है कि वेद प्रामाणिक पुस्तक हैं। धर्म के लिए अनादि-काल से वही केन्द्र रहा है और रहेगा। धर्म का स्रोत वहाँ से ही बहता है। अतः यदि शिखा-सूत्र वैदिक वस्तु है, तो वह अवश्य ही ग्राह्य है। परन्तु यह भावना अत्यन्त भयङ्कर है। अमुक वस्तु अमुक पुस्तक में है, अतः उसे मान लेना चाहिए, इसी नियम ने भारत में उस रात्रि का जन्म दिया है, जिसके प्रभात की शताब्दियों के पश्चात् आशा की जा सकती है। वेदों में लिखा है, अतएव अमुक वस्तु समाज में मान ली गई है, तब दुर्गा सप्तशती और शाक्तागम भी ग्रन्थ हैं, उनके लिखे को भी क्यों न मान लिया जाय? इसी विचार में से पशुबध निकला, जो आज तक मिथिला और बङ्गाल में उच्च कही जाने वाली ब्राह्मण जाति के घर में भी पशुबलि बिना सङ्कोच के होता रहता है। इसलिए किसी प्रामाणिकता का निश्चय निकषोपल कसौटी से होना चाहिए। भले ही शिखा-सूत्र वैदिक सिद्ध हो जाय, 'तो भी वह ग्राह्य है या नहीं' यह प्रश्न तो हिन्दू-जगत में जीवित रहेगा ही। अतः शिखा-सूत्र वैदिक है या नहीं, इस प्रश्न के बदले यदि यह प्रश्न किया गया होता कि शिखा-सूत्र आवश्यक है या नहीं, तो अधिक महत्व की झाँकी इस प्रश्न में हो सकती थी। अस्तु।

हिन्दुओं में जितने भी संस्कार हैं, वे क्रमिक विकास के उदाहरण हैं। सूत्र तो एक प्रधान संस्कार माना ही गया है, परन्तु शिखा का सम्बन्ध भी संस्कारों के ही साथ है। ब्रह्मकुमार जब यज्ञोपवीती हो जाता है, तो उसे एक सांस्कारिक नवीन शिखा दी जाने के लिए प्रथम शिखा का छेदन कर दिया जाता है। उसी नवीन शिखा को ही वह कुमार 'भूर्भुवः स्वः तत्सवितुः' पढ़ कर बाँधता रहता है। शिखा और सूत्र दोनों ही संस्कार हैं। एक यदि संस्कार है और दूसरा उसका प्रधान अङ्ग है, तो भी यह तो सिद्ध ही है कि उन दोनों की कक्षा समान है, देश समान है, काल समान है। वैदिक शब्द से यदि यह अभिप्रेत हो कि वेद-मन्त्रों से विहित, तो यह स्पष्ट उत्तर है कि कोई भी संस्कार वेद-विहित नहीं है। और न वेदों की इतनी आवश्यकता ही थी कि वह साङ्गोपाङ्ग समस्त भूत, भविष्य और वर्तमान की रूढ़ियों को एकत्रित जकड़ देते। वेदों के समय के ऋषि और मुनि जितना स्वयं करते थे अथवा उस काल की बुद्धि के अनुकूल उन्हें जितना रुचता था, उसी का संग्रह मात्र वेद है। यह दूसरी बात है कि ऋगादि संहिताएँ कुछ पूर्व में रची गई हैं और ब्राह्मण, आरण्यक आदि उसके पश्चात् काल में अस्तित्व में आए हैं। परन्तु सभी वैदिक ग्रन्थ सर्वांश में नहीं, तो अधिकांश में निरर्थक और निकम्मी वस्तु हैं। आज हम भले ही देश-काल के अनुसार वेदों का अर्थ बदलते रहें, परन्तु वेद-काल के ऋषियों ने वेदों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा और विचारा है, वही वेदों का मुख्य अर्थ है। वेद ऋषियों का है, ऋषियों के समय का है, अतएव उन ऋषियों का आचार-विचार ही उनके वेदों की व्याख्या है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की व्याख्या ही है। उन ग्रन्थों को खोल कर बैठने के बाद तो यही मालूम होता है कि यवनप्राय किसी विशाल नगर के बूचरख़ाने में मैं बैठा हूँ, जहाँ गोबध, अश्वबध, अजाबध, योनि, भग आदि के अतिरिक्त कुछ दीख ही नहीं पड़ता। उस काल में भारत की

इतनी ही वृद्धि थी और शुद्ध ऋषियों ने इतना ही लिखा था। उस समय उन्हें शिखा की आवश्यकता थी, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि ब्राह्मणों में कितने ही स्थलों पर वेदी आदि के निर्माणावसर पर शिखा का अभिधान आता है। वेदी की भी शिखा मानी जाती है। कुश की भी शिखा मानी जाती है। अग्नि की भी शिखा मानी जाती है और इसी में से शरीर के सब से ऊर्ध्व भाग मस्तक के मध्य में शिखा का भी जन्म हुआ है। 'शिखायै वषट्' का उच्चारण बहुत नवीन नहीं है।

× × ×

यज्ञोपवीत बहुत प्राचीन नहीं है। यह एक आधुनिक कल्पना है। रामायण-काल में भी यज्ञोपवीत का प्राधान्य प्रतीत नहीं होता है। यज्ञोपवीत आज जितना विशिष्ट माना जाता है, उतना ही वेद-काल में माने जाने का शायद कोई प्रमाण अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है। मैं तो समझता हूँ कि बकरों और गायों के बध के समय रस्सियों की आवश्यकता हुआ करती थी। उन रस्सियों को ऋषि लोग कन्धे पर और बाएँ ही कन्धे पर रखते होंगे, क्योंकि दाहिने हाथ से उसे लेने और पशु के बाँधने में अतीव सुगमता होती है। वही रस्सी यज्ञ-काल समाप्त होने के बाद यज्ञोपवीत नाम से प्रख्यात हुई। जैसे पशुओं के मारते समय और मारने के पश्चात् भी ऋषि प्रार्थना करते हैं कि हे पशो! तेरे अवयव पुष्ट हों, तू स्वर्ग में जा और तू अमर हो गया, इत्यादि, वैसे ही पशु-बध की सामग्रीभूत इस रज्जु की भी प्रार्थना 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं' मन्त्र में की गई है। 'आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः' इन सब शब्दों से ऋषि लोग उस रस्सी की प्रार्थना करते होंगे। रस्सी की प्रार्थना की असम्भावना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि छुरे की प्रार्थना तो वैदिक ग्रन्थों में कई स्थलों पर उपलब्ध होती ही है।

इन सब बातों को छोड़ कर इनकी आवश्यकता पर विचार करना चाहिए। शिखा की वेद-काल में यदि आवश्यकता रही हो, तो वह केवल याज्ञिक आडम्बर निभाने के लिए ही। परन्तु आज उसकी आवश्यकता है भी और नहीं भी। शिखा एक प्रकार की नहीं है, उसके अनेक प्रकार हैं। आज वह श्रृङ्गार की सामग्री है। दाक्षिणात्य लोग तो शिखा ही पर अपने शिर की शोभा को अवलम्बित मानते हुए देखे जाते हैं। चोटी-धारी सम्प्रदाय के कितने ही शौक़ीन बाबाजी सफ़ाचट्ट होने के बदले आधे माथे तक शिखा ही रख कर सीमन्तोन्नयन का शौक़ पूरा कर लेते हैं। अतः इन बेचारों की शौक़-सामग्री पर प्रहार करना अच्छा नहीं है। बङ्गाल, मिथिला, दक्षिण आदि देशों के ब्राह्मणों की यदि शिखा माँग ली जावे, तो वे बेचारे नारियल जैसा खुला शिर लिए घूमने में व्याकुल होंगे। बङ्गालादि के अब्राह्मण यद्यपि बिना शिखा के ही रहते हैं, परन्तु उनके शिर पर बाल होते हैं। आगे सुन्दर ज़ुल्फ़ होती है, बीच में क्यारियाँ बनी रहती हैं और उन्हें गुलाब और चमेली के तेल से सींचा जाता है। बेचारे ब्राह्मणों को यह सब कहाँ से प्राप्त होगा? भद्र रहना—घोटम-घोट करा कर बाल का निशान भी न रहने देना, ऐसी शास्त्र की आज्ञा देवी क्रूर कृपाण लिए उनके सामने खड़ी ही रहती है। तथा जब तक मुसलमान शिखा न रखने लग जावें, तब तक हिन्दुओं की शिखा क्यों जाने दी जावे? साम्प्रदायिक भेद, जातीयता का भेद, तो रहेगा ही। केवल हिन्दू ही इस भेद को हटा दें और अन्य जातियाँ भेदों को दृढ़ करती जावें, यह कैसे सहन किया जा सकता है? संसार में जब उदारता बढ़ने लगेगी और कुछ मुसलमान शिखा रखाने लग जावेंगे तथा कुछ हिन्दू-ब्राह्मणादि कटाने लग जावेंगे, तो धीरे-धीरे कुछ दिनों में या तो शिखा सबके शिर पर ही दीख पड़ेगी अथवा सबके शिर दरियाई नारियल बन जावेंगे। उस दिन शिखाजन्य भेद तो अवश्य निर्मूल हो जावेगा।

रह गई बात यज्ञोपवीत की, वह भी कोई बड़ी भारी बात नहीं है। ब्राह्मण यदि इसे छोड़ दें तो अच्छा हो और नहीं तो जैसे गत तीसरे वर्ष बम्बई के ३०० अन्त्यजों ने यज्ञोपवीत श्रावणी के दिन धारण किया था, ऐसे ही सब लोग, सब जाति धारण कर लें। सब भेद अपने आप मिट जावेंगे। वस्तुतः बात तो यह है कि शिखा-सूत्र ही भेद का जनक नहीं है। शिखा-सूत्र-विहीन संन्यासी भी तो आज 'अयम् अस्पृश्यः' कहते दीख पड़ते हैं। अतः शिखा-सूत्र के वितण्डा में न पड़ कर संसार के हृदयों में उदारता और दयालुता का भाव भर देना चाहिए। इसके बिना यज्ञोपवीतादि के समूल नष्ट होने पर भी घृणा का अङ्कुर अवशिष्ट रह ही जावेगा।

वैदिक और अवैदिक का प्रश्न सदा के लिए लुप्त कर देना भी एकता और उदारता के लिए आवश्यक है। जब तक वेद, पुराण, स्मृति और गृह्य-सूत्र संसार में रहेंगे, तब तक अज्ञान का केन्द्र बना ही रहेगा और उसमें से घृणा, क्रोध, राग और द्वेष उत्पन्न होते ही रहेंगे।

रूढ़ियाँ जितनी भी बनती हैं, उनमें कुछ न कुछ आडम्बर अवश्य होता है। हवन करने वाले कुण्ड बनाते हैं। इतने अङ्गुल लम्बा, इतने अङ्गुल चौड़ा और इतने अङ्गुल गहरा कुण्ड होना चाहिए। यह भी एक रूढ़ि है और केवल आडम्बरपूर्ण है। कुण्ड चाहे जैसा भी बनाया जा सकता है। वेदी चाहे जैसी बनाई जा सकती है। बिना मन्त्र के भी हवन किया जा सकता है। आहुति के लिए मन्त्र क्यों पढ़े जाते हैं, इस प्रश्न के उत्तर में दिए जाने वाले सब तर्क उसी आडम्बर के पोषक हैं। सबका तात्पर्य तो यही है कि अज्ञानी प्रजा देखे कि अमुक कर्म का विधान बहुत टेढ़ा है, इतनी बार आचमन है, इतनी बार मार्जन है, अमुक आहुति के लिए अमुक मन्त्र ही बोलना, अमुक मन्त्र अमुक ही बोल सकता है, इस रीति से उसमें अनेक विधि हैं, अतएव यह कोई लोकोत्तर फलदायक कृत्य है, इसे हम भी करें। बस इसके अतिरिक्त इन बातों में कुछ नहीं है। मूर्ख प्रजा रूढ़ियों की ग़ुलाम रहा ही करती है। यज्ञोपवीत की ग़ुलामी भी तब तक नहीं छूट सकती, जब तक कि इसके धारण करने वाले पूर्ण विद्वान् और पूर्ण सदाचारी नहीं हो जाते। पूर्णता के सामने रूढ़ि निर्बल हो जाती है। जिस दिन यह रूढ़ि चली होगी, उस दिन प्रजा में विषवाद अवश्य रहा होगा, परस्पर घातक बुद्धि अवश्य रही होगी। किसी ने सूत पहिन लिया, किसी ने मूँज या सन पहिन लिया और किसी ने सोना पहिन लिया। उस समय त्रैवर्णिक चिह्न तो अवश्य ही यह रहा होगा। तब अन्दर क्यों पहिनते हैं, बाहर क्यों नहीं पहिनते? यह प्रश्न अकिञ्चित्कर है। पहले लोग पहिनते ही क्या थे कि भीतर-बाहर का प्रश्न उठ सके? नग्न शरीर रहते थे। दाक्षिणात्य अब भी उदाहरण-रूप वर्तमान हैं तथा यू० पी० के ब्राह्मण अब भी मिर्जई के बाहर थोड़ा जनेऊ निकाल लेते हैं।

—बी० आचार्य

❀ ❀ ❀

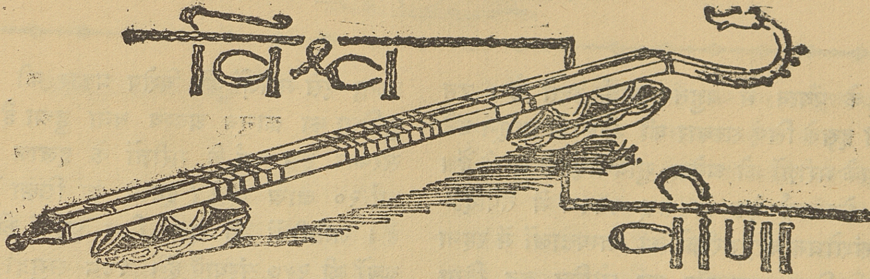
स्त्री-जाति का घोर अपमान

आजकल संसार का समस्त सभ्य-समाज स्त्री-समाज को समानता के अधिकार देने का विचार कर रहा है। परन्तु यह कब और किस रूप में होगा, सो अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। स्त्री-समाज को समानाधिकार देने की बात तो अभी छोड़िए, पहले उन पर किए जाने वाले अत्याचारों और अन्यायों को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। भारतवर्ष आज वेश्याओं के होने से कलङ्कित हो रहा है। इस कलङ्क को अति शीघ्र दूर करना भारतीय नेताओं का मुख्य कर्तव्य है। परन्तु इस समय मैं आज आपका ध्यान एक अत्याचार की ओर आकर्षित करना चाहती हूँ, जो पुरुष-समाज की ओर से स्त्री-समाज पर हो रहा है।

परमेश्वर की ओर से बालक सदा नङ्गे ही उत्पन्न होते हैं और वे उस समय तक नङ्गे रहते हैं, जब तक सज्ञान नहीं होते। सज्ञान पुरुष-स्त्रियों का नङ्गा रहना उनकी असभ्यता का द्योतक होता है। परन्तु देखने में आता है कि पुरुष अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके अनेक प्रकार से स्त्रियों का नग्न-प्रदर्शन करते हैं। पुस्तकों में, अख़बारों में स्त्रियों के नग्न चित्र छाप कर उनका अपमान किया जाता है। सिनेमाओं में नङ्गे चित्र दिखलाए जाते हैं। लोग अपने कमरे, बैठकों, दुकानों में नङ्गे चित्र टाँगते हैं। यह हमारे महिला-समाज का घोर अपमान है।

इस नग्न चित्र-प्रदर्शन से दर्शकों के भाव कलुषित होकर व्यभिचार का बढ़ना स्वतः सिद्ध है। ब्रह्मचर्य की रक्षा मनुष्य और समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है। परन्तु नग्न चित्र किसी प्रकार भी ब्रह्मचर्य के रक्षक नहीं कहे जा सकते। यदि कोई कहे कि भगवान का रचना-सौन्दर्य प्रदर्शित करने के लिए चित्र बनाए जाते हैं, तो हम कहेंगी कि क्या पुरुषों के शरीरों में भगवान की रचना का सौन्दर्य नहीं है? और पुरुषों के नग्न चित्र क्यों नहीं बनाए जाते? इसलिए पुरुषों का अपने चित्र न बना कर स्त्रियों के ही नङ्गे चित्र प्रदर्शित

(शेष मैटर ३६४ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)



जापान के जेल

जज मसाटारो नियाके ने 'एशियाटिक रिव्यू' में लिखा है :—

जापान में जेलों के लिए पहले 'काङ्गोइ' शब्द का प्रयोग होता था, परन्तु अब उन्हें राज्य की ओर से "केईमूशो" कहा जाता है, जिसका अर्थ है, "वह संस्था, जहाँ दण्ड देने की व्यवस्था हो।"

जापान में ५६ मुख्य जेल और ४६ शाखा जेल हैं। इनके अतिरिक्त ६१ छोटे जेल हैं, जिनका सम्बन्ध अदालतों से है और जहाँ विचाराधीन क़ैदी रक्खे जाते हैं। इन जेलों के अतिरिक्त बालकों के लिए दो सुधार-गृह (Reformatories) भी हैं।

प्रथम बार के क़ैदियों को बिल्कुल अलग रक्खा जाता है, और लम्बी क़ैद वालों को अलग। कुछ जेल ऐसे हैं, जहाँ खेती और खनिज-शास्त्र की शिक्षा देने का विशेष प्रबन्ध है। ऐसे क़ैदी, जिनके व्यक्तित्व का दूषित प्रभाव अन्य क़ैदियों पर पड़ने की सम्भावना होती है, बिल्कुल अलग रक्खे जाते हैं।

जेल के अधिकारियों में गवर्नर, सहकारी गवर्नर, डॉक्टर, पुजारी, जमादार आदि होते हैं। गवर्नर का वेतन १,१०० येन से ४,२०० येन प्रति वर्ष होता है। पुजारी सभी बौद्ध हैं। जमादार का मासिक वेतन ४५ येन होता है।

पहले ६ महीने प्रत्येक क़ैदी अलग कमरे में रक्खा जाता है, ताकि वह अपने कृत्यों पर विचार करके पश्चात्ताप कर सके। इसमें स्थान १८ क्यूबिक मीटर होना आवश्यक है। अन्य क़ैदियों के लिए बैरक होती हैं, जिनमें ८ से १२ तक क़ैदी रहते हैं। हर एक बैरक में एक शौचालय, एक भोजन-भवन, भोजन के पात्र, मञ्जन, दाँतों के ब्रश, साबुन, तौलियाँ, डैस्क, जेल का समाचार-पत्र, धार्मिक पुस्तकें तथा जेल-पुस्तकालय का सूचीपत्र आदि होते हैं। जो क़ैदी अच्छा व्यवहार करते हैं, उन्हें टाँगने को तस्वीरें और फूलों के गमले मिल जाते हैं।

छुट्टियों के दिन धार्मिक उपदेश दिया जाता है। कभी-कभी बाहर से भी प्रसिद्ध वक्ता व्याख्यान देने के लिए बुलाए जाते हैं और शिक्षा सम्बन्धी फ़िल्म भी दिखाए जाते हैं। अधिकारियों का व्यवहार भी अच्छा होता है। भोजन के लिए जौ, चावल, हरी तरकारियाँ और कभी-कभी मांस-मछली दिए जाते हैं। कपड़े जाड़े, गर्मी और बसन्त ऋतु में भिन्न-भिन्न प्रकार के दिए जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के कपड़े, तकिया और मच्छरदानी प्रत्येक क़ैदी को दी जाती है। जो क़ैदी अशिक्षित होते हैं, उनकी शिक्षा का प्रबन्ध भी किया जाता है।

क़ैदियों को जो काम दिया जाता है, वह इस भावना से नहीं कि उनसे बदला लिया जा रहा है, बल्कि उनको मानसिक और शारीरिक शिक्षा देने के लिए। इस काम के बदले में उन्हें १ से १० येन तक मासिक दिए जाते हैं। इस प्रकार जेल से छूटने पर क़ैदी के पास इतना पैसा हो जाता है कि वह कोई छोटा-मोटा व्यापार कर सके।

❀ ❀ ❀

तपेदिक़ से बचने के उपाय

तपेदिक़ कितना घातक और भयङ्कर रोग है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। यही एक ऐसा रोग है, जो अपनी अन्तिम अवस्था में ला-इलाज समझा जाता है। वैज्ञानिक और चिकित्सा-शास्त्र के विशेषज्ञ इस रोग की अचूक औषधि खोजने में अब तक समर्थ नहीं हुए हैं। यूरोप में इस सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान हुआ है और वहाँ के प्रत्येक राष्ट्र इसे

नष्ट करने के प्रयत्न में बहुत सतर्क रहते हैं। उन देशों में तो इसके लिए सरकार की ओर से क़ानून बने हैं और इसके मरीज़ों को अनेक सुविधाएँ दी जाती हैं। यूरोप के डेनमार्क देश में सन् १९१८ में तपेदिक़-क़ानून में संशोधन कर, मरीज़ों को अस्पतालों में रहना अनिवार्य कर दिया गया और यह घोषित कर दिया गया कि तपेदिक़ के रोगी घरों में न रहने पाएँ। इङ्गलैण्ड में यद्यपि यह नियम नहीं है कि इस मर्ज़ के मरीज़ अस्पतालों ही में अनिवार्य रूप से रहें, किन्तु मरीज़ों के इलाज के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएँ वहाँ हैं। १९२३ में इङ्गलैण्ड में तपेदिक़ के ४४२ अस्पताल और १९० सैनिटोरियम थे, जिनमें ग़रीब रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की जाती थी। फ्रान्स में भी मरीज़ों को अस्पताल ही में रखने का क़ानून नहीं है, किन्तु ऐसे मरीज़ों की विशेष प्रकार की चिकित्सा की सुविधा का क़ानून अवश्य बना हुआ है। इटली की सरकार इस मर्ज़ के मरीज़ों के इलाज के लिए प्रति वर्ष २० लाख लीरे (इटली का सिक्का) ख़र्च करती है। जर्मनी में भी इसके लिए पुरुषों की १९० और बच्चों की २१७ संस्थाएँ हैं। १४८ समुद्री अस्पताल हैं, २१ रेज़िडेन्शल शिप-स्कूल हैं, ८८ इस रोग की जाँच करने की संस्थाएँ हैं और ३८९ अस्पताल हैं।

स्विट्ज़रलैण्ड की सरकार ने अपने देशवासियों को इस रोग से बचाने के लिए जैसा प्रयत्न किया है, वैसा किसी भी देश की सरकार ने नहीं किया। वहाँ युवकों के लिए २४ अस्पताल हैं, जिनमें २,००० कमरे हैं और २९ अस्पताल बच्चों के लिए हैं, जिनमें १,२०० कमरे हैं। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक संस्थाओं की ओर से भी इस मर्ज़ के मरीज़ों के इलाज का बहुत विस्तृत प्रयत्न किया गया है। "स्विस सेण्ट्रल एसोसिएशन एगेन्स्ट ट्यूबरक्लोसिस" नामक संस्था की ओर से देश-भर में ३० अस्पताल खोले गए हैं, जिनमें प्रति वर्ष २५,००० मरीज़ों को सहायता दी जाती है। सरकारी और सार्वजनिक संस्थाओं के सम्मिलित प्रयत्नों का फल यह हुआ है कि स्विट्ज़रलैण्ड में तपेदिक़ की मृत्यु-संख्या बहुत घट गई है। सबसे प्रशंसनीय बात इस सम्बन्ध में यहाँ जो हो रही है, वह यह कि यूनीवर्सिटी सैनिटोरियम ऑफ़ लेवसिन की ओर से यह खोज की जा रही है कि इस मर्ज़ को नष्ट करने का सर्वोत्तम और अचूक इलाज क्या है। इसके अतिरिक्त वहाँ इस रोग को फैलने न देने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किए जाते हैं और उनके लिए क़ानून बने हुए हैं। इस मर्ज़ के बाहिरी मरीज़ों के स्विट्ज़रलैण्ड में प्रवेश करने पर कड़ी ड्यूटी लगाई जाती है। जिन लोगों का बच्चों से अधिक सम्पर्क रहता है, जैसे शिक्षक, धार्मिक कार्यकर्ता आदि, उनके स्वास्थ्य की कड़ी परीक्षा की जाती है। खाद्य पदार्थ तैयार करने वालों की प्रायः जाँच हुआ करती है। म्युनिसिपैलिटियों की ओर से दाइयों की परीक्षा की जाया करती है। इसके अतिरिक्त मरीज़ों को अस्पतालों में ही रहने का क़ानून तो बना ही हुआ है।

—'कलकत्ता म्युनिसिपल गज़ट'

(२६२ पृष्ठ का शेषांश)

करना घोर अन्याय और अत्याचार है। इसको शीघ्र से शीघ्र दूर करना चाहिए।

हम भारतवर्ष के नेताओं और विशेषकर महिला-मण्डल का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहती हैं कि इस कुप्रथा को एकदम दूर करने का प्रयत्न करें। श्रीमती सरोजिनी देवी प्रभृत्ति देवियों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि वे अपना ध्यान इस ओर आकर्षित करें और अपने समाज को अपमानित होने से बचावें। हमारी सर्वसाधारण से प्रार्थना है कि चित्रकार ऐसे चित्र बनाना बन्द कर दें, बेचने वाले बेचना बन्द कर दें। पुस्तकों, पत्रों के लेखक, सम्पादक और प्रकाशक ऐसे चित्रों का प्रकाशन बन्द कर दें, बल्कि इस कुप्रथा का विरोध अपने पत्रों और पुस्तकों द्वारा करके हमारी सहायता करें। लोग अपने घरों, बैठकों और दूकानों में ऐसे चित्र लगाना बन्द कर दें। और हम अपनी बहिनों से ज़ोरदार अपील करती हैं कि उनकी दृष्टि में जहाँ कहीं भी स्त्रियों के नङ्गे चित्र दिखलाई दें, एकदम फाड़ कर अग्नि-देवता के हवाले कर दें। इस कुप्रथा को सत्याग्रह द्वारा बन्द कर दिया जाय। विदेशी चित्रों के विषय में भी ऐसा ही होना चाहिए।

—रुक्मिणी देवी

स्वराज्य-भाषा

मद्रास के हिन्दी-प्रचारक विद्यालय के उपाधि-वितरणोत्सव के अवसर पर महात्मा जी के आश्रम के प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी काका साहब कालेलकर ने राष्ट्र-भाषा पर जो महत्वपूर्ण भाषण किया है, उसे संक्षेप रूप में पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

परमात्मा की बड़ी कृपा है कि हम ऐसे पुण्य अवसर पर एकत्रित होकर राष्ट्र-सेवा की दीक्षा ले रहे हैं। इस समय मुझे वह दिन याद आता है, जब गाँधी जी ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी का दक्षिण भारत में प्रचार करने के लिए एक प्रचारक भेजे जाने का सङ्कल्प किया था। इन्दौर में साहित्य-सम्मेलन हो रहा था। श्री० पुरुषोत्तमदास जी टण्डन की कार्य-कुशलता हम देख रहे थे। गाँधी जी ने सोचा कि राष्ट्र-भाषा का प्रचार अगर दक्षिण भारत में हो जाय तो और सब कठिनाइयाँ आप ही आप दूर हो जायँगी। उन्होंने इस काम के लिए अपने केवल उन्नीस बरस के पुत्र श्री० देवदास गाँधी को नियुक्त किया।

गाँधी जी के सब कार्य ऐसे ही हैं। लोकवार्ता में जैसा आता है कि भगवान के सहारे एक छोटे से पक्षी ने महासागर को सुखाना चाहा, उसी तरह से गाँधी जी ने राष्ट्र-भाषा-प्रचार की नींव डाली।

हिन्दी-प्रचार में गाँधी जी के इस कार्य के प्रतिनिधि मेरे मित्र श्री० हरिहर शर्मा हैं। हरिहर शर्मा जितने देश-प्रेमी हैं, उतने ही भाषा-प्रेमी भी हैं। बड़ोदे में जब हम साथ काम करते थे, तब वे मद्रासी होते हुए भी हमसे अङ्गरेज़ी में नहीं बोलते थे। हरिहर शर्मा जी मराठी और गुजराती में सव्यसाची थे। इसके बाद उन्होंने बँगला और हिन्दी यह दो भाषाएँ भी अपनी सी कर लीं। हरिहर शर्मा अङ्गरेज़ी जानते हुए भी अङ्गरेज़ी में नहीं बोलते थे।

राष्ट्र-भाषा का यह अर्थ कभी नहीं माना जा सकता कि प्रान्तीय भाषा का नाश करके हिन्दी को भारतवर्ष का एकराज्ञी-पद दिया जाय। हम यह हर्गिज़ नहीं चाहते कि प्रान्तीय भाषाएँ, प्रान्तीय साहित्य या प्रान्तीय संस्कृति का नाश हो। सप्तस्वर और बाइस श्रुतियों के कारण भारतीय सङ्गीत जैसा भावग्राही और समृद्ध हुआ है, उसी तरह से सब प्रान्तीय संस्कृतियों के सङ्गीत से भारतीय संस्कृति सबका श्रेय करने वाली और उन्नत हुई है। उसकी शक्ति, उसका प्रभाव और उसकी संस्कारिता अधिक व्यक्त (प्रकट) हो जाय, इसीलिए हम चाहते हैं कि सर्वसंग्राहक हिन्दुस्तानी भाषा ही राष्ट्र-भाषा बने। हिन्दी का प्रान्तीय भाषाओं से बिलकुल झगड़ा नहीं है। प्रान्तीय भाषा का राष्ट्रीय भाषा से वही सम्बन्ध है,जो इन्द्रिय-शक्ति का प्राण-शक्ति के साथ है। हिन्दी का झगड़ा उर्दू-हिन्दुस्तानी से भी नहीं है। हिन्दी और उर्दू हरिहर जी के सामने एक ही हैं। शास्त्रकारों ने शिव और विष्णु के बीच में भेद देखने वालों का जैसा अधःपात बताया है, इसी तरह से हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जो हिन्दी और हिन्दुस्तानी के बीच आत्यन्तिक विरोध देखते हैं, वे भी राष्ट्र के अधःपात का कारण बन जाते हैं। बेशक हिन्दी और उर्दू-हिन्दुस्तानी में रूप-भेद है, कुछ क्षेत्र-भेद भी है, लेकिन दोनों का हृदय एक ही है। दोनों मिल कर एक रूप, एक ज़बान हो सकती हैं, और वही हमारी राष्ट्र-भाषा है।

स्वदेशी भाषा में राष्ट्रीय उत्थान की जो शक्ति है, वह परदेशी भाषा में हरगिज़ नहीं हो सकती है। जो लोग अपने को देश की 'एरिस्टॉक्रसी' समझते हैं, उन्होंने अपने घर में भी अङ्गरेज़ी भाषा चलाई है। वे कहते हैं कि 'अङ्गरेज़ी भाषा को परदेशी भाषा समझना यही बड़ी भूल है।' उनके साथ इस समय हमारा झगड़ा नहीं है। हम इतना ही पूछना चाहते हैं कि राष्ट्र-भाषा का निर्णय करते समय वे अपने स्वार्थ और सुभीते का ख़्याल आगे क्यों लाते हैं।

राष्ट्र-भाषा का उद्देश्य परदेश के साथ के व्यवहार का नहीं है। सवाल तो यह है कि प्रजा राष्ट्रीय जीवन के विकास के लिए किस भाषा में परस्पर व्यवहार करे? जिन विषयों को हम किसी न किसी देशी भाषा में ला नहीं सकते हैं, वह प्रजा के लिए नहीं हैं। परदेशी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाना परदेशी साम्राज्य को क़बूल करने से भी बदतर है।

दक्षिण में हिन्दी-प्रचार

अब हम देखें कि दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार किस तरह बढ़ सकता है। जितने हम हिन्दी के हामी हैं, उतने ही हामी हम नागरी लिपि के हैं। तो भी प्रचार की दृष्टि से हम इतना ज़रूर चाहते हैं कि कबीर के दोहे, तुलसीदास की कुछ प्रसिद्ध चौपाइयाँ, गाँधी जी के एक-दो लेख, मालवीय जी के और श्रद्धानन्द जी के एक-दो भाषण, प्रेमचन्द जी की एकाध कहानी और मैथिलीशरण जी की कुछ खड़ी बोली की कविता द्राविड़ लिपियों में छप जायँ, जिससे नागरी लिपि को न पहचानने वाले हमारे द्राविड़ बन्धु अच्छी हिन्दी की कुछ लज़्ज़त ले सकें।

अङ्गरेज़ी भाषा जानने वालों की संख्या दक्षिण में भी करोड़ों की नहीं है और हम तो आम लोगों में राष्ट्र-भाषा का प्रचार विशेष चाहते हैं और यह भी देखा गया है कि अङ्गरेज़ी भाषा न जानने वाले लोग हिन्दी भाषा कुछ आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। द्राविड़ी लिपि में हिन्दी-भाषा के रत्न छाप देना जितना लाभदायक है, उतना ही द्राविड़ी भाषा के कुछ साहित्य-रत्न नागरी लिपि में हिन्दी अर्थ के साथ छाप देना भी महत्त्व का है। लोकल-बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियाँ अपने-अपने साइन-बोर्डों पर अगर नागरी को भी स्थान दे देवें, तो नागरी का प्रचार बहुत-कुछ होगा। डाक-घर की मुहर पर आजकल जो केवल अङ्गरेज़ी आती है, उसकी जगह अगर हिन्दी और स्थानीय लिपि में स्थान का नाम दिया जाय तो भी लिपि का प्रचार अनायास होगा। लेकिन ऐसे काम तो स्वराज्य होने पर ही हम आसानी से कर सकेंगे।

हिन्दी का असली पुरस्कार तो राष्ट्रीय महासभा द्वारा विशेष हो सकता है। इस दिशा में लाला जी, गाँधी जी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रपति सरदार वल्लभभाई ने बहुत-कुछ किया है। तो भी मैं समझता हूँ कि हिन्दी का पूरा-पूरा प्रवेश होने के लिए श्री० जमनालाल जी जैसे देश-सेवकों को राष्ट्रीय सभा के सभापति बनना चाहिए। भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता के साथ उन्होंने जितना ऐक्य साधा है, उतना बहुत कम नेताओं ने साधा होगा।

ब्राह्मणेतरों से विनय

दक्षिण के ब्राह्मणेतरों से मुझे कुछ विनय करना है। आप लोगों ने बहुत-कुछ जागृति की है। किसी भी ख़्याल से हो, आप लोगों ने बहुत-कुछ सङ्गठन किया है। अगर आप चाहें तो जनता के मार्ग-दर्शक बन सकते हैं। उत्तर भारत के ब्राह्मणेतरों के साथ सङ्गठन करना आपके लिए आवश्यक है। उत्तर के ब्राह्मणेतरों में दलित भाव (Inferiority Complex) नहीं है। उनके साथ सङ्गठन करने से आप लोगों की दृष्टि और शक्ति विशाल होगी। वह सङ्गठन केवल हिन्दी से ही हो सकता है। अङ्गरेज़ी के द्वारा अगर आप सङ्गठन करेंगे, तो आपके थोड़े से नेता एक-दूसरे के साथ बातचीत करेंगे। उससे साधारण प्रजा की शक्ति नहीं बढ़ेगी। आपके नेता लोग यह तो नहीं चाहते हैं कि उनके केवल अन्ध-अनुयायियों की संख्या बढ़े।

हिन्दी व्यापक बने

यहाँ पर जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है, उनसे भी हम एक प्रार्थना करेंगे। राष्ट्र-हित की दृष्टि से और अपना स्वार्थ समझ कर भी, आपको एकदम आसान हिन्दी का ही व्यवहार करना चाहिए। हिन्दी की वर्तमान प्रतिष्ठा देख कर आपको अन्य प्रान्तों की भाषाएँ और वहाँ के साहित्य दोनों के साथ परिचय बढ़ाना चाहिए। हिन्दी अब केवल आपकी ही नहीं रही है, हम अपने-अपने प्रान्त के मुहावरे (वाक्-प्रचार) और कहावतें हिन्दी में दाख़िल करेंगे। हम अपने प्रिय कवियों को राष्ट्रीय हिन्दी का लिबास पहनावेंगे। आपको वह मञ्ज़ूर करना होगा। फ़्रेञ्च भाषा जब यूरोप की सर्वमान्य भाषा हुई, तब फ़्रेञ्च लोगों ने सभी के सुभीते के वास्ते अपना व्याकरण भी कुछ आसान कर दिया, सार्वत्रिक ग़लतियों को मान्यता दी। आपको भी हिन्दी का व्याकरण इसी तरह से लचीला रखना होगा। हम आपके घर में दास-भाव से नहीं आते हैं, बन्धु-भाव से आते हैं। आते ही अपना अधिकार जमावेंगे। आपको उससे हर्षित होना चाहिए।

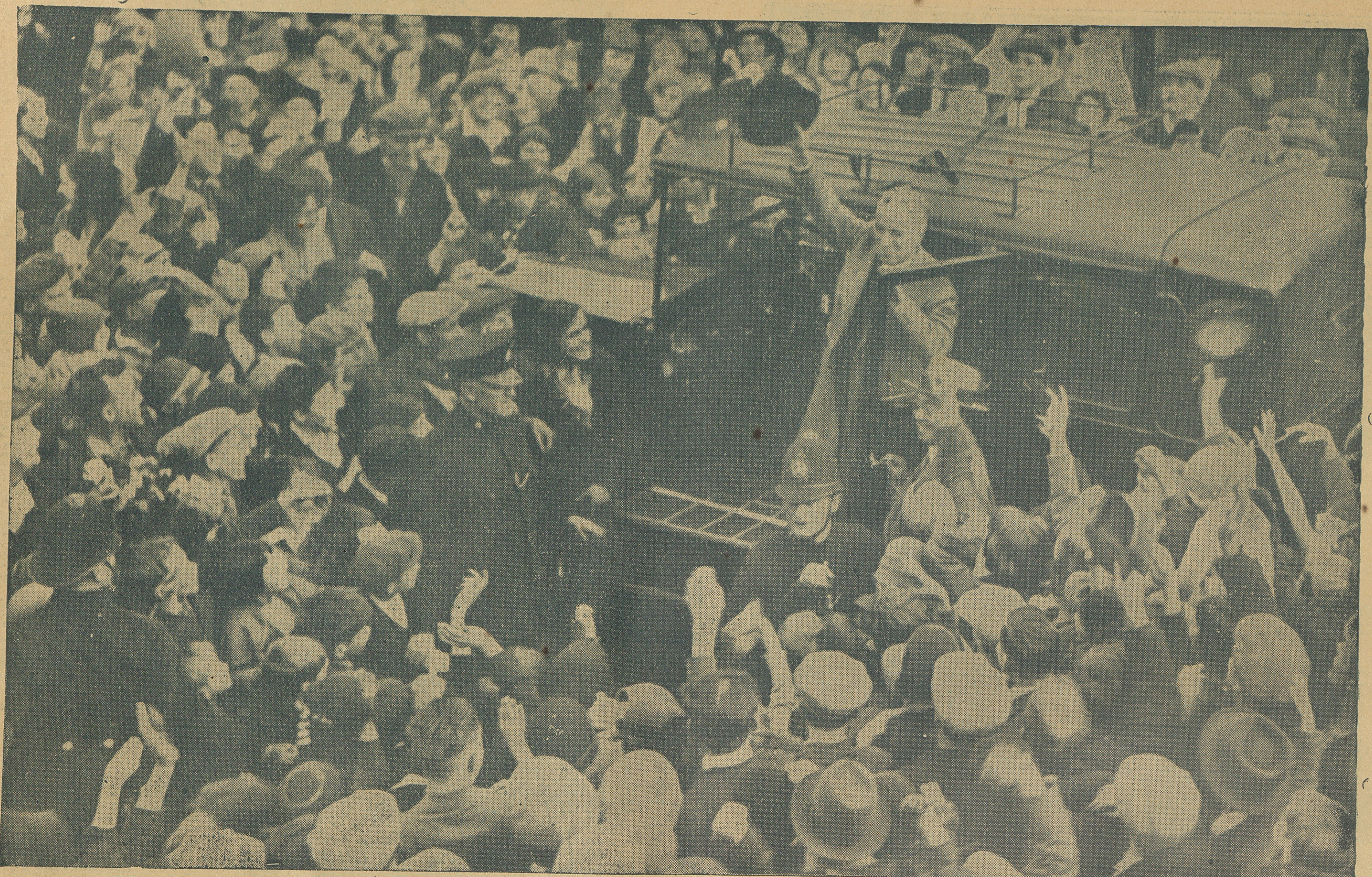
—'हिन्दी-प्रचारक'



मैनचेस्टर (इङ्गलैण्ड) के बेकारों का एक जुलूस, जो पेट को ज्वाला से पीड़ित होकर नाना प्रकार के प्रदर्शन कर रहा है तथा पुलिस और सवार जुलूस को भङ्ग करने का प्रयत्न कर रहे हैं।



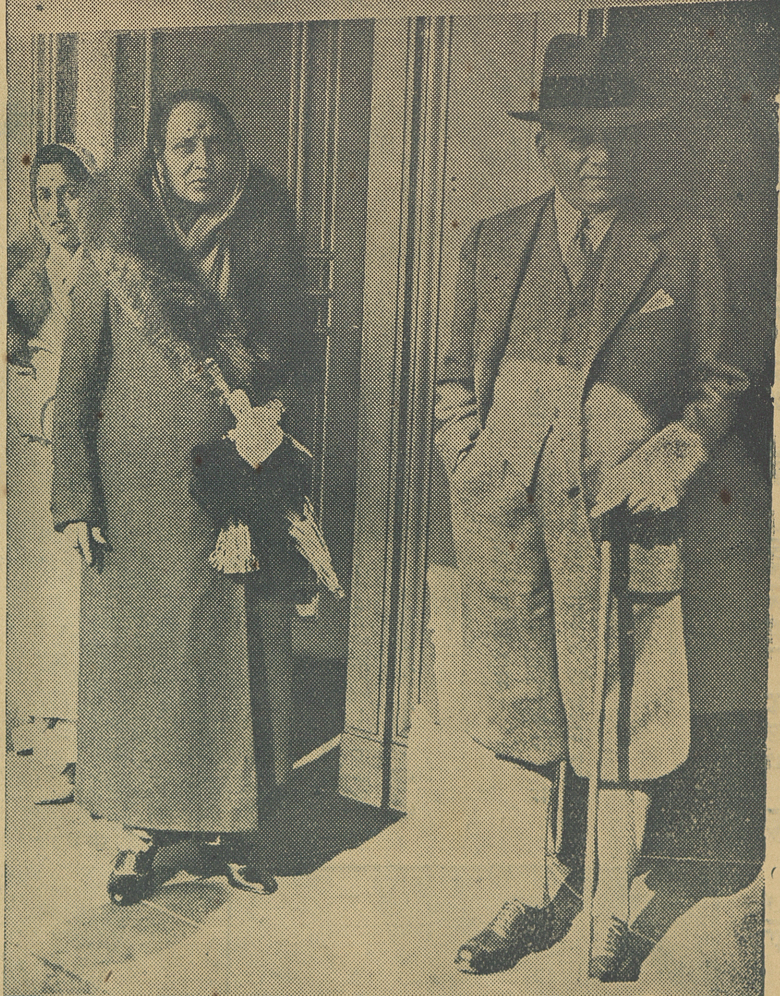
लन्दन की कुछ बेकार 'उपद्रवी' महिलाओं को पुलिस गिरफ़्तार किए ले जा रही है, जो बार-बार रोकने पर भी पुलिस की आज्ञाओं की अवज्ञा कर रही थीं।



संसार के सुप्रसिद्ध सिनेमा-विदूषक चार्ली चेपलिन के अभूतपूर्व स्वागत का दृश्य; जब कि प्रस्थान के कुछ ही दिन पूर्व महात्मा गाँधी से मिलने के लिए वे डॉक्टर कटियाल के निवास-स्थान पर पधारे थे। क्या भारत भी कभी अपने ऐक्टरों की प्रतिष्ठा करना सीखेगा ?



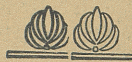
मैनचेस्टर (इङ्गलैण्ड) के 'हेज़ फ़ार्म' नामक अतिथि-गृह में एक यूरोपियन परिवार सहित महात्मा गाँधी —जहाँ वे अपनी भारत-यात्रा के कुछ ही दिन पूर्व निरीक्षणार्थ गए थे।



अपने होटल से निकल कर गोलमेज़ परिषद में जाने के लिए तैयार खड़े श्रीमती महारानी साहबा सहित, बड़ोदा के महाराजा साहब बहादुर।

'चाँद' की दुर्लभ चित्रावली का एक पृष्ठ





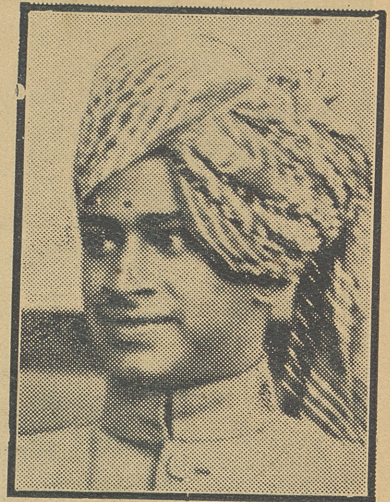


ट्रावङ्कोर राज्य के उत्तराधिकारी—जिन्होंने विगत मास में ट्रावङ्कोर जैसे राम-राज्य का शासन-भार ग्रहण किया है।

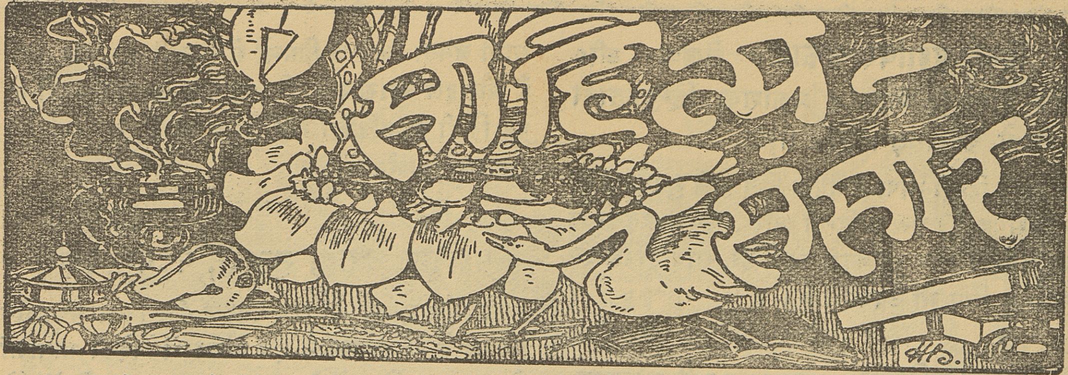


किसी ज़माने के 'राष्ट्रीय कवि'—सर मोहम्मद इक़बाल—हाल ही में जिनके कविता-प्रेम की विरुदावलि विलायत में गाई गई थी।





बाईं ओर से—(१) पञ्जाब नौजवान सभा की प्रधाना—श्रीमती शकुन्तला देवी तथा (२) शिमला ज़िला कॉङ्ग्रेस कमिटी के प्रधान की धर्मपत्नी—श्रीमती लक्ष्मी देवी ; जिनसे विगत मास में भारतीय दण्ड-विधान की १०८ वीं धारा के अनुसार ज़मानत तलब की गई थी और ज़मानत देने से इन्कार करने पर इन दोनों देवियों को १-१ वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया था। इन दोनों देवियों की ओर से हाईकोर्ट में अपील की गई है।



[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ, अन्यथा उनकी समालोचना न हो सकेगी। —सं० 'चाँद']

बीजज्यामिति अथवा भुजयुग्म रेखागणित—लेखक श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०; प्रकाशक विज्ञान-परिषद, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १३०; मूल्य १।)

इस पुस्तक को देख कर मेरा मन आनन्द से नाच उठा। वास्तव में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अब उच्च गणित सम्बन्धी पुस्तकें भी हिन्दी में निकलने लगी हैं। वास्तव में सत्यप्रकाश जी का यह प्रयत्न सर्वथा स्तुत्य है और इस सम्बन्ध में उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने में श्री० सत्यप्रकाश जी को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा होगा, तथापि इस पुस्तक के लिए श्री० सुधाकर द्विवेदी के 'चलन-कलन' में पारिभाषिक शब्द पर्याप्त हो गए होंगे। इस प्रकार हिन्दी-भाषा में इस विषय पर यह पहला ग्रन्थ है और इसीलिए यह बात निस्सङ्कोच भाव से कही जा सकती है कि इस विषय में यह पुस्तक पथ-दर्शक का काम करेगी। मैं इस पुस्तक के लिखने के लिए सत्यप्रकाश जी को हृदय से बधाई देता हूँ।

❀ ❀ ❀

पाप की पहेली—लेखक श्री० गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश'; प्रकाशक लेखक-मण्डल, दारागञ्ज, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १८५; मूल्य १); छपाई और काग़ज़ सुन्दर।

श्री० गिरजादत्त शुक्ल का लिखा हुआ यह एक उपन्यास है। इसकी कथा बड़ी रोचक है। पुस्तक एक बार हाथ में आने पर बिना ख़तम किए मन नहीं मानता। मेरा पूर्ण विश्वास है कि उपन्यास-प्रेमियों में इसका अच्छा आदर होगा। 'प्लॉट' सुन्दर है। इसमें घटनाएँ इस तरह से रक्खी गई हैं, जिससे चरित्र-चित्रण अधिक सुन्दर हो गया है। चरित्रों का विकास भी अच्छा है। हम शुक्ल जी को ऐसा सुन्दर उपन्यास लिखने के लिए बधाई देते हैं।

❀ ❀ ❀

वर्तमान रूस—लेखक श्री० देवव्रत, प्रकाशक श्री० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सञ्चालक साहित्य-मन्दिर दारागञ्ज, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य १॥)

यह पुस्तक वास्तव में बहुत सुन्दर है। इसमें रूस के सम्बन्ध की जानने योग्य सभी बातों का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। इसमें ज़ार के सम्बन्ध की भी कुछ बातें हैं, परन्तु अधिकतर इस पुस्तक में रूस की वर्तमान दशा पर ही विचार किया गया है। इसमें रूस के शासन, शिक्षा, किसान, मज़दूर, स्त्रियाँ, सहयोग-समितियाँ, नौजवान लाल-सेना, अल्पसंख्यक जातियाँ, न्याय तथा अदालत, जेलख़ाने, आर्थिक स्थिति और कम्यूनिस्ट-पार्टी आदि सभी विषयों का रोचक तथा सुन्दर वर्णन है। स्त्रियों के सम्बन्ध का अध्याय वास्तव में बहुत ही अधिक सुन्दर तथा मनोहर है। पुस्तक प्रामाणिक है और अध्ययन के साथ लिखी गई है।

—अवध उपाध्याय

❀ ❀ ❀

हिन्दी-मुहाविरा-प्रकाश—लेखक श्री० भूदेव शर्मा 'चिन्तक'; प्रकाशक हिन्दुस्तानी बुकडिपो, अलीगढ़। मूल्य ॥)

इसमें हिन्दी-भाषा में प्रयुक्त होने वाले मुहाविरों का अच्छा संग्रह है। पुस्तक हिन्दी और अङ्गरेज़ी स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए तो काम की है ही, साथ ही हिन्दी-लेखकों के लिए भी उपयोगी है।

❀ ❀ ❀

गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—लेखक, मुन्शी दरियाव-सिंह; प्रकाशक भारत राष्ट्रीय कार्यालय, अलीगढ़। मूल्य ।-)

स्कूल के विद्यार्थियों के लिए यह भी एक अच्छा संग्रह है।

❀ ❀ ❀

त्रिवेणी (मासिक पत्रिका)—सम्पादिका श्रीमती फूलवती शुक्ल, एम० ए०, सम्पादक श्री० श्रीपति तथा श्री० अरुण, बी० ए०; प्रकाशक रमेश फ़ाइन प्रिण्टिङ्ग वर्क्स, लखनऊ। वार्षिक मूल्य ४)

'त्रिवेणी' का जन्म नवम्बर में हुआ था और यह उसका पहला अङ्क है। लेखों का चयन, चित्र, छपाई, काग़ज़ आदि सभी दृष्टि से प्रारम्भ अच्छा हुआ है। इसमें एक नई बात यह है कि पत्रिका के कई विभाग कर दिए गए हैं और प्रत्येक विभाग के लेखों की सूची उस विभाग के प्रारम्भ में दी हुई है। 'कीर्ति-कौमुदी' नामक स्तम्भ में केवल महिलाओं के लेख हैं। महिलाओं के लिए, हमें आशा है, यह पत्रिका उपयोगी सिद्ध होगी।

❀ ❀ ❀

रेलवे-समाचार (मासिक पत्र)—सम्पादक श्री० कँवरलाल बाकलीवाल; प्रकाशक बाकलीवाल प्रेस, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ३)

इस मासिक पत्र में रेलवे से सम्बन्ध रखने वाले लेख तथा समाचार प्रकाशित होते हैं। हिन्दी-भाषा-भाषी जनता रेलवे के नियमों से कितनी अनभिज्ञ होती है और इस कारण उसे कितना कष्ट उठाना पड़ता है, यह किसी से अविदित नहीं है। आशा है, इस कमी को यह पत्र दूर करेगा।

❀ ❀ ❀

महापाप, देहाती सुन्दरी, षड्यन्त्रकारी—

उपर्युक्त पुस्तकें साहित्य-मण्डल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित की गई हैं। प्रकाशकों ने इस माला में विदेशी भाषाओं के सुप्रसिद्ध विद्वानों के उपन्यास तथा कहानियों को हिन्दी में अनुवाद करा के प्रकाशित करने का निश्चय किया है। विचार अच्छा है। 'महापाप' और 'देहाती सुन्दरी' महर्षि टॉल्स्टॉय के ग्रन्थों के अनुवाद हैं तथा 'षड्यन्त्रकारी' फ्रेञ्च औपन्यासिक ड्यूमा के एक उपन्यास का अनुवाद। अनुवाद अच्छे हुए हैं, कहीं-कहीं रोचकता अवश्य नष्ट हो गई है। जहाँ तक हम समझते हैं, ये अनुवाद मूल के अङ्गरेज़ी अनुवादों से किए गए हैं। क्या ही अच्छा हो कि अब हिन्दी के कुछ विद्वान फ्रेञ्च, जर्मन आदि भाषाओं का अध्ययन कर, मूल पुस्तकों से अनुवाद करने लगें। पुस्तकों की छपाई-सफ़ाई तथा गैट-अप आदि अच्छे हैं। मूल्य प्रत्येक का १॥)।

❀ ❀ ❀

उद्योग-धन्धा—(मासिक पत्र) सम्पादक श्री० जगदीशप्रसाद वर्मा 'श्रमिक'; प्रकाशक वणिक प्रेस, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य २॥)

यह हिन्दी शिल्प-विद्यालय का शिल्प-व्यापार सम्बन्धी मासिक पत्र है। इसकी दो संख्याएँ हमने देखी हैं। पाठ्य विषय अच्छा रहता है तथा छपाई-सफ़ाई अच्छी है। इस पत्र का हम हृदय से स्वागत करते हैं।

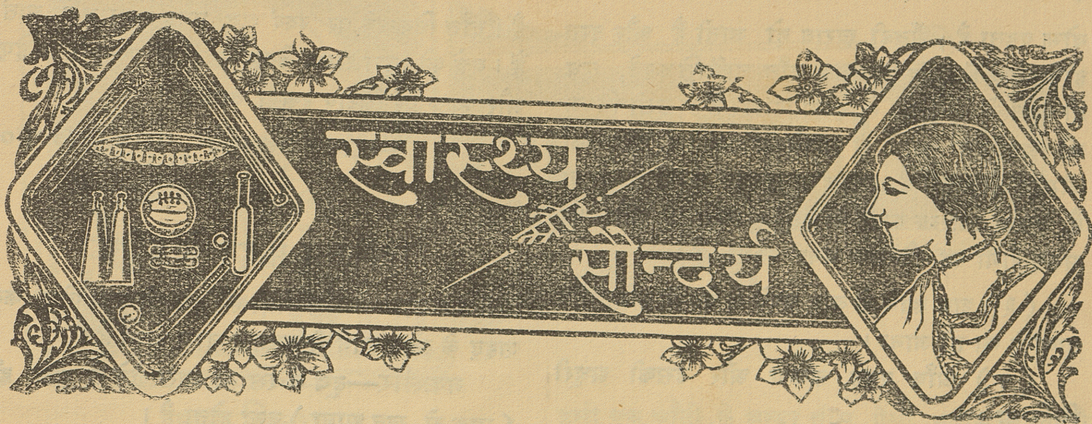
❀ ❀ ❀

REASON (monthly) बम्बई के The Rationalist Association का मासिक मुख पत्र।

तर्क शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए अङ्गरेज़ी का यह पत्र बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा।

—सम्पादक





बच्चों की एक बीमारी

बिहार प्रान्त की लगभग सब जगहों में ५ वर्ष से नीचे की अवस्था वाले बच्चों को एक तरह की बीमारी होती है, जिसे अनपढ़ पुरुष और स्त्रियाँ "ममरखा" या 'सूखा' कहते हैं। मेरी समझ में ऐसी बीमारी और जगहों में भी होती होगी, किन्तु उन जगहों में इसका नाम लोग क्या रक्खे हैं, यह नहीं कहा जा सकता। इस बीमारी में बच्चों की पाचन शक्ति ख़राब रहती है और यही बीमारी की जड़ है। बच्चों को प्रायः दस्त हुआ करते हैं। वे जो कुछ खाते हैं, ठीक से नहीं पचता और दिनोंदिन स्वास्थ्य गिरता जाता है। अन्तिम अवस्था में उनके पैर और दूसरे अङ्ग सूजने लगते हैं।

प्रायः औरतें इसकी चिकित्सा में बच्चों को मछली का धोयन, मासिक-धर्म का ख़ून और पानी में मक्खियों को पीस कर पिलाया करती हैं। इन निकृष्ट उपायों से बीमारी अच्छी होने के बदले ख़राब ही होती जाती है और बच्चे शीघ्र ही काल के गाल में पहुँचा दिए जाते हैं। पाठकों और पाठिकाओं को इस बीमारी के असली कारण और उसकी साधारण चिकित्सा बताना ही इस लेख का उद्देश्य है।

यह बीमारी ५ वर्ष से नीचे और २ वर्ष के लगभग की अवस्था वाले बच्चों को होती है, जब कि उन्हें अन्न खाना प्रारम्भ करा दिया जाता है।

बीमारी होने के कारण :—

(१) माता के स्तनों में किसी कारण से पर्याप्त दूध का न होना।

आजकल अधिकांश माताओं को बच्चों के पिलाने के लिए दूध पर्याप्त नहीं होता है, जिसके प्रधान कारण ये हैं :—

(क) माता का क्षयी या और किसी रोग से ग्रस्त होना।

(ख) माता का बच्चे के पैदा होने के दो-चार महीने बाद से ही पति से अत्यन्त संयोग करना अथवा गर्भ रह जाना। ऐसी स्त्रियों के शरीर पुष्ट रहने पर भी दूध कम होता है।

(ग) स्त्रियों को पर्याप्त भोजन का अभाव या पर्याप्त भोजन मिलने पर व्यायाम और खुली हवा की कमी। ग़रीब या छोटी जाति की स्त्रियों को अपर्याप्त रूखा-सूखा भोजन मिलने पर भी हृष्ट-पुष्ट देखा जाता है, इसका यही कारण है कि वे सब पर्याप्त परिश्रम कर रोटी खाती हैं।

(२) बच्चे को माँ के दूध के अभाव में या दूध होने पर भी समय से पहले अन्न खिलाना। बच्चे को २ वर्ष के पहले अन्न खिलाना प्रकृति के विरुद्ध प्रतीत होता है। बच्चे के जब तक सब दाँत न निकल आएँ, तब तक अन्न खिलाना श्रेयस्कर नहीं होगा। दो वर्ष में बच्चे के सब दाँत निकल आते हैं। तभी बच्चा अन्न ठीक से चबा सकता है, अन्यथा वह जो कुछ मुँह में डालता है, सीधा निगल जाता है, जिससे उसकी अँतड़ी पर बहुत

बोझ पड़ता है ; अँतड़ी ख़राब हो जाती है और दस्त होने लगते हैं। जब तक सब दाँत नहीं निकलते, दूध ही बच्चे के लिए सब से उत्तम आहार है। इसी नियम की अवहेलना करने से बच्चे को अनेक तरह की बीमारी हो जाती है। जो बच्चा बचपन में रोगी रहता है, उसका स्वास्थ्य कभी भी नहीं सुधरता है और हर समय रोगों का शिकार बना रहता है।

(३) अन्न खाने के बाद बच्चे के पेट में क्रमि, जोंक इत्यादि का हो जाना।

(४) आँव पड़ने लगना और उसकी अधूरी चिकित्सा।

(५) बच्चे के दाँत निकलना।

चिकित्सा—हर एक बीमारी की चिकित्सा करने के पहले उसके कारण का पता लगाना चाहिए और उसी को दूर करना चाहिए। रोग का कारण कुछ और तथा दवा कुछ और हो, तो उससे कुछ लाभ नहीं होता है। पहले यह पता लगाना चाहिए कि माँ का दूध बच्चे के पीने के लिए पूरा होता है कि नहीं। यदि दूध पूरा न होता हो या माता किसी कठिन बीमारी से ग्रस्त हो, तो माता का दूध छुड़ा कर बच्चे को गाय या बकरी का दूध ही देना चाहिए, हर एक बार दूध को थोड़ा उबाल के उसमें थोड़ी चीनी या मिश्री मिला कर देना चाहिए। साथ ही मीठे नींबू, टमाटो आदि का रस तथा मछली का तेल देना भी लाभदायक है। यदि बच्चे को शीघ्र अन्न खिला दिया गया हो, तो अन्न छुड़ा कर दूध देना चाहिए। बच्चे के पेट में जब क्रमि हो जाते हैं, तब उसका पेट कुछ ऊँचा और कड़ा हो जाता है। कभी दस्त और कभी क़ब्ज़ियत हो जाती है। बच्चा रात को दाँत पीसता है और बिछौने पर पेशाब कर देता है। ऐसा होने पर किसी डॉक्टर से समुचित राय लेकर दवा करानी चाहिए। आँव की भी शीघ्र समुचित दवा करानी चाहिए।

बच्चे को दाँत निकलने के समय थोड़ा बुख़ार और दस्त होता है। इसके लिए माताएँ अत्यधिक चिन्तित हो जाती हैं। चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दाँत निकलने पर स्वयं सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं। बच्चे को उस समय केवल सर्दी से बचाना चाहिए और पलङ्ग पर लिटाए रखना चाहिए।

—रामचरित्र कुँवर, एल० एम० पी०

❀ ❀ ❀

चिकित्सा में दूब के प्रयोग

रक्तस्राव में—थोड़ी सी दूब की पत्ती पीस कर शहद के साथ खाने से तत्काल लाभ होता है।

नकसीर—दूब के रस को नास लेने से शीघ्र ही (नाक से ख़ून आना) बन्द होता है।

मूत्राघात—आध पाव दूब की जड़ लेकर दो सेर पानी के साथ पका कर (क्वाथ बना कर) जब आधा सेर शेष रह जाय, शहद मिला कर पिलाने से आराम होता है।

ऋतु-दर्शन—जिन स्त्रियों को ख़ुलासा मासिक-धर्म न होता हो, उनको ४ तोला दूब का रस, २ तोला चावलों का चूर्ण पीस कर पिलाने से मासिक-धर्म बिना कष्ट के ठीक समय में होने लगता है।

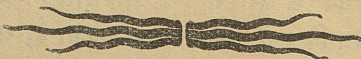
चमड़े के रोग—शुद्ध तिल का तेल पाव भर, दूब का रस छटाँक भर, दोनों को पका कर खुजली, फुन्सी आदि में लगाने से लाभ होता है।

रक्त-वमन—दूब का रस एक तोला, देशी चीनी एक तोला, दोनों को मिला कर सेवन करने से अवश्य लाभ होगा। साधारण वमन में भी इससे लाभ होता है।

रक्तातिसार—एक तोला दूब के रस में शहद डाल कर पीने से ख़ून के दस्त अथवा स्त्रियों की योनि से रक्त जाना बन्द हो जाता है।

कट जाने पर—शरीर का कोई भाग कट गया हो तो दूब को पीस कर शीघ्र ही कटे स्थान में बाँध देने से दर्द वा रक्त बहना बन्द होकर घाव समतल हो जाता है।

—जगन्नाथ मिश्र





वस्त्र-विज्ञान

सूत का नम्बर समझने के लिए नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए। लकड़ी के गोल चक्कर के ऊपर सूत लपेट कर, जहाँ बण्डल बनाया जाता है, उस लकड़ी की परिधि अथवा दायरा डेढ़ गज़ या ५४ इन्च लम्बा होता है। उस गोल डेढ़ गज़ की परिधि वाली लकड़ी पर यदि अस्सी बार सूत लपेट दिया जाय, तो एक लच्छी (Lea ली) बन जाती है। इस लच्छी की लम्बाई ८० × १½ = १२० गज़ की होती है।

इसी प्रकार लगातार सूत को उसी गोल चक्कर के ऊपर यदि सात लच्छी बना ली जावें, जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई एक सौ बीस गज़ हों, तो इन सातों लच्छियों के मिलने से जो ८४० गज़ लम्बी बड़ी लच्छी बन जावेगी, उसको एक नौट (Knot) कहते हैं। एक आँटी (Hank) जिसका कि वज़न ठीक-ठीक एक पौण्ड होता है, उसके अन्दर ८४० गज़ लम्बी उतनी ही बड़ी लच्छी होगी, जितने नम्बर का कि सूत होगा।

उदाहरण—दस नम्बर सूत का यह मतलब होता है कि एक आँटी (Hank) जिसका वज़न एक पौण्ड हो और उसकी लगातार लम्बाई आठ हज़ार चार सौ गज़ हो यानी इसी आँटी के अन्दर ७० लच्छियाँ हों, जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई १२० गज़ की हो।

तीस नम्बर के सूत का आशय यह है कि एक आँटी जिसका वज़न एक पौण्ड होना ज़रूरी है, उसकी लगातार लम्बाई पच्चास हज़ार दो सौ गज़ हो और इसी एक आँटी के अन्दर तीस ऐसी बड़ी-बड़ी लच्छी या नौट हों, जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई आठ सौ चालीस गज़ हो। यानी एक पौण्ड वज़न वाली आँटी के अन्दर आठ सौ चालीस गज़ लम्बी जितनी लच्छियों की शुमार होगी, उतने ही नम्बर का वह सूत होवेगा।

सूत का रेशा किस-किस वस्तु के संयोग से बना है ?

कपास का शुद्ध रेशा केवल सेल्युलोज़ (Cellulose) नामक पदार्थ का बना होता है। इस सेल्युलोज़ में तीन वस्तुएँ मिली होती हैं, यानी कारबन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन। इसके सिवाय जब कपास से बिनौला अलग किया जाता है, तो उसके अन्दर कुछ मैल और भी शामिल हो जाता है। मामूली रूई के अन्दर पञ्चानवे फ़ीसदी सेल्युलोज़ तथा पाँच फ़ीसदी अन्य मैल व तैल का भाग शामिल रहता है।

मैल-मिट्टी के नाम ये हैं—(१) पेकटिक एसिड, (२) कॉटन ऑइल, (३) कॉटन वैक्स, (४) एल्बुमीनस पदार्थ, (५) रङ्ग का भाग। ये मैल मामूली रीति से यदि कपड़े को साफ़ किया जावे तो अलग नहीं हो सकते हैं। इनके लिए सूत को अथवा सूती कपड़े को विज्ञान के रीत्यनुसार धोना आवश्यक है।

रूई का रेशा

रूई के एक रेशे की लम्बाई १५ से ६० मिलीमिटर तक होती है यानी रूई के रेशे की मोटाई से लम्बाई १,२०० से १,६०० गुनी अधिक लम्बी होती है। रूई के

रेशों का वह मुह, जो बिनोले से अलग कर दिया जाता है, खुला रहता है। दूसरा सिरा किनारे पर बिल्कुल बन्द रहता है।

यदि रूई के एक रेशे को ख़ुर्दबीन (Microscope) से देखा जावे, तो उसका आकार ऐंठा हुआ दिखाई पड़ता है।

रूई के रेशे की मोटाई जितनी कम होवेगी, उस रेशे में से उतना ही बढ़िया नम्बर का सूत बन जावेगा।

रूई का रेशा १,००० अंश सेन्टीग्रेड थर्मामीटर पर बिल्कुल सूख जाता है। यदि इसको अधिक गर्म किया जाय तो रेशा कमज़ोर हो जाता है। सूत भीगी हुई हालत में अधिक ताक़तदार रहता है, बनिस्बत सूखी हालत के।

यदि रूई के रेशों को अथवा सूती कपड़े को कुछ-कुछ भीगी हालत में गर्म किया जाय, तो उस समय कपड़े को मोड़ कर चाहे जैसी सूरत में तब्दील कर सकते हैं। धोबी लोगों का गर्म इस्त्री करने का यही मतलब है।

—भूदेव शर्मा, 'उद्योगी'

❀ ❀ ❀

क्या आप सौ प्रति सैकड़ा माता हैं ?

भारतवर्ष में अभी तक यह एक प्रसिद्ध विचार है कि आजकल आवश्यकता है ऐसी विद्या की, जो स्त्रियों को माता के सम्पूर्ण गुणों से विभूषित कर सके!

हम प्रत्येक माता से यह पूछते हैं कि क्या आप सौ प्रति सैकड़ा माता हैं ? निम्न-लिखित बातों के अगर सब नम्बर १०० रक्खे जावें, तो प्रति माता को अपनी वास्तविक अवस्था का पूरा-पूरा ज्ञान हो सकता है कि वह मातृत्व की कितनी सीमा तक माता कही जा सकती है।

(१) २५ नम्बर अगर आपका शिशु स्वस्थ है।

५ नम्बर घटा दिए जावें, अगर आपके शिशु की देह का बोझ उसकी आयु के हिसाब से कम है।

१० नम्बर और कम कर दिए जावें, अगर आप यह जानती हों कि शिशु की देह का बोझ वास्तविक बोझ से कम है और उसकी देह की परीक्षा किसी वैद्य द्वारा न करावें।

१० नम्बर घटा दिए जावें, अगर वैद्य ने परीक्षा करके बतला दिया है कि शिशु रोगी है और आपने चिकित्सा द्वारा उसको रोग-रहित करने की चेष्टा नहीं की।

(२) २५ नम्बर गृह-राज्य के निमित्त

१० नम्बर घटा दिए जावें, अगर आपने अपनी सन्तान को आज्ञा पालन करना नहीं सिखाया।

५ नम्बर घटा दिए जावें, अगर आपकी सन्तान के अध्यापक जो चेष्टाएँ आपकी सन्तान की भलाई के वास्ते करते हैं, आप उसमें अनुचित दख़ल देकर हानि पहुँचाएँ।

५ नम्बर घटा दिए जावें, अगर आपने उसे अपना कर्तव्य-पालन करने की शिक्षा नहीं दी।

५ नम्बर घटा दिए जावें, अगर आप अपनी सन्तान के अपराधों का न्याय करने में अनुचित स्नेह से काम लेती हैं।

(३) २५ नम्बर प्रतिदिन की बढ़ती के निमित्त।

५ नम्बर कम कर दिए जावें, अगर आपको उसकी थकान और काम की अधिकता के कारण ज्ञात नहीं हैं।

५ नम्बर घटा दिए जावें, अगर आप अपनी सन्तान के भोजन का ठीक प्रबन्ध नहीं करतीं।

५ नम्बर घटा दिए जावें, अगर आप अपनी सन्तान के अच्छे गुणों से प्रसन्न नहीं हैं।

१० नम्बर कम कर दिए जावें, अगर आप अपनी सन्तान को उसकी देह की ऊँचाई के हिसाब से उसका बोझ बढ़ाने की चेष्टा नहीं करतीं।

(४) २५ नम्बर आपके बच्चे के आदर्श सन्तान होने पर।

आप अपने नम्बरों को जोड़ें और फिर देखें कि प्रति सैकड़ा आप कितनी सीमा तक माता हैं !

—इन्द्रदत्त शर्मा



लूटो

उसका नाम तो लटोमल था, परन्तु दर्जे के सब लड़के उसे लूटो कह कर पुकारते थे। लूटो का रङ्ग तवे की तरह काला था। वह एक कोली का लड़का था। विद्या के नाम से तो उसे चिढ़ थी। पाठशाला का नाम सुन कर उसे बुख़ार आ जाता था। पण्डित जी की सूरत देख कर उस पर मनों पानी पड़ जाता था। घर से पट्टी-बुद्दका लेकर नित्य निकलता था, परन्तु पाठशाला न जाकर वह पास के किसी बाग़ में चला जाता था और चोरी से आम, जामुन, अमरूद या शहतूत तोड़ कर खाता रहता था। जब फल नहीं मिलते थे, तो खेतों में से चने, मटर की फली या ककड़ी खाता था। जब खेत भी कट जाते थे तो वह इधर-उधर के लड़कों के साथ गिल्ली-डण्डा या गोली-टीप खेलता रहता। जब रोटी खाने का समय होता, तो वह बस्ता बग़ल में दबा कर घर चला जाता था। अगर किसी दिन डर के मारे वह स्कूल आता भी, तो थोड़ी देर बाद पेशाब का बहाना करके भाग जाता। पण्डित जी उससे तङ्ग थे। घर वालों के भी नाक में दम थे।

कुछ दिन इसी तरह बीते। अब लूटो को बाज़ार की चाट तथा चूरन खाने की आदत पड़ गई। वह किसी ऐसे मित्र की खोज में था, जो उसे पैसे दिया करे। पण्डित जी ने लड़कों को उसके साथ न रहने को कह दिया था, इसलिए उसकी दाल नहीं गलती थी।

कुछ समय पीछे उसी दर्जे में प्यारेलाल नामक एक लड़का दाख़िल हुआ। इसके पिता धनी थे। लूटो ने इसे फँसाना चाहा। एक दिन एक ओर ले जाकर वह प्यारेलाल से बोला—'प्यारे, यहाँ सारे दिन बैठे-बैठे तेरा जी नहीं घबराता?' प्यारे बोला—यार, जी तो बहुत घबराता है, पर पण्डित जी मारेंगे, इसलिए चुप बैठा रहता हूँ।

लूटो हँस कर बोला—अरे, पण्डित जी हर वक़्त थोड़े ही देखते रहते हैं। चल, बाग़ में गिल्ली-डण्डा खेलेंगे।

पण्डित जी का इन दिनों लूटो पर कड़ा पहरा था, अतः वह पाठशाला से शीघ्र नहीं भाग सकता था। वह अवसर देखता रहा और जब पण्डित जी ज़रा बाहर गए तो वह प्यारेलाल के साथ भाग खड़ा हुआ। इधर लड़कों ने शोर मचाया 'पण्डित जी, लूटो प्यारे के सङ्ग भाग गया।' पण्डित जी ने इनके पीछे कई बड़े-बड़े लड़के दौड़ाए। बड़ी खोज के बाद उन्होंने दोनों को एक ज्वार के खेत में छिपा हुआ पाया। दोनों पकड़ कर पण्डित जी के पास लाए गए। पण्डित जी ने दोनों को सज़ा दी। प्यारेलाल ने तो फिर न भागने का प्रण कर लिया, परन्तु लूटो मार खाने के एक घण्टे बाद ही आँख बचा कर फिर भाग गया। इस बार लूटो का पता न चला।

इस घटना को बीस वर्ष हो गए। प्यारेलाल एल्-एल्० बी० पास करके वकील हो गए हैं। एक दिन प्यारेलाल अपने दफ़्तर में बैठे थे कि एक स्त्री रोती-पीटती सामने आई और कहने लगी—बाबू जी, मेरा मालिक डकैती में पकड़ा गया है। जो सज़ा हो गई तो मेरे बालक तो तड़प-तड़प कर मर जायँगे। उसकी वकालत तुम न करोगे तो वह छुटेगा नहीं।

वकील साहब को दया आगई। वे बोले—उसका नाम क्या है ?

'लट्टीमल !'

× × ×

कचहरी दर्शकों से भरी थी। एक भारी डकैती का मुक़दमा होने वाला था। इतने ही में बेड़ी पहिने हुए चार अपराधी जज के सामने आ गए। वकील साहब ने एक की ओर देखा, तो उनके मुख से निकल गया—'लूटी !'

लूटी ने घूम कर देखा तो उसके मुख से भी निकल गया—'प्यारे !'

वकील साहब बोले—लूटी, तूने बड़ा बुरा काम किया है।

लूटी उदास होकर बोला—अबकी बार छुड़ा लो तो फिर तुम्हारी नौकरी में दिन काट दूँगा।

वकील साहब ने कहा—कोशिश करूँगा।

वकील साहब की कोशिश ने काम न दिया। लूटी को आजन्म कालेपानी की सज़ा हुई। जब कचहरी बरख़ास्त हुई, तो लूटी प्यारेलाल के पास उदास मुख से आया। प्यारेलाल बोले—लूटो, मुझे दुःख है।

लूटी बोला—यह सब मेरा दोष है। अगर उस दिन पण्डित जी की बात मानता तो यह दिन न देखना पड़ता। जो बचपन में अपने बड़ों की आज्ञा न मान कर बुरे कामों में फँस जाते हैं, उन्हें बड़े होकर ऐसी ही सज़ा भुगतनी पड़ती है।

—रतन प्रेम

❀ ❀ ❀

पहेली

नीचे के ख़ानों में एक वाक्य छिपा है, जिसका सम्बन्ध बालकों की शिक्षा से है। इसे ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करो। इस वाक्य का पहिला अक्षर 'ल' है। दूसरे अक्षरों को पाने के लिए इस ख़ाने से किसी दिशा में भी इस प्रकार चलो कि एक ही ख़ाना दो बार न गिना जाय और बीच में कोई ख़ाना छूट भी न जाय। इस पहेली का उत्तर फ़रवरी के अङ्क में निकलेगा। उसे अवश्य पढ़ना, जिससे तुम्हें यह मालूम हो जाय कि तुम्हारा उत्तर ठीक था या नहीं।

ज्ञा	ड़ों	की	ने	प	औ	ड़
का	आ	ब	अ	र	'ल'	कों
न	पा	र	चा	को	ल	कि
ल	क	ना	ए	डि	यों	ड़

❀ ❀ ❀

मास्टर साहब समझाते-समझाते हार गए, परन्तु लड़के की समझ में यही न आया कि 'बाक़ी' किसे कहते हैं। तब वे बोले—'मान लो, तुम्हारे बापू के पास चार घोड़े हैं। उनमें से दो तुम्हारे चचा ले गए, तो तुम्हारे बाप के पास कितने घोड़े बचे ?'

लड़का—एक भी नहीं।

मास्टर—यह कैसे ?

लड़का—क्योंकि मेरे बाप के पास केवल दो घोड़े हैं।

❀

मास्टर—रामू, चालीस और साठ कितने हुए ?

रामू—अट्ठानबे हुए, मास्टर साहब !

मास्टर—और दो कहाँ उड़ा दिए ?

रामू—दो फ़ी सदी दलाली काट लेना तो हमारे घर का क़ायदा है।

❀

"मैं तुम्हें रुपए उधार दे तो देता, परन्तु उधार देने से मित्रता भी जाती रहती है।"

"हम-तुम मित्र ही कब थे ?"



साधन मौजूद रहते हैं। इसका मूल्य १२० गिनी अर्थात् १६८० रुपए हैं।

❀ ❀ ❀

न्यूयॉर्क की भूमि के नीचे

यदि न्यूयॉर्क के नीचे की भूमि खोदी जाय,तो उसके नीचे मिट्टी नहीं मिलेगी, चाहे आप गज़ों नीचे चले जाइए। वहाँ आपको बड़ी आश्चर्यजनक चीज़ें देखने को मिलेंगी, जिनकी कल्पना आप स्वप्न में भी नहीं कर सकते। न्यूयॉर्क में भूमि के नीचे कितनी चीज़ें हैं :—

१—Pneumatic Mail Tubes—यह एक बड़ी विचित्र प्रणाली है और संसार में केवल कुछ नगरों में ही इसका प्रचार है। इसके द्वारा डाकख़ाने के वे पत्र भेजे जाते हैं, जो नगर के एक भाग से दूसरे भाग को जाते हैं तथा जो इतने आवश्यक होते हैं कि उनके मोटर, रेलगाड़ी आदि से पहुँचाने में समय अधिक लग जाता है। ये पत्र पोले लट्टों में हवा के ज़ोर से एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जाते हैं। हवा का इतना ज़ोर मैशीनों द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

२—टेलीफ़ोन के तार।

३—टेलीग्राफ़ के तार।

४—बिजली की रोशनी के तार।

५—गन्दा नाला।

६—पातालगामी रेलें।

७—गैस ले जाने के पाइप।

८—पानी ले जाने के पाइप।

९—वाष्प ले जाने के पाइप।

यह एक नई बात है। जाड़ों में यूरोप तथा अमेरिका में घर गर्म रक्खे जाते हैं। कहीं यह बात कोयला जला कर की जाती है, कहीं बिजली के द्वारा, कहीं गैस जला कर और कहीं गर्म पानी करके चारों ओर पाइपों द्वारा ले जाकर। परन्तु न्यूयॉर्क में म्युनिसिपैलिटी की ओर से वाष्प बना कर भी बेची जाती है और लोग अपने घरों को गर्म करने के लिए उसे ख़रीदते हैं। बड़ी-बड़ी इमारतों को गर्म करने में इस प्रकार काफ़ी व्यय की बचत होती है।

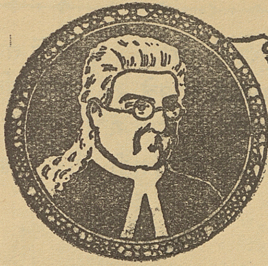
जादू का खेल

ग्लास से पानी न गिरने का खेल अत्यन्त आश्चर्यजनक है। सर्व-साधारण के सम्मुख एक ग्लास में जल भर दिया जाता है। सब लोग उसे देख लेते हैं, फिर तमाशा करने वाला उसको एकदम लौटा देता है, पानी नहीं गिरता। लोग अवाक् रह जाते हैं, ग्लास को फिर देखते हैं, जैसे का तैसा पाते हैं। इसके बनाने की रीति अति सरल है, मगर बेचने वाले इस खेल की क़ीमत एक रुपया बताते हैं, आप बहुत आसानी से इस खेल को कर सकते हैं। इसके लिए एक दूसरे प्रकार के गिलास की आवश्यकता होगी, जैसा कि बाज़ार में ढूँढ़ने से मिल सकता है। यह ग्लास अपनी शक्ल का काँच का हर एक बिसाती से दो-चार आने में मिल सकता है। अगर न मिले तो ऐसा ग्लास लेना चाहिए, जिसका पेंदा और मुँह एक साइज़ का हो।

इस ग्लास में दर्शकों के सम्मुख जल भर दो। अबरक का एक बहुत पतला चौड़ा टुकड़ा लेकर बिल्कुल ग्लास के मुँह के बराबर काट लो और इस ग्लास की तली में पानी से चिपका दो। ग्लास हाथ में होगा। तली के नीचे अबरक का टुकड़ा लगा हुआ किसी को मालूम न होगा। जब सब लोग पानी भरा हुआ देख चुकें, तब ग्लास को मेज़ पर रख दो, मगर बहुत छिपे हुए अबरक का टुकड़ा हथेली में रहने दो और ग्लास के पानी पर रख दो। पानी पर फ़ौरन चिपक जावेगा। ध्यान रहे कि ग्लास में पानी लबालब भर लिया जावे, क्योंकि ग्लास ख़ाली रहने से यह कार्य न होगा। अबरक का टुकड़ा बहुत पतला हो और इस तरह कटा हो कि किनारों के बराबर रहे। वह पानी में चिपक जाने के कारण पानी गिरने न देगा। अगर कोई कहे कि इसे फिर दिखाओ तो ग्लास को सीधा कर दो और अबरक का टुकड़ा हाथ की सफ़ाई से बाएँ हाथ पर रख कर दाहिने हाथ से ग्लास की तली को उस पर रख दो, जिससे छिप जावे। लोग देखेंगे कि वास्तव में ग्लास के मुँह पर कोई चीज़ नहीं लगी है।

(तिजारत से)





दिलचस्प मुक़दमे

माँ ने लड़की को नदी में फेंक दिया

एक स्त्री ने मुक़दमे से अपनी जान बचाने के लिए अपनी लड़की को किस प्रकार नदी में हाथ-पाँव बाँध कर फेंक दिया, इसका सनसनीदार मुक़दमा हाल ही में अलीपुर के सेशन्स जज की अदालत में पेश हुआ था। सरकारी वकील के कथनानुसार हिमसागिर नामक एक दश वर्षीया लड़की चिमसपाल नामक एक पुरुष को ब्याही गई। चिमसपाल अपनी स्त्री को अक्सर सताया करता था। पिछले अप्रैल मास में एक दिन रात के समय हिमसागिर की मा, पञ्ची, अपने पड़ोसी पालन के साथ चिमस के मकान पर गई और चिमस को सोता देख कर अपनी लड़की को अपने साथ लिवा लाई। प्रातःकाल उठ कर चिमस ने देखा कि उसकी स्त्री ग़ायब है। वह अपनी सास के पास गया और हिमसागिर के बारे में पूछ-ताछ की। पञ्ची ने कहा कि मुझे उसके बारे में कुछ नहीं मालूम। इस पर चिमस ने अपनी सास और पालन पर नालिश कर दी और उन दोनों पर हत्या और भगाने के जुर्म के समन तामील हुए। पञ्ची मुक़दमे से इतनी डरी कि उसने अपनी लड़की को ही मार डालने का निश्चय किया। पालन की सहायता से वह हिमसागिर को नदी के किनारे ले गई। वहाँ लड़की के हाथ-पाँव बाँध कर उसने नदी में फेंक दिया। मई के महीने में नदी में धारा बहुत तेज़ थी, लड़की बह गई। कुछ दूर तक बह जाने के बाद लड़की को कुछ मल्लाहों ने देखा और उसे निकाल कर अपने घर में शरण दी। दूसरे दिन लड़की के बच जाने की ख़बर उसकी माँ को मिली और इस पर उसने अफ़ीम खाकर आत्म-हत्या कर ली। पालन पकड़ा गया और उस पर मुक़दमा चल रहा है।

एक विद्यार्थी ने दूसरे को छुरा भोंक दिया

टिपरा (बङ्गाल) के सेशन्स जज ने अब्दुल जब्बार नामक ८वें दर्जे के एक विद्यार्थी को नृपेन्द्र नामक सहपाठी को छुरा भोंक कर मार डालने के अपराध में आजन्म कालेपानी की सज़ा दी है। क़िस्सा यह है कि गत अप्रैल मास में जब्बार ने नृपेन्द्र को एक गन्दा पत्र लिखा। नृपेन्द्र ने इसकी शिकायत स्कूल के हेडमास्टर से करनी चाही, परन्तु कुछ अन्य साथी विद्यार्थियों के समझाने पर नृपेन्द्र ने शिकायत नहीं की। इसके थोड़े ही दिनों बाद जब्बार ने गन्दी बातें लिख कर नृपेन्द्र के पास दूसरा पत्र भेजा। इस बार नृपेन्द्र चिढ़ गया और उसने इसकी शिकायत हेडमास्टर से कर दी। नृपेन्द्र के शिकायत करने पर जब्बार क्रुद्ध हुआ और उसने नृपेन्द्र तथा उसके पक्षपातियों को मारने का निश्चय किया। अन्त में गत १७ अप्रैल को, जिस दिन कि हेडमास्टर शिकायत की जाँच करने वाले थे, स्कूल के बाहर दोनों ओर के लड़के एकत्र हुए और उनमें झगड़ा हुआ। इसी बीच में कहा जाता है कि जब्बार ने अपनी जेब से छुरा निकाल कर नृपेन्द्र के साथी अजित की गर्दन में घुसेड़ दिया और उसके कुछ ही मिनट बाद अजित मर गया। जब्बार पर हत्या का मुक़दमा चला और सेशन्स जज ने जब्बार को आजन्म कालेपानी की सज़ा दी। जब्बार की ओर से कलकत्ता हाईकोर्ट में अपील की गई। सफ़ाई में कहा गया कि स्कूल के कुछ विद्यार्थियों ने दुश्मनी के कारण जब्बार पर कई हथियारों से हमला किया। जब्बार अपनी जान ख़तरे में देख कर छुरा घुमाते हुए हेडमास्टर की ओर जाने लगा, इसी बीच में अजित को छुरा लग गया।

हाईकोर्ट के जजों ने दोनों ओर की बातें सुन कर जब्बार की सज़ा घटा कर ६ वर्ष की कड़ी क़ैद कर दी।

बालिका के साथ बलात्कार

म्युनिसिपल मेम्बर पर मुक़दमा

बम्बई म्युनिसिपल कॉरपोरेटर और कॉङ्ग्रेसमैन कानजी करमसी मास्टर पर १२ साल की एक लड़की के साथ बलात्कार करने का अभियोग बम्बई-हाईकोर्ट में चल रहा है। गत ११ दिसम्बर को मुक़दमे की पेशी हुई थी। जज की आज्ञानुसार लड़की का नाम अख़बारों में प्रकाशित करने से मना कर दिया गया है। सरकारी वकील ने कहा कि अभियुक्त पहिले स्कूल-मास्टर था और अब एक व्यायामशाला चला रहा है। लड़की भी अभियुक्त की सजातीय है और उसके स्कूल और व्यायामशाला में कई वर्षों तक जाती रही है। अभियुक्त से और लड़की के पिता से पिछले २० वर्षों से जान-पहचान है।

आगे चल कर वकील ने कहा कि गत २४ अगस्त को लड़की की माँ ने लड़की को अपने घर में कुछ रस्म होने के कारण पड़ोसियों को निमन्त्रित करने के लिए भेजा। क़रीब साढ़े ६ बजे शाम को लड़की अपने एक रिश्तेदार के घर से लौट रही थी। अभियुक्त सड़क पर खड़ा था, लड़की को रोक कर वह बातचीत करने लगा। उसने लड़की से कहा कि बहुत दिनों से व्यायामशाला में क्यों नहीं आ रही हो। यह कह कर उसने लड़की को अपने मकान के ऊपर वाले हिस्से में चलने के लिए कहा। वे दोनों व्यायामशाला की चौथी मन्ज़िल पर गए। वहाँ पहुँचने पर अभियुक्त ने दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया और लड़की के साथ बलात्कार किया। इसके बाद लड़की को ४) देकर उसने विदा किया और कहा कि किसी से कुछ मत कहना।

लड़की अपने घर आई और उसने किसी से कुछ नहीं कहा। दूसरे दिन सुबह उसकी माँ ने लड़की के कपड़ों पर ख़ून के दाग़ देखे और उससे पूछ-ताछ की। लड़की डॉ० केशरी के पास ले जाई गई। उसके बाद एक लेडी डॉक्टर के पास भेजी गई।

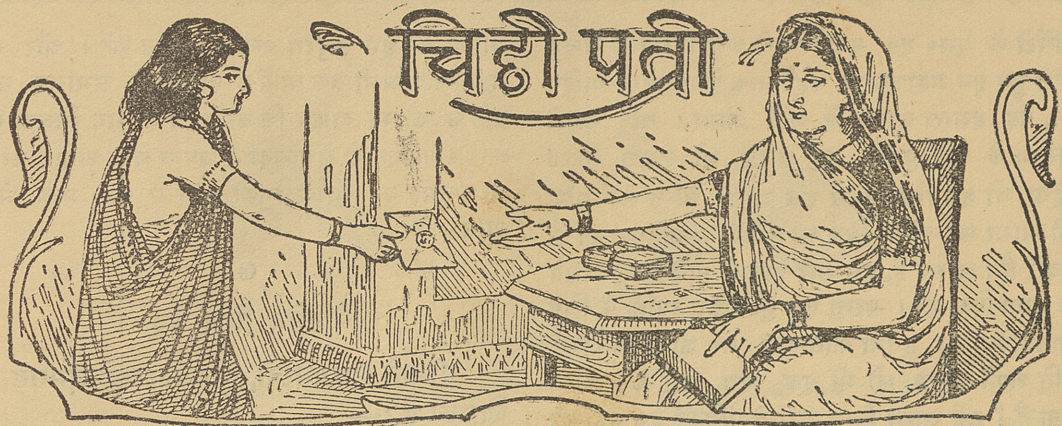
लड़की की बदनामी के ख़्याल से उसके पिता ने मामले को दाब देना चाहा और अभियुक्त के क्षमा माँगने से वह सन्तुष्ट हो गया। कुछ दिनों तक मामला शान्त रहा, पर अन्त में मामले की रिपोर्ट पुलिस में की गई। अभियुक्त गिरफ़्तार किया गया। ख़ुफ़िया पुलीस के इन्स्पेक्टर ने मामले में गवाही दी। मुक़दमा चल रहा है।

भगाई हुई लड़की को छिपाने का जुर्म

मिर्ज़ापुर के सेशन्स जज ने रसूल नामक एक व्यक्ति को सायरा नामक एक विवाहिता स्त्री को छिपाने और भड़काने के अपराध में दो वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा दी थी। मामला इस प्रकार है कि मुसम्मात सायरा और उसके पति तथा सास में अक्सर झगड़े हुआ करते थे। फ़ज़ीहत नामक एक बूढ़ा उनके मकान के बग़ल ही में रहता था और उसे उन लोगों के झगड़े आदि की सब बातें मालूम थीं। फ़ज़ीहत सायरा से अक्सर कहा करता था—"तुम्हारा शौहर और तुम्हारी सास तुमसे झगड़ा किया करते हैं और तुम्हें तकलीफ़ देते हैं। तुम मेरे पास चली आओ, मैं तुम्हारी शादी अपने दामाद से करा दूँगा। तुम्हें वहाँ बहुत आराम रहेगा।" सायरा उसकी बातों में आ गई और एक दिन उसके साथ मिर्ज़ापुर चली गई। वहाँ रसूल अपने भाई मझू के साथ रहता था। सायरा वहाँ एक महीने के क़रीब रही और मझू से शादी करने को तैयार थी। रमज़ान के महीने में वह कुछ पञ्जाबियों को हिन्दू लड़की कह कर दिखाई गई। इस बात का सायरा ने बहुत विरोध किया। इसके बाद इस मामले की ख़बर सय्यदहुसेन नामक एक हेड-कॉन्स्टेबिल को लग गई। उसने रसूल से पूछा कि क्या तुम्हारे मकान में कोई बाहरी औरत है? रसूल ने इससे इन्कार किया, किन्तु हेड-कॉन्स्टेबिल उसके घर में घुस गया और उसने देखा कि रसूल सायरा को दीवार पर चढ़ा कर बग़ल के मकान में पहुँचा रहा था। रसूल पर मुक़दमा चला और ऊपर कही गई सज़ा सेशन्स अदालत से मिली। रसूल ने प्रयाग-हाईकोर्ट में इस सज़ा के विरुद्ध अपील की। परन्तु हाईकोर्ट ने सज़ा को उचित समझ कर अपील ख़ारिज कर दी।





सौत

एक बहिन लिखती हैं :—

सम्पादक जी, नमस्ते !

मुझ ऐसी असहाय अबलाओं की आत्म-कथा सुनने का आप ही को अवकाश रहता है। अतः मैं बड़े साहस के बाद अपनी दुःख-कथा सुनाने बैठी हूँ।

मैं कान्यकुब्ज ब्राह्मण-वंश की कन्या हूँ। मेरे पिता का स्वर्गवास मेरे बाल्यकाल ही में हो गया था। आज से तीन वर्ष पूर्व मेरी माता की मौजूदगी में मेरे भाई ने मेरा ब्याह श्री० ....
के साथ कर दिया। इनके एक स्त्री मेरे ब्याह के पूर्व ही से थी। विवाह में दहेज़ की शर्त न पूरी होने के अपराध से मैं पतिगृह से निर्वासित होकर तीन साल से अपनी जीवन-यात्रा के दिन बिता रही हूँ। इसी समय मेरी माता का भी देहान्त हो गया। मेरी देख-रेख करने वाला मेरा भाई ही रह गया है। (ईश्वर उसे दीर्घायु करे) उसकी भी आर्थिक स्थिति बहुत ही सङ्कीर्ण है।

मैंने स्वयं पति जी की सेवा में कई पत्र भेजे, परन्तु कोई उत्तर तक न मिला। हाँ, एक पत्र, जोकि सौत जी के कर-कमलों में पड़ गया था, उसका उत्तर लिखने की श्रीमती जी ने कृपा की थी। उन्होंने उसमें ऐसी जली-कटी और अश्लीलतापूर्ण बातें लिखीं कि मेरी हिम्मत ही नहीं पड़ती कि वे बातें आपको लिख सकूँ। तब से फिर वहाँ को पत्र लिखने का मुझे साहस ही नहीं हुआ। इन्हीं श्रीमती जी का एक लेख आपके पत्र में एक बार निकला था।

क्या आप मुझे कोई ऐसा उपाय बतलावेंगे, जिससे मैं अपनी ज़िन्दगी के दिन पति-सेवा में काट सकूँ, और मेरी कल्याण-स्वरूपा सौत जी का भी कोई अनिष्ट न हो? मेरे कारण, आपको कष्ट तो अवश्य होगा, यदि आप उन श्रीमान जी को एक पत्र अपनी ओर से लिख दें।

यदि आपकी कृपा से मेरा मनोवाञ्छित फल मुझे मिल गया, तो मेरी आत्मा आपको भूरि-भूरि आशीर्वाद देगी।

[इस बहिन की कहानी छोटी-सी और सीधी-सादी है, परन्तु उसमें आहत हृदय की कितनी सिसकियाँ भरी हैं, कितनी करुण, कितनी रुला देने वाली। एक बालिका पति-सुख से—उस सुख से, जो उसके लिए संसार के सर्व-श्रेष्ठ सुखों से भी बढ़ कर है—वञ्चित कर दी गई है—केवल इसीलिए कि उसके पिता ने उसके पति को समुचित दहेज़ नहीं दिया। इन घटनाओं से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन बेकारी के दिनों में कुछ हिन्दू पुरुषों ने अनेक विवाह करके उनसे धनोपार्जन करने का व्यवसाय कर लिया है। विवाह हिन्दू-समाज में अनेक युगों से एक व्यवसाय और एक घृणित तथा निन्दनीय व्यवसाय रहा है, परन्तु इस प्रकार का व्यवसाय तो किसी भी समाज में क्षम्य न होना चाहिए।

इस बहिन ने अपने पति का जो नाम दिया है, वह हिन्दी-संसार में जाना-पहचाना नाम है। यूनी-

वर्सिटी के एम० ए० उपाधिधारी और हिन्दी के लेखक होते हुए इन महाशय को कहाँ तक ऐसा करना चाहिए था, यह हमारी समझ में नहीं आया। यदि हमारे समाज के ऐसे युवकों का चरित्र भी इतना निकृष्ट रहेगा, तो हम किस प्रकार उस राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण की आशा कर सकेंगे, जिस पर हमारी उन्नति का दारोमदार है। सम्भव है, इस सारे कृत्य के पीछे इन महाशय के माता-पिता हों। परन्तु एक सुशिक्षित व्यक्ति के लिए माता-पिता का इतना क्रीत-दास बन जाना कि स्त्री के प्रति अपने कर्तव्य को भी भूल जाय, कहाँ तक शोभा देता है? हमें आशा है, हमारी ये पंक्तियाँ इन महाशय के नेत्रों के सामने किसी प्रकार पहुँचेंगी और ये अपनी इस परित्यक्ता भार्या को पति-प्रेम का सुख देकर अपने अपराध का—दो विवाह करने के अपराध का—प्रायश्चित्त करेंगे।

—सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

अमूल्य भेंट

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल काँगड़ी लिखते हैं :—

"विश्वविद्यालय गुरुकुल काँगड़ी के संस्थापक अमर-शहीद श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की पुण्य-स्मृति में गुरुकुल रजत-जयन्ती के अवसर पर "श्रद्धानन्द गुरुकुल स्मारक-निधि" की आयोजना की गई थी। १० या १० से अधिक रुपया वार्षिक देने वाले महोदय इसके सदस्य समझे जाते हैं, और प्रतिवर्ष उनको गुरुकुल की ओर से एक पुस्तक भेंट की जाती है। गत दो वर्षों में "श्रद्धानन्द डायरी" तथा "ब्राह्मण की गौ" भेंट की गई थीं। इस वर्ष सब सदस्यों को स्वाध्याय-मञ्जरी का द्वितीय पुष्प समर्पित किया जा रहा है, जिसका नाम है "त्याग की भावना"।

"इस पुस्तक में ऋग्वेद के दो सूक्तों की व्याख्या श्री० पं० धर्मदेव जी वेद-वाचस्पति, वेदोपाध्याय गुरुकुल काँगड़ी ने बड़ी योग्यता से की है।

"जिन-जिन सदस्यों ने अभी तक अपनी वार्षिक प्रतिज्ञा का धन नहीं भिजवाया है, वे कृपया शीघ्र ही भिजवा कर इस अनुपम ग्रन्थ को प्राप्त करें। और जो महानुभाव अभी तक वार्षिक प्रतिज्ञा के सभासद नहीं बने, उनको भी चाहिए कि वह शीघ्र ही धन भिजवा कर वार्षिक प्रतिज्ञा के सभासदों में अपना नाम अङ्कित कराने का अनुग्रह करें, ताकि उनकी सेवा में यह ग्रन्थ भेजा जा सके।"

❀ ❀ ❀

पतिदेव मिल गए

श्रीमती भाग्यमानी, भरथीपुर-आज़मगढ़ से लिखती हैं :—

'चाँद' के जनवरी, १९३० के अङ्क में मेरी करुण-कहानी छपी थी, जिसको पढ़ कर सहृदय पाठक तथा पाठिकाओं के सहानुभूति-सूचक पत्र मेरे पास कई प्रान्तों से आए थे। अब उन महाशयों को 'चाँद' द्वारा यह हर्ष-समाचार आप पहुँचा दें।

'चाँद' के लेख को पढ़ कर रामस्वरूपसिंह, ग्राम लोधापुर, ज़िला आज़मगढ़ के रहने वाले मेरे पतिदेव की खोज में तन्मय रहने लगे। परमात्मा की कृपा से ज़िला सम्भलपुर, मोकाम झारसूगुड़ा में तारीख़ २३ सितम्बर सन् १९३१, समय १० बजे दिन को भोजन के लिए लकड़ी ख़रीदने में मेरे पतिदेव, महात्मा रामस्वरूपसिंह द्वारा पकड़ लिए गए। रामस्वरूपसिंह ने मेरे श्वसुर के नाम एक पत्र व तार भेजे। श्वसुर जी ४०) रु० लेकर झारसूगुड़ा पहुँचे और ९ वर्ष ३ माह के बाद अपने प्रिय पुत्र को भेंटा। तारीख़ ६ अक्टूबर को पतिदेव भरथीपुर आकर अपनी माता, चाची तथा ग्राम-वासियों से मिले। मैं उस समय अपने मैके में थी। मेरे श्वसुर के भेजे तार व पत्र का विश्वास मेरे माता-पिता को न होता था कि वह मिल गए। परन्तु पतिदेव ने स्वयं मेरे माता-पिता तथा मुझे अपना दर्शन दिया। उसी क्षण से मैं अपना जन्म सफल मानती हूँ। अब मेरा आदर-सत्कार माता-पिता, सास व श्वसुर पहले से चौगुना करते हैं। इस वक़्त मैं वह सुख पा रही हूँ, जो शब्दों द्वारा प्रकट करना मुझ मूर्खा को असम्भव है। आपने 'चाँद' में छाप कर मुझ पर जो असीम कृपा दिखलाई है, उसके लिए मैं आपकी आजन्म ऋणी हूँ।



"स्त्रियों को अर्थशास्त्र का ज्ञान कभी हो ही नहीं सकता।"

"क्यों ?"

"मेरे लड़के ने एक धेला निगल लिया, जिसके निकालने के लिए मेरी स्त्री ने पाँच रुपए डॉक्टर को दे दिए।"

❀

कम्पनी का मालिक (नौकरी के उम्मेदवार से)— हमारे यहाँ काम आजकल बहुत कम है। जितने नौकर हैं, उन्हीं को काम देने के लिए नहीं मिलता।

उम्मेदवार—आप इस बात की चिन्ता न कीजिए, मैं बहुत कम काम करूँगा।

❀

एक समाचार-पत्र के सम्पादक के पास एक ग्राहक का पत्र आया, जिसमें उसने लिखा था—आपके पत्र में एक मकड़ी मिली है, यह सौभाग्य की निशानी है या दुर्भाग्य की ?

सम्पादक ने उत्तर में लिख दिया—यह न सौभाग्य की निशानी है न दुर्भाग्य की। मकड़ी हमारे पत्र में यह देख रही थी कि किस कारख़ाने वाले ने अपना विज्ञापन नहीं दिया है ताकि उसके द्वार पर जाला तान कर सदा शान्ति से निवास करे।

❀

ग्राहक—(अत्तार से) मैंने माँगा था कुटका और तुमने दे दिया कुचला। पता है, मेरे भाई की हालत ख़तरनाक है ?

अत्तार—अगर वह कुचला था तो तुम्हारी तरफ़ मेरे चार आने बाक़ी रहे।

❀

चार शराबी रात को जब अपने-अपने घर जाने लगे, तो उन्होंने सलाह की कि प्रत्येक को जाते ही अपनी स्त्री की सबसे पहली आज्ञा को अवश्य ही मानना पड़ेगा। जो नहीं मानेगा, वह दूसरे दिन सबको शराब पिलाएगा।

दूसरे दिन सब एकत्रित हुए और अपनी-अपनी कथा सुनाने लगे। पहला बोला—मैं जैसे ही घर पहुँचा, मेरा धक्का किवाड़ में लगा। इस पर मेरी स्त्री ने कहा— "देख कर काहे को चलोगे, तोड़ डालो किवाड़।" मैंने उसी समय किवाड़ तोड़ डाला।

दूसरा—मैं ज्योंही घर पहुँचा कि मेरे पैर की ठोकर से मेरा हुक़्क़ा गिर पड़ा, इसी पर मेरी स्त्री बोली—"देख कर काहे को चलोगे, तोड़ डालो हुक़्क़ा।" मैंने उसी समय हुक़्क़े के तीन टुकड़े कर दिए।

तीसरा—मैं जैसे ही घर पहुँचा, मेरे हाथ से मेरी घड़ी पृथ्वी पर जा पड़ी। यह देखते ही मेरी स्त्री बोली— "देख कर काहे को चलोगे, तोड़ डालो घड़ी" बस मैंने उसी समय घड़ी को चकनाचूर कर दिया।

चौथा—इससे तो यह मालूम पड़ता है कि आज की शराब मुझे ही पिलानी पड़ेगी।

सब—क्यों, क्या हुआ ?

चौथा—जब मैं घर पहुँचा तो पैर रपटने के कारण मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा। मेरी स्त्री देखते ही बोली— "देख कर काहे को चलोगे, तोड़ डालो गर्दन!"

❀

"मेरी माता तो मुहल्ले भर में सबसे सुन्दरी समझी जाती थीं और मैं उनकी पुत्री हूँ।"

"ओहो, तो तुमने अपना रूप पिता से पाया है!"





"फ़लसफ़ए हस्ती"

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

रुबाई

एक-एक से कहती है ज़बाने हस्ती,
बेकार हैं सब नामो निशाने हस्ती।
सौदा[1] न हो सौदा न करो ऐ "बिस्मिल",
बढ़ जायगी एक रोज़ दुकाने हस्ती।

❀

रहने का नहीं सोज़ो गुदाज़े[2] हस्ती,
मालूम हुआ मरने पे राज़े[3] हस्ती।
गो नग़मे[4] हैं दिलचस्प मगर ऐ "बिस्मिल",
टूटेगा किसी रोज़ यह साज़े हस्ती।

❀

दुनिया के दिखाने को है दामे[5] हस्ती,
है नाम फ़क़त कुछ नहीं नामे हस्ती।
कहता था यह साक़ीये अज़ल[6] ऐ "बिस्मिल",
क्या सोच के तुम पीते हो जामे हस्ती।

❀

पाया न किसी ने भी सुराग़े हस्ती,
दुनिया ने पिया भर कर अयाग़े[7] हस्ती।
झोंका जो कभी मौत का आया "बिस्मिल",
गुल हो गया दम-भर में चराग़े हस्ती।

१—पागलपन, २—सङ्कट, ३—भेद, ४—राग, ५—जाल, ६—ईश्वर, ७—प्याला।

क्या कहें कैसी ज़या बारी[1] की,
जैसा था, वैसी ज़या बारी की।
जगमगा उट्ठी है हिन्दी दुनिया,
"चाँद" ने ऐसी ज़या बारी की॥
क्या अजब फैले ज़या[2] घर-घर में,
दिल में क्या घर करे, यह पत्थर में।
होगया दूर अँधेरा "बिस्मिल",
"चाँद" रौशन है ख़ुदाई[3] भर में॥
रात-दिन फ़िक्र में रहना क्या है,
जानता ही नहीं, गहना क्या है।
ख़ूब रौशन है यह सब पर "बिस्मिल",
"चाँद" है चाँद का कहना क्या है॥

× × ×

हर वक्त मुयस्सर हो नज़ारा तेरा,
मिलता रहे गिरते को सहारा तेरा।
'बिस्मिल' का मददगार नहीं और कोई,
काफ़ी है उसे सिर्फ़ इशारा तेरा।
मैं यह नहीं कहता किसी क़ाबिल हूँ मैं,
दावा है ग़लत रौनक़े महफ़िल हूँ मैं।
इतना है मगर हाँ, असरे हज़रते "नूह",
बिस्मिल करूँ औरों को वह "बिस्मिल" हूँ मैं।

१—ज्योति बरसाना, २—ज्योति, ३—संसार।

यदि अवसर दिया जाय तो 'अबलाएँ' क्या नहीं कर सकतीं ??



पटा भाँजने का अभ्यास करते हुए सेवा-दल की महिलाएँ

बम्बई के नव-निर्मित सेवा-दल की कुछ सदस्याएँ, जो एक विशेषज्ञ से लाठी चलाने की शिक्षा पा रही हैं



फ़ौजी क़वायद करते हुए गुजरात विद्यापीठ के कुछ निस्पृह स्वयंसेवक— सम्भावनीय-महायुद्ध के लिए जिनका सङ्गठन अभी से आरम्भ हो गया है

यदि अवसर दिया जाय तो 'अबला' कही जाने वाली क्या नहीं कर सकतीं ??



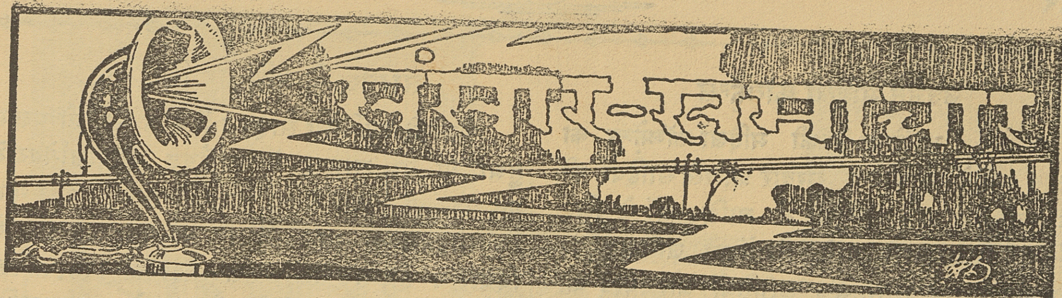
गुजरात विद्यापीठ की महिला स्वयं-सेविकाएँ, जिन्हें लाठी चलाने की शिक्षा दी जा रही है

यदि अवसर दिया जाय तो 'अबलाएँ' क्या नहीं कर सकतीं ??



लाठी चलाने का अभ्यास करते हुए सेवा-दल की वीर रमणियाँ

अभ्यासार्थ लाठी से लड़ने के लिए तैयार खड़ी हुई सेवा-दल की वीराङ्गनाएँ



माहेश्वरी समाज में विधवा-विवाह

अकोला के श्रीभारतीय जैन-विधवा रक्षा-विभाग की ओर से श्रीमान सेठ वैकुण्ठलाल मुन्दड़ा माहेश्वरी का, श्रीमती काशीबाई चावडक से पुनर्विवाह हुआ। विवाह-संस्कार में अनेक सम्भ्रान्त व्यक्ति उपस्थित थे। वर-वधू ने ४००) इस अवसर पर दान दिया।

❃

श्रीमती बेसेण्ट हिन्दू-धर्म में जन्म लेंगी

डॉ० एनी बेसेण्ट इन दिनों बहुत बीमार हैं। यूँ भी आपकी अवस्था बहुत हो गई है। आपने यह कहा है कि मेरा इस जन्म का कार्य समाप्त हो गया। अब मैं हिन्दू-धर्म में जन्म लूँगी और भारत के निर्माण का कार्य करूँगी।

❃

बौद्धों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

बनारस के निकट बौद्धों के प्राचीन तीर्थ-स्थान सारनाथ में नवीन 'बुद्ध-विहार' की स्थापना हुई है। गत १७ नवम्बर को उसका उद्घाटन संस्कार बहुत धूम-धाम से हुआ। उस अवसर पर चीन, जापान, स्याम, कम्बोडिया, तिब्बत, लङ्का, बर्मा आदि समस्त देशों के बौद्ध प्रतिनिधि पधारे थे। भारत की हिन्दू-महासभा और कॉङ्ग्रेस के प्रतिनिधि भी उसमें सम्मिलित हुए थे।

❃

देशी राज्य

जयपुर में किसानों को माफ़ी

जयपुर महाराजा के पुत्र होने की ख़ुशी में मण्डावा (शेखावाटी) के जागीरदार ने अपनी जागीर के किसानों का दस हज़ार रुपए का लगान माफ़ कर दिया।

❃

मैसोर प्रजा की बेचैनी

मैसोर राज्य की प्रजा-परिषद में प्रजा की ओर से यह माँग पेश की गई है कि राज्य में आर्थिक सङ्कट को दूर करने के लिए बड़े-बड़े सरकारी अफ़सरों की तनख़्वाहें घटाई जायँ।

मैसोर सरकार ने आर्थिक सङ्कट को दूर करने के लिए अपने निजी ख़र्च में से दो लाख रुपए कम कर दिए हैं।

❃

काश्मीर राज्य पर सङ्कट

काश्मीर राज्य को इधर पिछले कई महीने से मुसलमान नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। राज्य में मुस्लिम-अधिकारों की रक्षा की आड़ में यह सब किया जा रहा है। पहिले के और उपद्रवों के अतिरिक्त इस मास में काश्मीर पर वहाँ के और ब्रिटिश भारत के मुसलमानों ने मिल कर बड़ा ज़बरदस्त हमला किया। परिस्थिति इतनी भयङ्कर हो गई कि महाराजा को उपद्रवियों को शान्त करने के लिए भारत-सरकार से फ़ौज की सहायता लेनी पड़ी। अङ्गरेज़ी फ़ौज के पहुँचने पर काश्मीर में शान्ति स्थापित हुई। महाराज ने मुस्लिम माँगों की जाँच करने के लिए पहिले भी कमीशन बैठाए थे, किन्तु इस उपद्रव के बाद राज्य के बाहर के एक अङ्गरेज़ की अध्यक्षता में एक जाँच-कमीशन फिर बैठाया है। इतना सब होते हुए भी मुसलमानों ने पूर्ण रूप से अपना आन्दोलन बन्द नहीं किया है। सब लोग कमीशन की रिपोर्ट का उत्सुकता के साथ इन्तज़ार कर रहे हैं।

❃

उज्जैन महिला कॉन्फ़्रेन्स

उज्जैन (ग्वालियर) की महिला-कॉन्फ़्रेन्स का द्वितीय अधिवेशन श्रीमती सरदार फ़ालसे साहिबा की अध्यक्षता में हुआ। कॉन्फ़्रेन्स में बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा जारी करने, स्त्रियों को जायदाद पर अधिकार दिलाने, सामाजिक कुरीतियों और परदे को दूर करने, बाल-विवाह दूर करने के लिए ग्वालियर राज्य को बधाई देने आदि के प्रस्ताव पास हुए।

❁

विदेश

स्पेन के बादशाह को जन्म-क़ैद

स्पेन में बलवे के बाद जो नई राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई है, उसने स्पेन के पदच्युत बादशाह अलफ़ैन्ज़ो को आजन्म-क़ैद और उनकी समस्त सम्पत्ति ज़ब्त कर लेने की सज़ा दी है। सज़ा सुनाते समय यह भी कहा गया है कि यदि सरकार ने फाँसी की सज़ा रद्द न कर दी होती, तो अलफ़ैन्ज़ो को वही सज़ा दी जाती। अलफ़ैन्ज़ो स्पेन छोड़ कर विदेश भाग गए हैं।

❁

धन पाने की ख़ुशी में बुड्ढी की मृत्यु !

पेरिस में रहने वाली ७१ वर्ष की एक आयरिश बुड्ढी को एक वकील ने ख़बर भेजी कि उसका कोई सम्बन्धी उसके लिए ८ हज़ार पौण्ड उत्तराधिकार में छोड़ गया है। यह समाचार पाकर बुड्ढी ख़ुशी के मारे उसी वक़्त मर गई। उस बुड्ढी ने अब तक सारी उम्र बड़ी ग़रीबी में बिताई थी।

❁

ज़मीन के अन्दर से नगर निकला

दक्षिण अफ़्रिका के हीलब्रोन ऑरेञ्ज फ़्री स्टेट के निकट ज़मीन के अन्दर से एक प्राचीन नगर निकला है। नगर दो मील लम्बा और आध मील चौड़ा है। उसमें मनुष्यों की कुछ दफ़नाई हुई लाशें भी मिली हैं, जिनसे मालूम होता है कि ये लाशें मनुष्य जाति के आदि-काल की हैं।

साइप्रस के अधिकार छिन गए

अङ्गरेज़ी उपनिवेश साइप्रस में हाल में जो बलवा हुआ था, उस सम्बन्ध में इङ्गलैण्ड की पार्लामेण्ट में एक प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से कहा गया कि साइप्रस के शासन-विधान पर जब तक फिर से विचार न हो, तब तक के लिए वहाँ की व्यवस्थापिका कौन्सिल रद्द कर दी गई है और उसके समस्त अधिकार गवर्नर को दे दिए गए हैं। यह भी कहा गया कि जिन लोगों ने बलवा किया था, उन्हीं से सब हर्जाना वसूल किया जायगा।

❁

चीन के पदच्युत सम्राट क्या फिर राज्य स्थापित करेंगे ?

चीन के पदच्युत सम्राट जापान की सहायता से अपना राज्य फिर स्थापित करना चाहते हैं। मन्चूरिया की राजधानी मुकदन में राज्य की स्थापना करने का प्रयत्न हो रहा है। चीन सम्राटशाही के विरुद्ध है। उस दिन किसी चीनी ने सम्राट के पास फूलों की एक डाली भेंट-स्वरूप भेजी, जिसमें छिपा कर एक बम रख दिया गया था। संयोगवश एक नौकर ने उसे पहले ही देख लिया और सम्राट बच गए।

❁

यूरोप में स्वदेशी पर ज़ोर

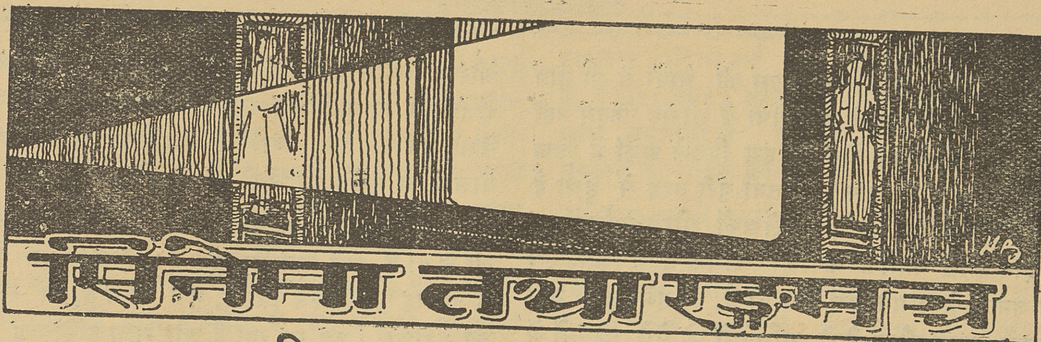
यूरोपीय देशों में अपने ही देश की बनी हुई चीज़ें प्रयोग करने पर सर्वत्र ज़ोर दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध में इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, टर्की आदि देश सब से आगे हैं। इन देशों में विदेशों से आने वाले मालों पर भारी-भारी महसूल लगाए गए हैं।

❁

ख़लीफ़ा की लड़की की शादी

टर्की के पदच्युत ख़लीफ़ा की शाहज़ादी की शादी हैदराबाद के निज़ाम के युवराज से गत १२ नवम्बर को फ़्रान्स के नीस नगर में हो गई। शादी के समय विचित्र बात यह हुई कि शाहज़ादी स्वयं उपस्थित नहीं हुई थी, उसकी तरफ़ से अन्य पुरुषों ने स्वीकृति दे दी।





कुछ नए फ़िल्म

'नूरजहाँ'

आजकल जितने फ़िल्म बन रहे हैं, उनमें से ऐसा कोई भी नहीं, जिस पर भारतीय फ़िल्म-कम्पनियों को अभिमान हो सके। 'नूरजहाँ' के विज्ञापनों का बहुत ज़ोर-शोर था। जनता को यह बताया जा रहा था कि इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी का यह फ़िल्म आश्चर्य-जनक होगा। यहाँ तक सुना गया था कि इम्पीरियल इसका अङ्गरेज़ी का संस्करण भी तैयार कर रही है, जो विदेशों में दिखाया जायगा। परन्तु जहाँ-जहाँ यह फ़िल्म दिखाया गया है, वहाँ के समाचारों से यह विदित होता है कि इम्पीरियल को इस फ़िल्म के बनाने में बहुत कम सफलता मिली है। इसे बोलता फ़िल्म बना कर इसका नाश कर दिया गया है। हमने अभी तक यह फ़िल्म नहीं देखा, अतः हम कह नहीं सकते कि कहाँ तक ये सम्मतियाँ ठीक हैं। परन्तु यदि ये ठीक हैं, तो हमें बड़ा आश्चर्य और साथ ही दुःख भी होगा। आश्चर्य इसलिए कि इसके डाइरेक्टर श्री० ऐज़रा मीर उन इने-गिने भारतीय डाइरेक्टरों में से हैं, जो सिनेमा की कला के एक विशेषज्ञ हैं। साथ ही उन्होंने कई वर्ष तक होलीवुड में रह कर कार्य किया है। दुःख हमें इसलिए होगा कि हम अभी तक इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी को भारत की सर्वश्रेष्ठ कम्पनी समझते रहे हैं। हमें आशा है कि इम्पीरियल कम्पनी के मालिक तथा मि० ऐज़रा मीर भविष्य में प्रथम श्रेणी के फ़िल्म बनाने का ही उद्योग करेंगे। दूसरी और तीसरी श्रेणियों के फ़िल्म बनाने के लिए तो भारत में अनेक कम्पनियाँ हैं।

'देवी देवयानी'

रणजीत फ़िल्म कम्पनी ने अपने कुछ बेबोलते फ़िल्मों के लिए अच्छा नाम कमाया था और हमें आशा थी कि उसके बोलते फ़िल्म भी उच्चता के उसी दर्जे तक पहुँचेंगे। परन्तु जब हमने उनके बोलते फ़िल्म 'देवी देवयानी' को देखा, तो हमें इतनी निराशा हुई, जितनी किसी भारतीय फ़िल्म को देख कर नहीं हुई थी। इस निराशा का अधिक अनुभव हमें इसलिए और हुआ कि उसमें 'गौहर' जैसी प्रसिद्ध अभिनेत्री ने काम किया है। हम निःशङ्क होकर कह सकते हैं कि हम गौहर को ऐसे घटिया फ़िल्म में नहीं देखना चाहते थे।

इस फ़िल्म की सब से बड़ी बुराई है, इसका कथानक। हमें बताया गया है कि कथानक के लेखक हैं पं० बेताब। हमें यह जान कर बड़ा दुःख हुआ है। पं० बेताब ने कुछ नाटक लिख कर अच्छी ख्याति पाई थी, परन्तु इस फ़िल्म का कथानक लिख कर उन्होंने दिखा दिया है कि वह फ़िल्मों के लिए अच्छी कहानियाँ तथा सीनारियो नहीं लिख सकते। कथा इतनी असम्बद्ध है, इतनी अपूर्ण है और सिनेमा की कला से इतनी शून्य है कि हम इन पुराने ढर्रे के लेखकों से यही प्रार्थना करेंगे कि वे इस क्षेत्र में आने का कष्ट न करें। यदि वे आना ही चाहते हैं, तो उन्हें आधुनिक ढङ्ग से चरित्र-चित्रण करने की कला को सीखना चाहिए। हम फ़िल्म कम्पनियों से भी अनुरोध करेंगे कि वे हिन्दी के आधुनिक लेखकों से अपनी कथाएँ लिखवाएँ और उन्हीं लेखकों के पीछे न पड़ें, जो दक़ियानूसी पारसी कम्पनियों के लिए नाटक लिखा करते थे। हिन्दी में, ईश्वर की कृपा से, ऐसे औपन्यासिक तथा लेखक हैं, जिनकी कृतियाँ सिनेमा के पर्दे की शोभा बढ़ा सकती हैं।

कथानक के अतिरिक्त फ़िल्म की भाषा में भी दोष है। साथ ही ऐक्टिङ्ग के उन दोषों से भी यह फ़िल्म नहीं बच पाया है, जिनके विषय में हम पिछले अङ्कों में लिख चुके हैं। कथा का अन्त भी इतनी बुरी तरह से हुआ है कि हँसी आती है। यदि इन लेखकों और कम्पनियों का उद्देश्य केवल धार्मिक कथाओं को किसी न किसी रूप में जनता के सामने रख देना ही है, तो हमें कुछ नहीं कहना, परन्तु गौहर जैसी अभिनेत्री को ऐसे फ़िल्मों में फँसा देना कहाँ तक उचित है, इसका निर्णय हम रण-जीत फ़िल्म कम्पनी पर ही छोड़ते हैं।

'हरिश्चन्द्र'

बोलते फ़िल्मों का भारत में प्रचार क्या हुआ, कम्पनियों ने धार्मिक फ़िल्म बनाने का ठेका ले लिया है। यही होता, तब भी ग़नीमत थी। एक ही कथा को लेकर कई कम्पनियाँ अपने फ़िल्म बनाती हैं और इन फ़िल्मों का कथन, भाषा, बातचीत आदि लिए जाते हैं उन नाटकों से, जो पारसी कम्पनियों द्वारा कई वर्ष पहले बम्बई और कलकत्ते में खेले जाते थे। एक ही नाम के फ़िल्म बनाने की प्रतियोगिता इन कम्पनियों के दोषों को भली-भाँति जनता पर प्रकट कर देती है। एक तो इससे व्यापार की प्रतियोगिता झलकती है। दूसरे इससे यह पता चलता है कि इन कम्पनियों को आधुनिक समाज सम्बन्धी कहानियाँ नहीं मिलतीं।

इसी प्रकार के फ़िल्म हैं, जिनका नाम 'हरिश्चन्द्र' है। एक इनमें से कृष्ण फ़िल्म कम्पनी का है, दूसरा मदन थिएटर्स का। मदन थिएटर्स का फ़िल्म अभी हमने नहीं देखा, अतः उसके विषय में हम फिर कभी लिखेंगे। कृष्ण फ़िल्म कम्पनी का 'हरिश्चन्द्र' हमने देखा है और हम कह सकते हैं कि इस फ़िल्म को देख कर भी हमें उतनी ही निराशा हुई, जितनी 'देवी देवयानी' को देख कर हुई थी। अस्वाभाविकता की तो इस फ़िल्म में हद होगई है। भाषा भी बहुत दूषित है। ऋषियों के मुख से उर्दू के शब्द और साधारण व्यक्तियों के मुख से हिन्दी के क्लिष्ट शब्द सुनाना इसके लेखक की लेखनी का चमत्कार है। मिस नीलम का न तो एक्टिङ्ग ही हमें पसन्द आया और न गाना ही। हमारी समझ में नहीं आया कि मिस नीलम को ऐसा प्रमुख और आवश्यक पार्ट कम्पनी ने क्या समझ कर दिया! राजकुमार का पार्ट जिस बालक ने किया है, उसका कार्य सराहनीय है। इस कम्पनी के डाइरेक्टर चाहें, तो इस बालक को एक प्रथम श्रेणी का अभिनेता बना सकते हैं।

'हरिश्चन्द्र' में एक बड़ा भारी दोष यह है कि जहाँ जी चाहा है, वहीं गाने भर दिए हैं। ऐसा विदित होता है कि वह एक फ़िल्म क्या है, एक स्वाँग है, या सङ्गीत की महफ़िल। पुत्र मर रहा है और राजा हरिश्चन्द्र गलेबाज़ी करके अपनी सङ्गीत-निपुणता का परिचय दे रहा है। जब कम्पनियों के सामने यह आपत्ति की जाती है, तो उत्तर मिलता है कि जनता अधिक से अधिक गाने एक फ़िल्म में सुनना चाहती है। हम यह बात कभी नहीं मान सकते कि फ़िल्म देखने वाली जनता इतनी मूर्ख है कि अवसर-बेअवसर प्रत्येक स्थान पर गाने सुनना चाहेगी। यदि कोई विदेशी इन फ़िल्मों को देखे, तो उसे भारतीय फ़िल्मों से एक साथ घृणा हो जाय। विदेशी ही क्यों, यही हाल हमारे देश के शिक्षित समुदाय का है। बहुत कम उनमें से भारतीय फ़िल्म देखने जाते हैं, क्योंकि मनोरञ्जन होना तो अलग, तीन घण्टे सिनेमा में बैठ कर काटना दूभर हो जाता है। इसका उत्तरदायित्व फ़िल्म के लिए कहानी लिखने वालों का तो है ही, पर सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है डाइरेक्टरों का। इन छोटी-छोटी बातों का विचार करना उनका कर्तव्य है। परन्तु भारतीय फ़िल्म कम्पनियों में डाइरेक्टर होने का स्टैण्डर्ड ही कुछ और है, जिसे वे सभी जानते हैं, जिनका थोड़ा-सा सम्बन्ध भी फ़िल्म कम्पनियों से है।

❀ ❀ ❀

फ़िल्म-कम्पनियाँ और प्रेस

जब हम इन फ़िल्मों का वृत्तान्त लिखते हैं, तो हमें एक विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। वह है फ़िल्म कम्पनियों और प्रेस का सम्बन्ध। हमारे यहाँ की फ़िल्म कम्पनियाँ इस बात की परवाह नहीं करतीं कि उनके फ़िल्मों की कैसी समालोचना हो रही है। विदेशों में समालोचकों की बड़ी भारी शक्ति है। वे जिस फ़िल्म को बुरा कह दें, उसकी असफलता में तनिक भी सन्देह नहीं। जिस सिनेमा में वह दिखाया जायगा, उसमें

बहुत कम दर्शक जायँगे। भारत में यह बात नहीं। एक कारण इसका यह भी है कि फ़िल्मों की सच्ची समालोचना होती भी नहीं। चूँकि समाचार-पत्रों में सिनेमाओं के विज्ञापन छपते हैं, अतः समाचार-पत्र वाले उन सिनेमाओं में आने वाले प्रत्येक फ़िल्म की प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं, चाहे वह फ़िल्म कौड़ी काम का भी न हो। इस प्रकार वे समाचार-पत्र कुछ रुपए अवश्य कमा लेते हैं, परन्तु सिनेमा के उद्योग-धन्धे को इससे कितनी हानि होती है, यह अकथनीय है। हमें आशा है कि भविष्य में प्रेस वाले फ़िल्मों की सच्ची समालोचना किया करेंगे, ताकि कम्पनियों को अपनी भूलें मालूम करने तथा उन्हें सुधारने के लिए विवश होना पड़े।

❀ ❀ ❀

श्री० सतीशचन्द्रसिंह

हमें हर्ष है कि रोहली, यू० पी० निवासी श्री० सतीशचन्द्रसिंह (जिनकी लिखी समालोचना पाठक इस स्तम्भ में देखेंगे) शीघ्र ही अमेरिका को सिनेमा की विविध प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने जा रहे हैं। बहुत कम भारतीयों का ध्यान इस प्रकार की शिक्षा की ओर आकर्षित हुआ है और संयुक्त प्रान्त से इस शिक्षा के लिए विदेश जाने वालों की संख्या नहीं के बराबर है। ऐसी दशा में हम सतीशचन्द्र जी को इस निश्चय पर बधाई देते हैं और उनकी सकुशल यात्रा के लिए कामना करते हैं।

❀ ❀ ❀

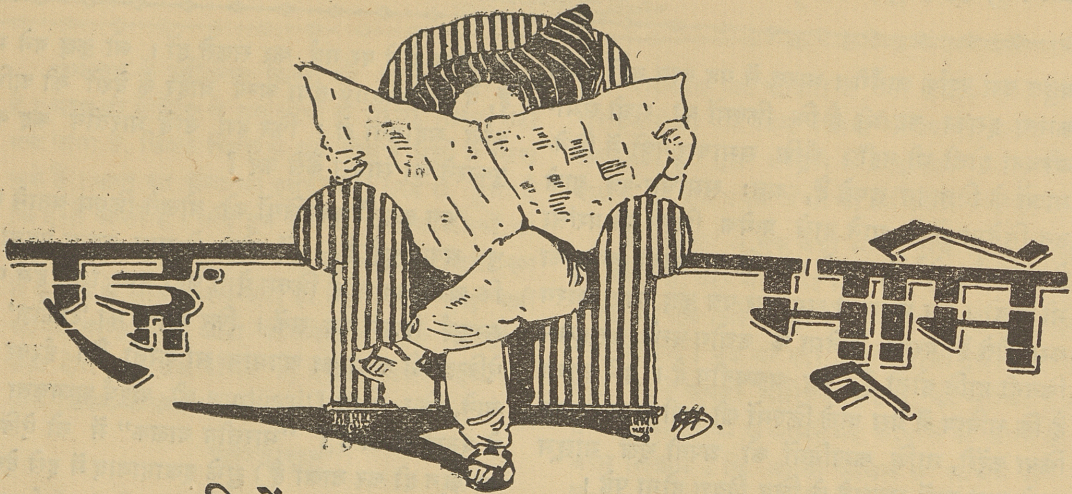
मदन कम्पनी के बोलते हुए फ़िल्म

भारतीय Film Industry की जो दशा है, वह तो सबके सम्मुख ही है। जब हम यहाँ की फ़िल्म कम्पनियों की संख्या का ध्यान रखते हुए, कला की दृष्टि से, भारतीय फ़िल्मों की सफलता पर विचार करते हैं, तो आश्चर्य के साथ ही हमारा हृदय क्षोभ से भर जाता है। आज तक बने हुए फ़िल्मों में कदाचित ही कोई ऐसा हो, जिसे हम सफल कह कर, उसके भारतीय होने पर गर्व कर सकते हों। जो कुछ बने भी हैं, वे Germany तथा अन्य बाहर के देशों की अधिकांश सहायता से। फिर हम उन्हें भारतीय कह कर पुकारने का साहस कैसे करें?

अब हमारी कम्पनियों को बोलते फ़िल्म बनाने की धुन सवार हुई है। हमें शोक के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक कोई फ़िल्म ऐसा नहीं बना, जिसे हम एक सम्पूर्ण फ़िल्म कह सकें। फिर मदन की 'टॉकीज़' तो ऐक्टिङ्ग की कला का अपमान सा करती हैं। ईश्वर ही जाने, किन योग्य Directors की अपूर्व अध्यक्षता में वे बनाई जाती हैं? "भारतीय बालक" में तो ऐक्टिङ्ग का ख़ून ही कर डाला है। मुझे इलाहाबाद में इसे देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। सौभाग्यवश या दुर्भाग्यवश, उस समय मेरे साथ श्रीमती रागिनी देवी (जो अमेरिका से भारतवर्ष पधारी हैं) भी थीं, क्योंकि उन्होंने एक भारतीय Talkie देखने की तीव्र उत्कण्ठा प्रकट की थी। कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि उन्हें बड़ी निराशा हुई। असंख्य अप्राकृतिक दृश्यों के अतिरिक्त, एक स्थान पर एक महाशय के गोली लगती है। बड़ी देर तक तो वह खड़े ही रहते हैं—कदाचित सोचते हों कि किस भाँति गिरने में अधिक सुविधा होगी। फिर जिस प्रकार गिरते हैं, वह इसी से ज्ञात हो जायगा कि श्रीमती रागिनी देवी अत्यन्त खिन्न होकर कह उठीं "Thats right. Take care, sure, your body is not injured!" इसके पश्चात् ही उन्होंने मुझसे कहा—"चलिए, मुझे और भी कार्य हैं।" एक भारतीय फ़िल्म को देख कर जितना क्षोभ मुझे उस दिन हुआ, उतना और कभी नहीं हुआ था।

बोलते फ़िल्म एक नवीन खोज हैं। उनकी नवीनता के लिए ही आज सर्वसाधारण में उनकी इतनी माँग है। इस नवीनता के चले जाने के पश्चात् उसकी माँग कम होने लगेगी। फिर यदि कम्पनियों ने ऐसे ही फ़िल्म जनता के सम्मुख रक्खे, तो ईश्वर ही उनका भला करे।

—सतीशचन्द्र सिंह



स्मृति में—

पिछले महीने देश भर में वह पुण्य-तिथि मनाई गई थी, जब प्रातःस्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज एक मुस्लिम आततायी के हाथों शहीद हुए थे। उस दिन को गए आज कई वर्ष हो गए, तब से प्रत्येक वर्ष हम उस वीरात्मा के नाम पर सभाएँ करके या लेखों तथा भाषणों द्वारा अपना कर्तव्य पूरा कर देते हैं, परन्तु क्या हमारा कर्तव्य यहीं पर समाप्त हो जाता है? क्या हमें कभी यह विचार हुआ है कि स्वामी श्रद्धानन्द हमारे लिए क्या आदर्श रख गए हैं? क्या कभी हमने इस बात की परीक्षा की है कि हम उस आदर्श के अनुसार कुछ कार्य कर रहे हैं या नहीं?

स्वामी जी जब तक जिए, तब तक देश, समाज और धर्म के लिए अपूर्व कार्य करते रहे। उनके किए हुए कार्य आज भी उनका यश-गान कर रहे हैं। परन्तु दुःख यही है कि देशवासी उनके आदर्श के अनुसार एक भी काम नहीं कर रहे हैं।

स्वामी जी का सबसे प्यारा मिशन था अछूतोद्धार। जो कुछ उन्होंने अछूतों के लिए किया, वह भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। परन्तु अभी तक हमने उनके मिशन के अनुसार कुछ भी कार्य नहीं किया। अब भी स्थान-स्थान पर अछूतों के साथ हम घृणित और अन्याय्य व्यवहार करते हैं। अछूतों को मिलाना तो अलग, हम उन्हें अपने से और भी दूर भगा रहे हैं। यहाँ तक कि अछूत अब अपने को हिन्दू कहलाना ही नहीं चाहते। हम पर अविश्वास तो उनका इतना है कि प्रत्येक संस्था में वे अपने लिए अलग स्थान चाहते हैं।

स्वामी जी ने जिस हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए इतना कार्य किया और अन्त में अपने प्राण भी दिए, उसको छिन्न-भिन्न होते देख कर किसके हृदय को दुःख न होगा। हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए स्वामी जी का कार्य अन्य नेताओं के समान नहीं था। वे दोनों धर्मों में एकता चाहते थे, परन्तु साथ ही दोनों के जन्म-सिद्ध अधिकारों की वे रक्षा भी करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने शुद्धि का कार्य प्रारम्भ किया था। परन्तु कुछ व्यक्तियों ने उनके उद्देश्य को पूर्णतया नहीं समझा और इसीलिए लोगों ने स्वामी जी पर इतना लाञ्छन लगाया। परन्तु वास्तव में ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी का उद्देश्य न्यायोचित तथा तर्कपूर्ण था। जब तक धार्मिक स्वतन्त्रता न होगी, तब तक दो धर्मों में सच्चा ऐक्य हो ही नहीं सकता। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों पर विश्वास कर ही नहीं सकते। यह एक ऐसा सत्य है, जिसका खण्डन हो ही नहीं सकता।

आज अछूतों की समस्या और भी जटिल हो गई है तथा हिन्दू-मुसलमानों का वैमनस्य उग्र रूप धारण करता जा रहा है। फिर भी हम सबको यह आशा करनी चाहिए कि उस महापुरुष का रक्त व्यर्थ न जायगा और निकट-भविष्य में ही उसके मिशन की पूर्ति होगी।

उदारता

पिछली संख्या में हमारी 'न्याय ?' शीर्षक टिप्पणी को पढ़ कर अजमेर से श्री० रामेश्वर-प्रसाद जी ओझा लिखते हैं :—

"मैंने आपके पत्र में 'न्याय' नामक लेख पढ़ा है और मैं उस अभागी बालिका के पालन-पोषण का भार लेने के लिए सहर्ष तैयार हूँ। यदि आप लिखें तो मैं उसका किराया तथा अन्य व्यय भेज सकता हूँ।"

हम श्री० ओझा जी को उनकी इस उदारता के लिए धन्यवाद देते हैं। उक्त बालिका इस समय मेरठ के कलक्टर के अधिकार में है। हमें बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि उसका पालन-पोषण श्री० ओझा जैसे किन्हीं उदार तथा हितैषी सज्जन के यहाँ हो।

एक विचारणीय प्रश्न

कुछ दिन हुए, डफ़रिन फ़ण्ड, विक्टोरिया मैमोरियल स्कॉलरशिप फ़ण्ड तथा लेडी चेम्सफ़ोर्ड लीग नाम की संस्थाओं ने सम्मिलित रूप से एक कमिटी इसलिए नियुक्त की थी कि वह शिशुओं की मृत्यु के कारणों पर विचार करे तथा अपने अन्वेषण और अध्ययन के आधार पर उक्त संस्थाओं के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करे।

इस कमिटी ने मद्रास, कलकत्ता और बम्बई के नगरों में लगभग २०० ऐसी मृत्युओं की जाँच की और उस जाँच से निम्न-लिखित निष्कर्ष निकाला :—

मृत्यु का कारण	प्रतिशत
प्रसव की कठिनाइयाँ	१६·५
आतशक	१८·५
अन्य कारण...	६२·०

इन अङ्कों पर ध्यान देने से पता चलता है कि इन नगरों में जितने शिशुओं की मृत्यु होती है, उनमें से सैकड़ा पीछे बीस केवल इसलिए काल के गाल में जाते हैं कि प्रसव के पूर्व, प्रसव के समय तथा प्रसव के अनन्तर उनकी माताओं की समुचित रूप से देख-रेख नहीं हुई। प्रसव के कई मास पूर्व ही स्त्रियों की डॉक्टरी परीक्षा कराने का महत्व अभी हम लोगों ने बहुत कम समझ पाया है। विदेशों में 'मैटर्निटी तथा ऐण्टीनेटल क्लिनिक' (Maternity and Antenatal Clinics) प्रायः प्रत्येक स्थान पर खुल गई हैं। इन संस्थाओं की सहायता उन देशों की सरकार कई प्रकार से करती है। यही नहीं, जनता को इन संस्थाओं की उपयोगिता बताने के लिए काफ़ी आन्दोलन किया जाता है। परन्तु हमारे यहाँ ऐसी संस्थाएँ केवल बड़े-बड़े नगरों में ही हैं। उनसे भी सर्वसाधारण लाभ नहीं उठाते। धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों के कारण नवयुवती माताएँ अपने गर्भ के विषय में एक डॉक्टर के पास जाना तो अलग, अपने सम्बन्धियों से बातें करना भी ठीक नहीं समझतीं। इसका फल यह होता है कि यदि उनकी योनि में या उनके शरीर के अन्य भागों में कोई दोष होता है, तो उसका उपचार समय पर नहीं हो पाता। इसी कारण प्रसव के समय की उनकी कठिनाइयाँ शक्ति से बाहर की बात हो जाती हैं और या तो माता को या नवजात शिशु को और या फिर दोनों को ही मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश में भी प्रत्येक स्थल पर विदेशों की भाँति संस्थाएँ हों, जहाँ प्रत्येक माता समय-समय पर अपनी परीक्षा कराने जाय। ऐसी परीक्षा कराने से अनेक लाभ होते हैं, जिनका दिग्दर्शन इन पंक्तियों में नहीं कराया जा सकता।

प्रसव के समय हमारी माताओं की जो दुर्दशा होती है, वह बड़ी दुखदायिनी है। अब भी प्रसव उसी दक़ियानूसी रूप से होता है। प्रसव कराने के समय मेहतरानी अपना गन्दा हँसिया लेकर, गन्दे वस्त्र पहने आती है और बच्चे का नार काटती है। न माता की ही स्वच्छता पर ध्यान दिया जाता है और न बच्चे ही की पर। दोनों को पुराने गन्दे वस्त्र देकर घर के एक कोने में डाल दिया जाता है, जहाँ जाना घर के अन्य व्यक्ति अपवित्रता का चिह्न समझते हैं। भाग्यवश कोई दुर्घटना न हुई तो कुशल समझिए। नहीं तो, यदि कोई दुर्घटना हो गई, बच्चा सरलता से पैदा न हुआ आदि, तो सबके हाथ-पैर फूल गए। सब सहायता के लिए मेहतरानी की

ओर देखते हैं और फल यह होता है कि इन सब कारणों से ही सौ में बीस बच्चे और कम से कम उतनी ही माताएं हमारे समाज के हाथ से चली जाती हैं। अब, जबकि हम विज्ञान के चमत्कारों को समझने लगे हैं और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों को जानने लगे हैं, यह आवश्यक है कि प्रत्येक तहसील और परगने में ऐसे केन्द्र स्थापित किए जायँ, जहाँ शिक्षित दाइयाँ रहें और वैज्ञानिक रीति से ग्रामों की स्त्रियों को प्रसव करावें।

शिशुओं की मृत्यु के दूसरे कारण पर हम यहाँ विस्तृत रूप से विचार नहीं करेंगे। यहाँ इतना ही कहना बस होगा कि हमारे देश के बड़े-बड़े नगरों में आतशक जैसे रोग अधिक स्त्रियों को हैं, बनिस्बत यूरोप के देशों के। इसके प्रमाण-स्वरूप उसी रिपोर्ट में प्रकाशित हुए निम्न-लिखित अङ्क पाठकों के सामने रक्खे जाते हैं।

आतशक के रोगियों के रक्त की परीक्षा से यह पता चल जाता है कि उन्हें यह रोग हो चुका है। अनेक स्त्रियों की इस प्रकार की परीक्षा इङ्गलैण्ड के कुछ नगरों में हुई थी, और भारत के बम्बई-मद्रास जैसे नगरों में हुई थी। ग्लासगो, जहाँ मज़दूर-पेशा लोग ही अधिक रहते हैं, में अनेक स्त्रियों की परीक्षा करने पर पता चला कि उनमें से ९ प्रतिशत को आतशक का रोग हो चुका था। दूसरी ओर बम्बई की कुछ स्त्रियों के रक्त की परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि उनमें से १३ प्रतिशत को यह रोग था। इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि ग्लासगो के मज़दूरों से डेढ़ गुणा अधिक बम्बई के मज़दूरों में इस रोग का अड्डा जमा हुआ है।

दुःख है कि हमारे देश में लोगों ने आतशक और इसी प्रकार के अन्य रोगों की गुरुता को नहीं समझा है। कुछ दिनों की चिकित्सा के बाद वे समझते हैं कि वे ठीक हो गए। परन्तु यह रोग पूरे दो वर्ष तक लगातार चिकित्सा बिना कराए कभी जड़ से नहीं जाता। फल यह होता है कि रोगी स्वयं तो डूबता ही है, साथ ही अपनी स्त्री और अपने बच्चों को भी ले डूबता है। यह रोग ही बीच में गर्भ गिर जाने, पेट से मृत बालक के पैदा होने आदि का प्रमुख कारण है। इन गोपनीय विषयों के बारे में हम फिर कभी लिखेंगे। इस स्थल पर हम केवल यही आशा करते हैं कि जनता शिशुओं की अकाल-मृत्यु के इन कारणों को छानबीन करके इन्हें हटाने का प्रयत्न करेगी।

❀ ❀ ❀

धर्म के नाम पर—

जब से हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य के भाव उत्पन्न हुए हैं, तब से मुसलमान धर्म के नाम पर भाँति-भाँति के आपत्तिजनक तथा किन्हीं अंशों में देश के लिए भयानक कृत्य करते आ रहे हैं। उन सब में काश्मीर के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित करना भी एक है। वे मुसलमान, जो भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का घोर विरोध करते हैं और जो भारत के लिए प्रजातन्त्र राज्य की तीव्र निन्दा करते हैं, काश्मीर में वे ही प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करने के स्वप्न देख रहे हैं, स्वप्न ही नहीं देख रहे, बल्कि उन स्वप्नों को वास्तविकता का रूप देने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन्हीं प्रयत्नों में भोपाल की औरङ्गज़ेब-अन्जुमन का वह नोटिस है, जो कुछ दिन हुए सहयोगी 'कर्मवीर' में प्रकाशित हुआ था। उस नोटिस को हम ज्यों का त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"बिस्मिल्ला रहमान रहीम

एलान-नम्बर ४

"बिरादरान इस्लाम! क्या तुम्हारी रगों में हज़रत अली और हज़रत उमर का .खून बाक़ी नहीं रहा? क्या .खुदा रसूल से तुम्हारा क़ल्ब ख़ाली हो गया, जो काश्मीरी मुसलमानों की कुत्तों जैसी मौत और काफ़िर हरीसिंह का चन्द मुरब्बा गज़ ज़मीन में बन्दगान इस्लाम को घेर-घेर कर जलवाया जाना पढ़ व सुन कर भी .ख्वाबे ग़फ़लत में मख़मूर हो? क्या इस्लाम की आयन्दा नमूद के यही आसार हैं? काश्मीर जैसे अफ़सोसनाक वाक़यात सुन कर भी तुम्हारे कानों पर जूँ तक न रेंगी। यह बुज़दिलापन और कमज़ोरी कहाँ से आ घुसी?

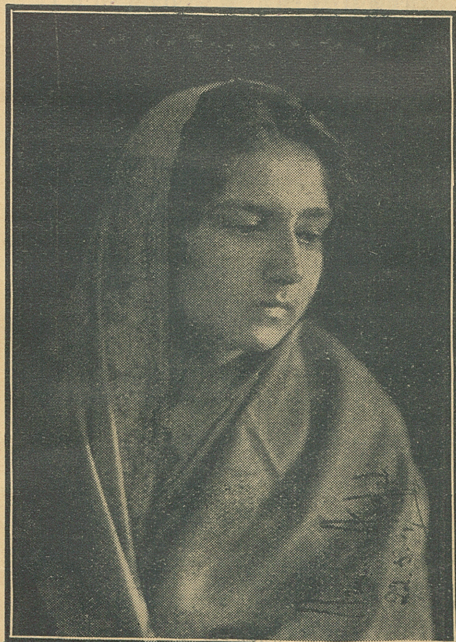
"मुसलमानो, शर्म, शर्म, बड़े शर्म की बात है कि तुम अन्जुमन नसरते इस्लाम को सिर्फ़ चन्द हज़ार रुपया भेज कर ख़ामोश हो गए, तुमको चाहिए कि सन्दूक़ें फिरा-फिरा कर चन्दा जमा करो और ज़्यादा से



श्रीमती दुर्गादेवी निगम। आप रतलाम के राष्ट्र-सङ्घ की सभानेत्री हैं। आपने स्त्रियों का सङ्गठन और उनमें राष्ट्रीय भावों का ख़ूब प्रचार किया है।



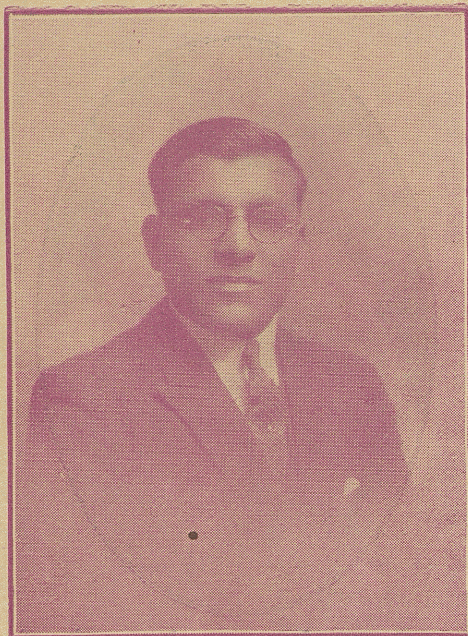
मिस महताब नज़मुद्दीन। आप सीमान्त प्रदेश की एक मुस्लिम महिला-रत्न हैं। वहाँ की सरकार ने आपको एम० बी० बी० एस० की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ४०) प्रति मास छात्रवृत्ति देना स्वीकार किया है।



श्रीमती अरुणा आसफ़अली। आप दिल्ली के प्रसिद्ध बैरिस्टर मि० आसफ़अली की पत्नी हैं। देश-सेवा सम्बन्धी कार्यों में भाग लेने के कारण एक साल की सज़ा भी काट चुकी हैं।



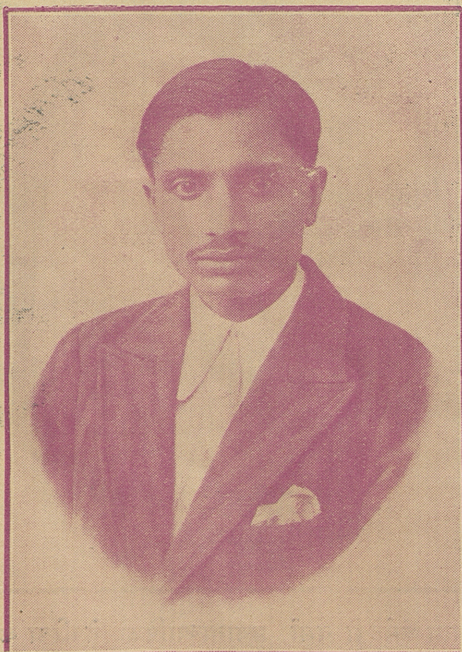
श्रीमती धर्मदेवी वर्मा, प्रधानाध्यापिका नेवरिया कन्या-पाठशाला, फ़तेहपुर (जयपुर)—आप पञ्जाब की महिला-रत्न हैं और इस प्रान्त की पिछड़ी हुई बहिनों में तन-मन से शिक्षा का प्रचार कर रही हैं।



श्री० सी० बी० सिङ्घाल, बी० एस्-सी०, एल० डी० डी० इत्यादि, जो डेनमार्क में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय डेरी-कॉङ्ग्रेस में भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुए थे।



श्री० रा० रमण। आप देहली के उत्साही नवयुवकों में हैं। आपने भारतीय बालक-बालिकाओं की उन्नति के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया है। आप 'चिल्ड्रेन्स न्यूज़' के सम्पादक भी हैं।



श्री० हरिहर व्यास—आप जबलपुर की नौजवान भारत-सभा के सभापति थे और गत वर्ष के आन्दोलन में एक वर्ष की सज़ा भी काट चुके हैं। आप गाँधी-इरविन समझौते के अनुसार छोड़ दिए गए थे।



कुमारी सेन गुप्ता—आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट हैं और पञ्जाब-विश्वविद्यालय से अर्थ-शास्त्र में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की है। साथ ही लाहौर में खुलने वाले 'कॉलेज फ़ार वीमेन' के स्टाफ़ में आ गई हैं।



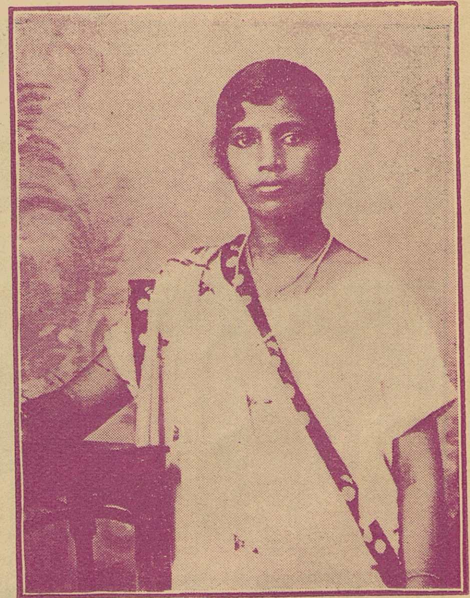
श्रीमती जी० एस० लासर्डो—आप मङ्गलोर (दक्षिण कनाड़ा, मद्रास) की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं। आपको अव्वल दर्जे की मैजिस्ट्रेटी का अधिकार प्राप्त है।



श्रीमती विद्यावती देवड़िया। आप नागपुर स्वयंसेवक-कोर के कप्तान श्री० पन्नालाल जी देवड़िया की धर्मपत्नी हैं। परदा-प्रथा को ठुकरा कर आपने गत वर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था।



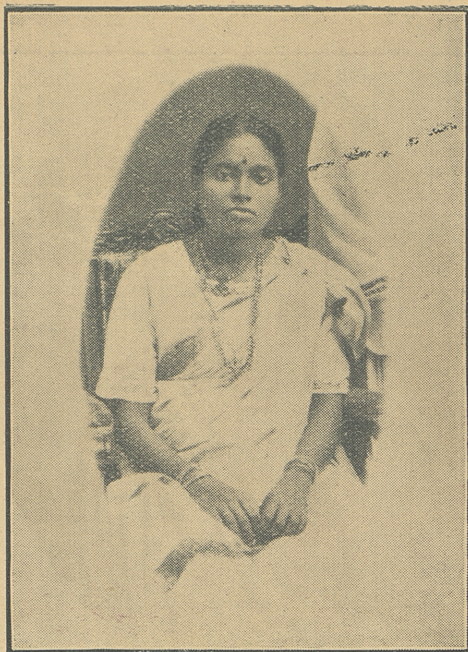
श्रीमती मेरी डीसा। आप दक्षिण कनाड़ा (मद्रास) निवासिनी हैं और हाल में ही कसरागोड नामक स्थान में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त की गई हैं।



कुमारी बी० एम० कोयल्हो, बी० ए०, एल० टी०। आप मङ्गलोर (मद्रास) की सब-इन्स्पेक्ट्रेस ऑफ़ स्कूल्स हैं और डिस्ट्रिक्ट एजुकेशनल कौन्सिल की सदस्या भी निर्वाचित हुई हैं।



श्री० के० गुप्ता, विशारदा—आप लखनऊ निवासिनी अग्रवाल-वंश की महिला हैं और बीकानेर राज्य में कन्या-विद्यालयों की इन्स्पेक्ट्रेस हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने आपको विशारद परीक्षा में सर्व-प्रथम होने के उपलक्ष में 'रानी चम्पावती' पदक भी प्रदान किया था।



श्रीमती सुभद्रा अम्मा। आप त्रिवाङ्कुर राज्य की रहने वाली हैं और आयुर्वेद की 'वैद्य-कलानिधि' परीक्षा में सर्व-प्रथम हुई हैं। इसके उपलक्ष में त्रिवाङ्कुर की महारानी ने आपको एक स्वर्णपदक प्रदान किया है।



कुमारी हरप्यारी माथुर। आप दिल्ली-निवासी श्री० गोविन्दप्रसाद, एम० ए०, एल० टी० की कन्या हैं। आपने ११ वर्ष की उमर में हिन्दी-रत्न की परीक्षा पास की है।



श्रीमती अन्नाचण्डी, बी० ए०, बी० एल०। आप केरल प्रान्त की पहली लेडी एडवोकेट हैं, जो त्रिवाङ्कुर की व्यवस्थापिका परिषद् की मेम्बरी के लिए नामज़द की गई हैं।

ज़्यादा रक़म भेज कर सवाब कमाओ। क्योंकि अब काफ़िरों का दायरा-शरारत शुद्धि से बढ़ कर काश्मीरी हिन्दुओं को इमदाद तक वसीह हो गया है; इसलिए हमारी अन्जुमन ने काफ़िर हरीसिंह और दीगर कुफ़्फ़ार को जहन्नुम रसीद कर, दुनिया को निजात दिलाने का तहैया कर लिया है। चूँकि हरब ज़ैल कुफ़्फ़ार हमारी तरक़्क़ी-राह में रोड़े बने हैं, इसलिए हमने उनको मौत के घाट उतारने का मुसम्मिम इरादा कर लिया है। राजा अवधनारायण, पं० प्रेमनारायण, शिवनारायण वैद्य, मुल्कराज, बृजमोहनदास।

सेक्रेटरी, अन्जुमन-औरङ्गज़ेब, भोपाल।"

इस नोटिस के कुछ वाक्यों के नीचे हमने लाइनें खींच दी हैं। सारे नोटिस को और विशेषकर इन वाक्यों को पढ़ कर पाठक मुसलमानों की मनोवृत्ति का पता लगा सकते हैं। यह मनोवृत्ति कितनी घातक है, कितनी भयानक है, इसका अन्दाज़ा नीचे लाइन खिंचे हुए वाक्यों से लगाया जा सकता है।

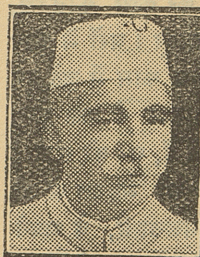
यह सब कुछ किया जा रहा है धर्म के नाम पर, यह दुहाई देकर कि इस्लाम को काफ़िरों (हिन्दुओं) ने ख़तरे में डाल दिया है। परन्तु इन दुहाइयों के पीछे जो उद्देश्य छिपा हुआ है, उसकी वास्तविकता किसी से छिपी हुई नहीं रह सकती। आज काश्मीर के विरुद्ध विद्रोह भड़काने में मुसलमान भले ही सफल हो जायँ, परन्तु उन्हें याद रखना चाहिए कि उनकी लगाई हुई आग उन्हीं की ओर बढ़ेगी और प्रचण्ड रूप से बढ़ेगी। आज काश्मीर है, तो कल हैदराबाद होगा और परसों भोपाल का नम्बर आएगा। तब मुसलमानों को अपनी भूल का पता लगेगा, परन्तु तब तक बहुत-कुछ हो चुकेगा।

❋ ❋ ❋

गोलमेज़-सभा और मुसलमान

गोलमेज़-सभा के विषय में जो कुछ हम पिछले अङ्क में लिख चुके हैं, लगभग वही हुआ है। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रतिनिधियों की सम्मतियों पर विचार करके अपनी नीति को केवल प्रान्तिक स्वाधीनता तक ही सीमित नहीं रक्खा, परन्तु दूसरे रूप में उन्होंने उसी नीति को स्थिर रक्खा है। अब कुछ ब्रिटिश प्रतिनिधि भारत को आने वाले हैं, जो भावी विधान के सम्बन्ध में यहाँ के नेताओं से परामर्श करेंगे और स्वयं अपने अन्वेषण भी करेंगे। इन प्रतिनिधियों के नाम देखने पर पता चल सकता है कि इनके अन्वेषण के फल में और साइमन कमीशन की रिपोर्ट में कुछ विशेष अन्तर न होगा।

अब, जब कि गोलमेज़-सभा का अन्त हो गया है, हम यदि उसकी असफलता के कारणों पर विचार करते हैं, तो उनमें दो शब्द हमारे सामने प्रमुख रूप से आ जाते हैं। वे हैं—मुसलमान प्रतिनिधि। यह तो पहले से ही प्रगट था कि इन प्रतिनिधियों के रहते गोलमेज़-सभा सफल नहीं हो सकेगी। अब वह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई। इस सम्बन्ध में देहली के निकट नरेला ग्राम में गाँधी सेवा-आश्रम का उद्घाटन करते समय डॉ० अन्सारी ने जो शब्द कहे थे, वे बड़े मार्के के हैं। उन्होंने कहा था :—



"जो काम जुडाज़ ने ईसा मसीह को सूली दिलाने में किया था, वही काम भारत के मुसलमान प्रतिनिधियों ने भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने की आशाओं और आकांक्षाओं की हत्या करने में किया है।

"लन्दन में भारत से जाने वाले मुसलमान प्रतिनिधियों ने जिस ढङ्ग की कार्रवाइयाँ की हैं, वे ऐसी हैं कि उनके कारण उनके प्रत्येक सहधर्मी को शर्म के मारे सर नीचा कर लेना पड़ता है। जब वे उस कार्य को सन्तोषजनक रूप में पूरा कर चुके, जो इङ्गलैण्ड के कट्टर साम्राज्यवादियों ने उन्हें सुपुर्द किया था, तो इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री ने उनको एक लात जमाई और कहा कि वे भारत जाकर आपस के साम्प्रदायिक झगड़ों को तय कर लें।"

इन प्रतिनिधियों के लिए डॉ० अन्सारी के शब्दों से अधिक ज़ोरदार शब्द लिखे ही नहीं जा सकते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक ऐसे 'जुडाज़' भार-

तीय मुसलमानों के प्रतिनिधि बन सकते हैं, तब तक कोई भी कॉन्फ़्रेन्स सफलता प्राप्त नहीं कर सकती, चाहे वह लन्दन में हो या भारत में।

❀ ❀ ❀

मेहनत का महत्व

यूरोप और अमेरिका में हाथ से मेहनत और मज़दूरी करना हेय नहीं समझा जाता, बल्कि वहाँ के समाज में ऐसा करना प्रशंसनीय और आदरणीय माना जाता है। जितने आजकल के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, उन्होंने अपने बाल्यकाल में मेहनत का महत्व समझ लिया था। जो माता-पिता धनवान हैं, वे भी अपने पुत्रों से, उनकी शिक्षा सम्पूर्ण बनाने के हेतु,कुछ न कुछ मेहनत का कार्य अवश्य कराते हैं। बड़े-बड़े कारख़ानों के मालिकों के पुत्र अपने कारख़ानों में उसी प्रकार लग कर कार्य करते हैं, जिस प्रकार उनके अन्य साधारण मज़दूर। घरों में आप जाइए और घर की मालकिनों को आप काम में जुटे हुए पाएँगे। धनवान होने पर भी वे बाज़ार से फल-फूल, तरकारी तथा अन्य पदार्थ स्वयं लाती हैं, घर की सफ़ाई करती हैं, भोजन बनाती हैं। पुरुष भी मेहनत से जी नहीं चुराते। जब भी अवकाश मिलता है, वे अपने बग़ीचे में काम करते हैं, मकान की मरम्मत करते हैं या कमरों की सफ़ाई में स्त्रियों को सहायता देते हैं।

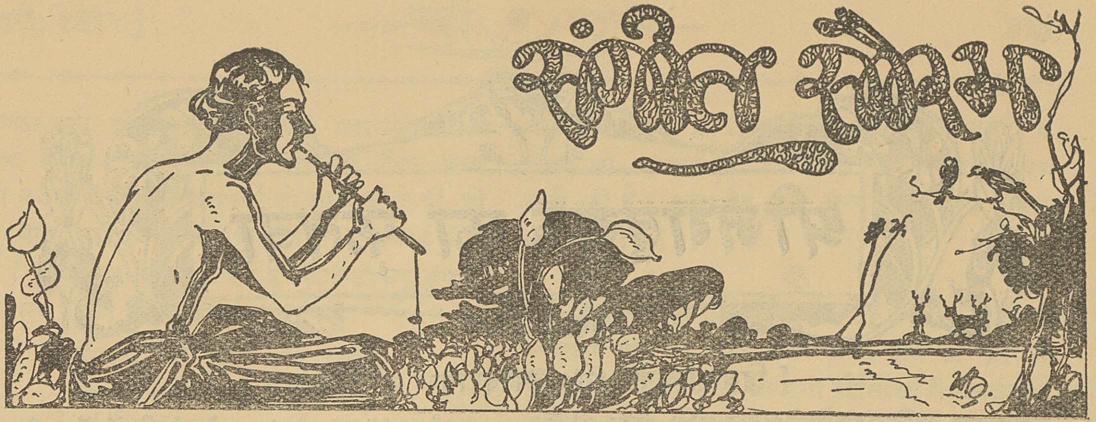
यह तो रहा घर का काम। बाहर जाकर परिश्रम करने की प्रथा भी उन देशों में बहुत प्रचलित है। न तो विद्यार्थी-आश्रम में लोग मेहनत-मज़दूरी से घबराते हैं और न उसके बाद ही। एक ओर विद्यार्थी वकालत, डॉक्टरी, इञ्जिनियरी आदि की शिक्षा पाते हैं और दूसरी ओर वे होटलों में प्लेटें साफ़ करते हैं, फ़र्शों को धोते हैं, खाना परोसने का कार्य करते हैं, खेतों में जाकर किसानों को सहायता पहुँचाते हैं, यहाँ तक कि मेहतर का काम भी करते हैं।

इन सब बातों का कारण यह है कि विदेशों में ऊँच-नीच का भेद कार्य पर निर्भर नहीं है। चाहे आप डॉक्टर का कार्य करते हों, चाहे वकील का और चाहे मेहतर का, समाज में सब एक दृष्टि से देखे जाते हैं। एक ही मेज़ पर एक लॉर्ड और एक राज-मज़दूर साथ-साथ भोजन कर सकते हैं। यही कारण है कि कोई भी व्यक्ति किसी काम को घृणा की दृष्टि से नहीं देखता। हाल ही में इङ्गलैण्ड के एक छोटे से नगर में एक चिमनी झाड़ने वाला अपने यहाँ की म्युनिसिपैलिटी का मेयर बनाया गया था। मेयर हो जाने के बाद भी उसने अपना व्यवसाय जारी रक्खा। उसे इस बात का तनिक भी विचार नहीं हुआ कि वह मेयर होकर ऐसा कार्य कैसे कर सकेगा।

हमारे यहाँ बात ही कुछ और है। आठवीं क्लास तक पढ़े और बस फिर हमारे लिए मेहनत करना एक अपमान समझ पड़ता है। बाज़ार से दो पैसे की तरकारी लाने में भी हमें लज्जा मालूम होती है। नौकरी के लिए—पन्द्रह रुपए मासिक पर ही—हम प्रार्थना-पत्र भेजेंगे। वह अस्वीकृत हो जायगा, फिर भी हम उद्योग न छोड़ेंगे। सिफ़ारिशों के लिए इधर-उधर भटकेंगे, ख़ुशामद करेंगे, फिर भी कोरा जवाब मिल जायगा। यह सब कुछ हम करने के लिए तैयार रहेंगे, परन्तु मेहनत करना हम शान के ख़िलाफ़, अपनी मर्यादा से नीचा समझेंगे। इसीलिए पढ़े-लिखे लोगों में बेकारी बढ़ती जा रही है। एक किसान का पुत्र भी मिडिल पास होकर खेती करना अप्रतिष्ठा समझता है। एक वैश्य का पुत्र ऐण्ट्रेन्स पास होते ही दूकान से कोसों भागता है।

यदि हमारे पढ़े-लिखे युवक चाहें, तो उनके लिए अनेक क्षेत्र खुले पड़े हैं, यदि वे मेहनत का महत्व समझ लें, चाहे वह मेहनत किसी प्रकार की क्यों न हो। हमारे देश को पढ़े-लिखे कृषकों की आवश्यकता है। व्यापार में भी शिक्षित व्यक्ति बहुत-कुछ कर सकते हैं। नगरों में शुद्ध दूध तथा घी का मिलना कठिन हो रहा है। यदि शिक्षित युवक इस कमी को पूरा करने पर तुल जायँ, तो वे अपना ही नहीं, देश का भी भला कर सकते हैं।





सम्पादक—श्री० नीलूबाबू]

दुर्गा, झपताल मात्रा १०

[स्वरकार—श्री० बेनीप्रसाद जी
(नीलू बाबू के प्रिय शिष्य)]

स्थायी—सीतापति राम, राधापति कृष्ण । घड़ी-घड़ी, पल-पल, छिन-छिन मैं को ॥

अन्तरा—सिंहासन बैठ बजरङ्ग वन्दित । जमुना के तीर खेलत गोपाल ॥

स्थायी

×		३			०		१		
प	—	मप	ध	ध	म	—	रे	—	स
सी	—	ता	आ	प	ती	—	रा	—	म
स	—	स	—	ध	म	—	रे	—	स
रा	—	धा	—	प	ती	—	कृ	—	ष्ण
स	स	रे	म	म	प	ध	पध	स	सं
घ	ड़ी	घ	अ	ड़ो	प	ल	प	अ	ल
धरें	सं	धसं	धप	म	ध	पध	म	रे	स
छि	न	छि	ईइ	न	मैं	ए	को	ओ	ओ

अन्तरा

ध	प	स	रे	म	प	ध	सं	—	सं
सिं	ई	हा	आ	स	न	अ	बै	—	ठ
ध	ध	सं	—	रें	संरें	संध	पध	पम	रे
ब	ज	रं	—	ग	व	अन	दिइ	ईइ	त
मं	मं	रें	सं	सं	रें	सं	धसं	धप	म
ज	मु	न	अ	अ	के	ती	इइ	इइ	र
म	प	मप	ध	ध	प	—	रे	स	स
खे	ऐ	लअ	अ	त	गो	—	पा	आ	ल

आरोहन—स रे म प ध सं । अवरोहन—सं ध प म रे स

नोट—वादी स्वर "रे" समवादी स्वर "प" और "ग" "नी" वर्जित ।

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ हालोनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

एक बार कविता-कामिनी-कान्त श्री० शङ्कर जी ने लिखा था, 'धोरी हिन्दू धरम है, इकटङ्गा बलहीन !' तब से श्रीजगद्गुरु की तोंद और दाढ़ी में दादा सनातन-धर्म के लिए चिन्ता की एक आँधी सी चला करती थी। बेचारा 'इकटङ्गा धोरी' गोबर और जुगाली तो भला, बैठा ही बैठा कर लिया करता होगा, परन्तु चरता-चुगता कैसे होगा, यही चिन्ता इन्हें मारे डालती थी।

❀

इतने में 'मिथिला-मिहिर' में एक ख़बर देखने में आई—"नाँगड़ लूल्ह लोकनि आव काठक बनल पैरक सहायता सँ सभ कार्य कय सकैत छथि। एहि टाँग पर ६ फ़ूट दिवाल एक गोटे फानि गेल। तथा साढ़े तेरह मिनट में आध कोसक सफ़र कैलक।" वल्लाह, बड़ी ख़ुशी हुई। और कुछ नहीं, इन्हें न तो ६ फ़ुट की दीवाल फाँदना है और न साढ़े तेरह मिनट में आधे कोस की दौड़ ही लगानी है। काठ के पैर लग जाएँ तो बेचारे उठ-बैठ कर अपना क्रियाकर्म तो कर लें। बुढ़ौती में इतना ही क्या कम होगा ?

❀

अभी हिज़ होलीनेस इसी प्रकार ज़मीन-आसमान के क़ुलाबे मिला रहे थे, कि कलकत्ते में 'वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घ' की शङ्ख बज उठी। दादा सनातनधर्म की जानोमाल के 'बोर्न कण्ट्राक्टरों' ने एक ही टाँग पर इन्हें ताथेई-ताथेई नचाने का आयोजन आरम्भ कर दिया। भूरि भोजन की ऐसी तैयारियाँ हुईं कि मानों दादा जी का श्राद्ध ही हो रहा हो। कहीं कुमारी-भोजन और कहीं अहिवाती भोजन ! दादा जी की टाँगें तो यों ही रह गईं, पर तोंदों की बन आई और 'बोल सनातन-धर्म की जय' ध्वनि से कलकत्ते की कई गलियाँ गूँज उठीं।

❀

भई, आजकल के इन ठाले के दिनों में, आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे 'लक्ष्मी-वाहनों' से यज्ञादि अनुष्ठानों के नाम पर घृतपक्व कचरने और ऊपर से कुछ दक्षिणा वसूल कर लेने की युक्ति ढूँढ़ निकालना कुछ बुरा नहीं। क्योंकि चतुर लोग अनादि काल से मूर्खों को मूँड़ते आए हैं। आख़िरश, हराम का माल हराम-ख़ोरों के सिवा और पचा ही कौन सकता है ?

❀

बीसवीं शताब्दी के मध्याह्न में, जब कि अल्लाह-मियाँ की हस्ती (हाथी नहीं, अस्तित्व !) भी ख़तरे से ख़ाली नहीं है, पूतिगन्धमय सड़े हुए कुसंस्कारों के कीचड़-कुण्ड को ऋषि-महर्षि-प्रणीत सनातनधर्म और समाज-व्यवस्था बता कर दिन-दहाड़े लोगों की आँखों में धूल झोंकने की चेष्टा के साथ ही, श्रीमती वृकोदरी पण्डिताइन जी की 'नकबेसर' के लिए भी दो पैसा ऐंठ लेना कुछ कम कमाल की बात नहीं।

❀

दादा सनातनधर्म जी की वह बची हुई टाँग भी टूट जाए और हिन्दू-समाज रसातल चला जाय या तलातल, अपने राम तो इन बुद्धि-बागीशों की तारीफ़ ही करेंगे, जिन्होंने अपनी 'धर्म की एजेन्सी' को अभी तक बेदाग़ बचा रक्खी है। कहावत है कि 'रोटी-दाल भीतर, तब देवता और पितर !' अगर चचा चर्चिल को भारत के हाथ से निकल जाने की चिन्ता है, तो अपने राम को भी अपनी इस धर्म की पैतृक ठीकेदारी के हाथ से निकल जाने की चिन्ता है। वास्तव में चचा-भतीजे दोनों एक ही मर्ज़ के मरीज़ हैं।

❀

सचमुच पेट की महिमा अपरम्पार है। बड़े-बड़े साम्राज्यवादी से लेकर प्रजातन्त्रवादी तक सभी इसी चक्र-व्यूह

में चक्कर काट रहे हैं। फलतः उन्हीं महामहिमान्वित श्रीयुक्त भगवान उदरदेव की पूर्त्ति के लिए अगर बेचारे वर्णाश्रमियों ने देशनायकों को गालियाँ दे दीं, तो कोई बात नहीं। पेट के लिए लोग क्या-क्या नहीं करते ! बाबा तुलसीदास ने ऐसे ही पेटपन्थी महानुभावों के सम्बन्ध में तो लिखा है :—

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं,
पिशुन पराय पाप कहि देहीं।

❀

बेचारे पहले आर्य-समाजियों को 'सुसराल के मज़े' चखाया करते थे—महर्षि दयानन्द सरस्वती को गालियाँ देकर अपनी विमल वंश-मर्यादा का परिचय प्रदान करते हुए, आनन्द से उदर-पूर्त्ति कर लिया करते थे। बाबा शाह मदार की कृपा से यह रोज़गार कुछ दिन ख़ूब चमका—ख़ूब पौबारह रहा—कितने ही वाग्मिवर, वाणी-भूषण और हेंपों-रव-विशारद तो लखपती हो गए। दक्षिणा और 'भेंट' के पैसों से आपकी गुरुआनी जी की थैली भरी ही रहती थी।

❀

परन्तु समय ने पलटा खाया। अब अगर दिन भर आर्य-समाज, दयानन्द और विधवा-विवाह के विरुद्ध टें-टें करते रहिए तो भी दक्षिणा की डौल नहीं ! ऐसी दशा में आप ही ईमान-धर्म से कह दीजिए, बेचारे वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घ के बहाने अक्ल के अन्धों से दो पैसे वसूल करके पेट-पूजा न करें तो क्या भूखों मरें ? कम-बख़्त बाप-दादे—ईश्वर उन्हें नरक की यातना दे—ऐसे नालायक़ रहे कि उदर-पूर्त्ति के लिए तो कोई दूसरा उपाय सिखाया ही नहीं और ऊपर से हर साल अपने लिए श्राद्ध की व्यवस्था देते गए !

❀

अन्यथा वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घ के नाम पर सनातनी मारवाड़ियों के पैसे की बदौलत 'दामादोपम' आनन्द लूटने वाले कुछ ऐसे मूर्ख नहीं हैं, जो यह न जानते हों कि सनातनधर्म के इस 'ज़ूलोजिकेल' में न कोई वर्ण है और न कोई आश्रम, और जिन मोटी तोंद वाले धर्म-धुरन्धरों ने 'गोहत्या' का प्रायश्चित्त 'जूता दान' करके करने के लिए यह सदानुष्ठान किया है, उन्हीं की बदौलत कलकत्ते के 'रामबागान' और 'सोना गाछी' के चकले भी आबाद हैं, जहाँ नित्य 'तृप्यन्ताम्' की धूम मची रही है। मगर पेट, तुम धन्य हो ! तुम्हें साष्टाङ्ग प्रणाम है !

❀

ख़ैर, यह वृकोदर-सङ्घ साल दो साल में 'वर्णाश्रम स्वराज्य' प्राप्त कर लेगा, इसमें अपने राम को ज़रा भी सन्देह नहीं है। क्योंकि आगामी कौन्सिलों में मुसलमान, सिक्ख, अछूत और सुधारक प्रतिनिधियों के साथ एक वर्णाश्रमी प्रतिनिधि दल भी रहेगा और वह सारदा-विधान, विधवा-विवाह-विधान, सती-प्रथा और देवदासी-प्रथा-विरोध-विधान आदि धर्म-ध्वंसक क़ानूनों का श्राद्ध करके सनातनधर्म के लिए उपर्युक्त ६ फ़ुट की दीवाल फाँदने वाली टाँगों की व्यवस्था कर लेगा। उस वक़्त बूढ़े सनातनधर्म दादा का उचक-उचक कर चलना, माशा अल्लाह, क़ाबिले-दीद होगा।

❀

देवताओं की भी तक़दीर खुल जाएगी। ठाकुर जी एक बार फिर देवदासियों के पायल की 'छुनू छननन' ध्वनि के मज़े लेंगे ! धर्म-भगवान की रक्षा के लिए बाल-विधवाओं की पलटनें तैयार होंगी। शहरों के चकले दिन दूनी और रात चौगुनी गति से उन्नति प्राप्त करके सनातनधर्म का मुखोज्वल करेंगे। सतियों की चिताओं की मन-मुग्धकारी गन्ध से भारत वसुन्धरा महक उठेगी !

❀

ओह, उस वक़्त का हाल कुछ न पूछिए। प्रत्यह विपुल भोग-राग प्राप्त करके देवता-पितर, किन्नर-गन्धर्व सभी निहाल हो जाएँगे। वेदाध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को रहेगा और वेदपाठी जी की ग़लती से उनकी कण्ठनुःस्रित वेद-ध्वनि अगर किसी शूद्र के कर्ण-कुहर में घुस जाएगी तो उसके कानों में सीसा गला कर पिला दिया जाएगा।

❀

इसके लिए उपर्युक्त वृकोदर-सङ्घ ने सारी व्यवस्था कर ली है। धर्म-प्रेमियों से एक गुप्त घोषणा-पत्र हस्ताक्षर करा लिए गए हैं। इस घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले धर्मध्वजी जब तक जीते रहेंगे तब तक शास्त्र और शिष्टाचार-विरोधी क़ानूनों का विरोध करते रहेंगे।

वर्णाश्रम और जन्मगत जाति पर विश्वास रक्खेंगे और स्पृश्यता, विधवा-विवाह, असवर्ण-विवाह आदि को शास्त्र और शिष्टाचार के विरुद्ध मानते रहेंगे। साथ ही खाद्याखाद्य के विचार पर भी विश्वास रक्खेंगे।

❀

इस खाद्याखाद्य-विचार के अनुसार बङ्गाल के भट्टाचार्य महाशय मूँड़ और पूँछ के सहित बरारी और रोहू निगल सकेंगे, शाण्डिल्य गोत्री पूरे बीस बिस्वा वाले कान्यकुब्ज जी पूरा बकरा उदरसात कर जाएँगे और मिथिला के 'कुलीन' जी केकड़ा और कछुआ तक पचा डालेंगे, परन्तु किसी दूसरे वर्ण की छुई हुई कोई चीज़ न खाएँगे। धर्म के विरुद्ध 'अखाद्य' खाकर क्या नरक में जाएँगे?

❀

क्षत्रिय जी सुखाद्यभक्षी बाराह देव को काट-छील कर गड़ागप गले से नीचे उतार देंगे, परन्तु लाला सन्तोखीलाल की स्पर्श की हुई रोटियाँ नहीं खाएँगे। क्योंकि बेचारे खाद्याखाद्य का विचार कर लेने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। भाई, धर्म का बन्धन ऐसा ही कठिन होता है! क्या आपने सुना नहीं है—

धर्मस्य तत्त्वंनिहितं गुहायाम्,
महाजनो येन गतः स पन्था !!

❀

वह हाड़-मांस की पुतली नौजवान विधवा पड़ोस के लतखोरी चचा के लड़के से आँख लड़ाने के कारण फूल उठेगी तो चिन्ता नहीं, उसे पिचकाने की एक से एक बढ़ कर धर्मानुमोदित (!!!) तदबीरें मौजूद हैं! अगर ख़ुदानाख़्वास्ता न पिचकेगी तो कहीं तीर्थ करने के लिए भेज दी जाएगी। परन्तु उसका विवाह—उहूँ! बाप रे बाप! तब तो धर्म के साथ ही वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घ का ही नाश हो जायगा। और पुरखे नरक में चले जायँगे।

❀

भई, यह तो ठीक है कि इन मूज़ी की क़ब्र सी फूली हुई वर्णाश्रमी तोंदों में अछूतों की ही सूखी हड्डियों का रक्त भरा पड़ा है, परन्तु शास्त्रानुसार उनके स्पर्श से देवता, मन्दिर, तालाब, स्कूल और रास्ते तक भ्रष्ट हो जाते हैं। यह अन्त्यामियाँ की ग़लती है कि उन्होंने इस देश में अछूतों को पैदा कर दिया। इसमें अपना कोई दोष नहीं।

❀

फलतः वह आपकी 'डलिया' उठाने वाला रामू भङ्गी अगर मौ० शौकतअली से ख़तना करा कर फ़रहतअली या पादड़ी साहब से 'बपतिस्मा' लेकर 'रेवरेण्ड रामसिंह' बन जाए, तो उसे सलाम करने में भगवान मनु और पराशर ने कोई दोष नहीं लिखा है। फलतः सारे ख़ुराफ़ात की जड़ उसकी कमबख़्त चोटी है। जब तक यह चुटकी भर बालों का नापाक गुच्छा उसके सिर पर सवार है, तब तक उसे स्पृश्य रहना ही चाहिए। इसके बाद उसे कटा कर वह चाहे सूअर खाए या गाय, कोई चिन्ता नहीं। फ़साद की जड़ कट गई तो फिर उसे बग़ल में बैठा लेने में दोष ही क्या है?

❀

इसी से उस दिन नासिक के मन्दिर को अपने प्रवेश से अपवित्र करने के बाद अछूतों ने 'रामकुण्ड' को भी छूकर अपवित्र कर डाला तो मनु के लकड़दादा की बताई हुई विधि—अर्थात् 'पाइप और पम्प' द्वारा उक्त कुण्ड का सारा पानी उलीच डाला गया! तब कहीं जाकर धर्म बचा, नहीं तो आज नासिक के साथ ही सनातन-धर्म की कैसी दुर्गत हो जाती, उसे सोच कर आज भी अपने राम की शिलोपम तोंद सिहर रही है।

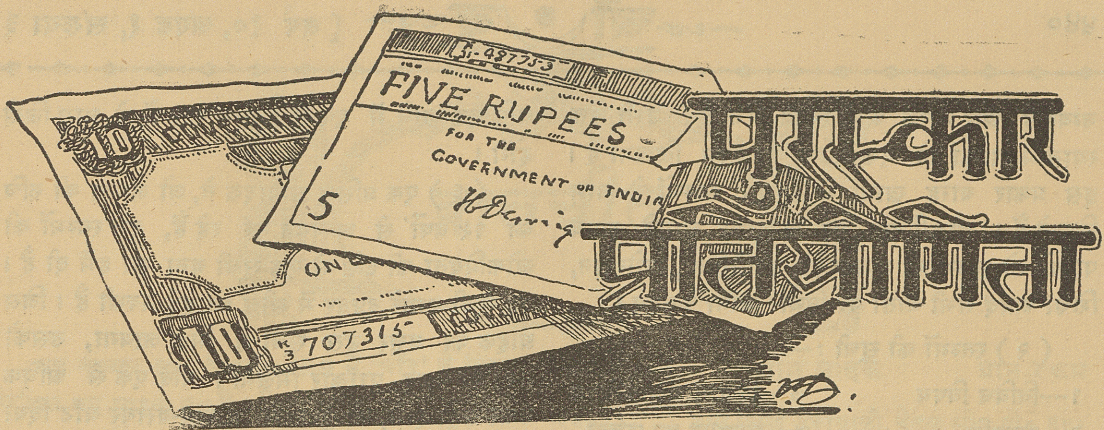
❀

और कुछ नहीं, यह सब कमीने कलिकाल की कुचालें हैं। देखिए न, उस दिन अटक-निवासी धर्मात्मा (यद्यपि वे वर्णाश्रमी न थे) केवल ७० वर्ष की उम्र में एक पञ्चदशी के पाणि-पीड़नार्थ प्रस्तुत हो गए। ४००) नक़द ख़र्च कर डाला था। परन्तु विवाह के समय मण्डप में ही चल बसे! कमबख़्त मृत्यु से यह धर्म-कार्य न देखा गया। दईमारी पाँच मिनिट और ठहर जाती तो उसका क्या बिगड़ जाता?

❀

बूढ़े बाबा को तो मरना ही था, परन्तु अफ़सोस केवल इतना ही रह गया कि बेचारे अपनी कोई कीर्ति नहीं छोड़ जा सके। अगर मृत्यु उतावली न करती, तो संसार उनकी जीती-जागती स्मृति देख कर एक धर्मानुमोदित आदर्श ग्रहण करता। धर्म की नाव मझधार में ही डूबने से बच जाती! उफ़! और क्या कहें?





पिछली पहेली का परिणाम

१—दिसम्बर मास की पहेली का पूरा उत्तर किसी पाठक का सही न था। निम्न-लिखित पाठकों की सबसे कम, अर्थात् एक-एक अशुद्धि थीं, अतः उन्हें निम्न-लिखित पुरस्कार मिलेंगे। हमें हर्ष है कि देवियाँ हमारी प्रतियोगिता में बड़ी संख्या में भाग ले रही हैं तथा सफलता भी प्राप्त कर रही हैं।

पुरस्कृत पाठक

(१) श्रीमती तोतादेवी, अजमेर, ... ३) पुस्तकें
(२) श्री० काशीरामसिंह गौर, रायपुर सी० पी० ... ... ३) पुस्तकें
(३) श्री० जी० एल० निघोसकर, लखनऊ ... 'चाँद' ३ मास के लिए
(४) श्रीमती चमेलीबाई निगम, बैतूल ३) पुस्तकें
(५) पुस्तकाध्यक्ष, मारवाड़ी पुस्तकालय, रङ्गून ... ... ३) पुस्तकें

उपर्युक्त पाठक कृपया अपनी इच्छित पुस्तकों की सूची शीघ्र ही 'पुरस्कार-प्रतियोगिता-विभाग' के पास भेज दें।

२—ब्रह्मदेश से हमारे पास कई पत्र आए हैं, जिनमें हमारे ग्राहकों ने शिकायत की है कि 'चाँद' उन्हें देर से मिलने के कारण वे प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते। हमें खेद है कि पिछले दो-तीन महीने 'चाँद' कुछ देर से प्रकाशित हुआ और इन ग्राहकों को प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर न मिल सका। अब हम 'चाँद' को समय पर निकालने का उद्योग कर रहे हैं और आशा है कि हमारे ब्रह्मदेश के ग्राहक भी अब अवधि के भीतर ही अपने उत्तर भेज सकेंगे। फिर भी हम इन ग्राहकों से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने उत्तर हमारी अवधि का विचार किए बिना ही भेज दिया करें। 'चाँद' का अन्तिम फ़ॉर्म छपने तक हम उनके उत्तरों की परीक्षा कर लिया करेंगे। परन्तु यह रियायत केवल ब्रह्मदेश के निवासियों के लिए ही है। अन्य ग्राहकों के उन उत्तरों पर, जो अवधि बीत जाने पर हमें मिलेंगे, कोई विचार नहीं किया जायगा।

३—पहेली का सही उत्तर इस प्रकार है:—

श्या	म	एक अवतार		
आ	प	दा	विपत्ति	
तो	य	द	बादल	
ज	ल	नि	धि	समुद्र
स	र	व	र	तालाब

इस मास की नई पहेली

(१) इस मास की पहेली द्वारा हम यह जानना चाहते हैं कि 'चाँद' के स्तम्भों को पाठक किस प्रकार पसन्द करते हैं। नीचे हम उन १२ स्तम्भों के नाम देते हैं, जिन पर हम पाठकों की सम्मति चाहते हैं। पाठकों को केवल यह बताना है कि लोकप्रियता की दृष्टि से, उनके विचार में, इन स्तम्भों में से प्रत्येक का क्या स्थान है। कूपन में बारह ख़ाने बने हुए हैं। प्रत्येक में एक

नम्बर है और उसके आगे स्थान रिक्त है। उसी रिक्त स्थान में पाठकों को एक स्तम्भ का नाम लिखना है। इस प्रकार बारह ख़ानों में बारहों स्तम्भों के नाम लिखने हैं। लोकप्रियता का अन्दाज़ा लगाते समय पाठकों को स्तम्भ की उपादेयता, उपयोगिता, मनोरञ्जन, शिक्षा आदि सभी बातों पर विचार करना चाहिए।

(२) स्तम्भों की सूची :—

१—विविध विषय	७—विज्ञान और वैचित्र्य
२—रङ्गभूमि	८—जगद्गुरु का फ़तवा
३—विश्व वीणा	९—चिट्ठी-पत्री
४—गृह-विज्ञान	१२—सङ्गीत-सौरभ
५—पुरस्कार-प्रतियोगिता	११—स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य
६—सिनेमा तथा रङ्गमञ्च	१२—दिलचस्प मुक़द्दमे

(३) यह प्रतियोगिता केवल 'चाँद' के स्थायी-ग्राहकों के लिए है। कूपन पर उन्हीं का नाम होना चाहिए। कूपन ग्राहकों के किसी सम्बन्धी के नाम होने से वह कूपन नियम-विरुद्ध समझा जायगा। कूपन पर ग्राहक-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) उत्तर या तो 'चाँद' के छपे हुए कूपन पर लिखा जाना चाहिए या उसकी नक़ल सादे काग़ज़ पर करके भेजी जानी चाहिए। उत्तर लिफ़ाफ़े में भी भेजा जा सकता है और पोस्टकार्ड पर लिख कर भी भेजा जा सकता है। कृपया पता इस प्रकार लिखिए :—

'चाँद' प्रतियोगिता-विभाग, चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

या—

Chand Puzzle Deptt.
Chand Press, Ltd., Allahabad.

उत्तर हमारे पास ता० २२ जनवरी तक आ जाना चाहिए। केवल ब्रह्मा-निवासी ग्राहक ही इस तारीख़ के बाद अपने उत्तर भेज सकते हैं।

(५) आपका उत्तर नियम-विरुद्ध हो जायगा, यदि उसके साथ कोई पत्र होगा, यदि उत्तर कटा-छँटा होगा या पीछे से उसका संशोधन हमारे पास आएगा, यदि एक ख़ाने में एक से अधिक स्तम्भों के नाम लिखे होंगे।

(६) एक प्रसिद्ध सम्पादक ने, जो जनता की रुचि का १५ वर्षों से अध्ययन कर रहे हैं, इन स्तम्भों की लोकप्रियता की दृष्टि से एक सूची बना कर हमें दी है। वह सूची हमारे दफ़्तर में सील की हुई रक्खी है। जिस ग्राहक का उत्तर उस सूची से मिल जायगा, उसको २५) का नक़द पुरस्कार मिलेगा। यदि एक से अधिक उत्तर सही होंगे, तो पुरस्कार बराबर-बराबर बाँट दिया जायगा। यदि कोई उत्तर सही न होगा तो सब से कम अशुद्धियों वाले ग्राहक या ग्राहकों को १५) की 'चाँद' कार्यालय की पुस्तकें पुरस्कार में दी जायँगी। निर्णय का अधिकार सम्पादक को है।

चाँद प्रेस, लिमिटेड के कर्मचारियों को इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं है।

कूपन

उत्तर :—

१		२	
३		४	
५		६	
७		८	
९		१०	
११		१२	

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सम्पादक के निर्णय को मानूँगा और इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा।

ग्राहक-संख्या (स्थायी)
नाम ————————
पता ————————



गत नवम्बर तथा दिसम्बर मास में 'चाँद' के निम्न-लिखित नए ग्राहक हुए हैं। जिन-जिन ग्राहकों का चन्दा प्राप्त हुआ है, उनके नाम तथा ग्राहक-नम्बर के साथ चन्दे की रक़म नीचे दी जा रही है, ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे अपना ग्राहक-नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे लिखना न भूलें, ताकि उचित कार्यवाही करने में किसी प्रकार का विलम्ब न हो :—

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२६३९६	मेसर्स लछमनदास मदनलाल सर्राफ़, आगरा	६।।)
२६३९७	बाबू जयनरायन अग्रवाल, कलकत्ता	६।।)
२६३९८	श्रीयुत गनेशीलाल जैन, सिकन्दराराव, (अलीगढ़) ...	३।।)
२६३९९	पण्डित भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र, सरसौल, (कानपुर) ...	६।।)
२६४००	श्रीयुत आनन्दप्रसाद, बनारस कैण्ट	६।।)
२६४०१	श्रीयुत रामसह, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस	३।)
२६४०२	कुमारी सुशीला बासुदेवा, सरगोधा	३।।)
२६४०३	श्रीयुत शान्तिप्रसाद जैन, धर्मपुरा, देहली	५)
२६४०४	श्री० सेक्रेटरी महोदय, म्युनिसिपल पुस्तकालय ऐण्ड रीडिङ्ग रूम, पेशावर	६।।)
२६४०५	श्रीयुत जगदीशप्रसाद जी, कानपुर	"
२६४०६	श्री० पी० शर्मा, गार्ड, डारेसलम	४।=)
२६४०७	श्रीयुत नेमीचन्द जैन, लोहामण्डी, आगरा	६।।)
२६४०८	श्री० टी० एन० खन्ना, फ़तेहपुर ...	३।।)
२६४०९	बाबू महराजसरन सक्सेना, बहराइच	"
२६४१०	श्रीयुत लल्लूलाल सोरारे, अलमोड़ा	६।।)
२६४११	बाबू विष्णु उद्दोबाजी, बैतूल सी० पी०	६।।)
२६४१२	बाबू रूपनारायण तिवारी, कामठी, नागपुर	"
२६४१३	पं० मदनमोहन लाल अवस्थी, झाँसी	३।।)
२६४१४	बाबू राधाकिशोर, लाहौर ...	४।।)
२६४१५	बाबू नयनसिंह वर्मा, छात्राध्यापक, अल्मोड़ा	३।।)
२६४१६	बाबू कजोरीलाल अग्रवाल, सिलीगुरी, (दारजिलिङ्ग) ...	६।।)
२६४१७	श्री० सेक्रेटरी महोदय, श्रीजैन स्वयं-सेवक मण्डल, इन्दौर ...	"
२६४१८	श्रीमती जगरानी देवी वर्मा, देहली	"
२६४१९	श्रीयुत हरस्वरूप, ओवरसियर, मेरठ	"
२६४२०	श्रीयुत राधेलाल जी, लखनऊ ...	"
२६४२१	मेसर्स गोकुलचन्द बाबूलाल, मुज़फ़्फ़रनगर ...	३।।)
२६४२२	श्रीयुत आर० सङ्करन, मटुङ्गा, बम्बई	३।।)
२६४२३	श्रीयुत रघुनन्दन वाजपेयी, उन्नाव	६।।)
२६४२४	श्री० सेक्रेटरी महोदय, राधाकृष्ण पुस्तकालय जबलपुर ...	६।।)
२६४२५	बाबू दामोदर राव त्रिवेदी, मुख़्तार, इन्दौर	"
२६४२६	श्रीयुत उमाशङ्कर हेड-मास्टर, कोटा	"
२६४२७	बाबू रामचरनसिंह जी, कोटा ...	"
२६४२८	मि० विजयकृष्ण जी, कोटा ...	"
२६४२९	श्रीयुत ओङ्कारप्रसाद गुप्ता, वन्सुर, अलवर स्टेट	३।।)
२६४३०	श्रीयुत रामगोपाल मिश्रा, मुरादाबाद	६।।)
२६४३१	पं० पृथ्वीराज मिश्रा, मुरादाबाद	"
२६४३२	श्री० ओ३म्प्रकाश शर्मा, मुरादाबाद	"

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२९४३३	मेसर्स बापूलाल पन्नालाल चौधरी, अलीराजपुर	६॥)
२९४३४	ठा० रामेश्वरबख़्श सिंह, शाहजहाँपुर	३॥)
२९४३५	श्री० सेक्रेटरी महोदय, प्रेम-पुस्तकालय, नहटौर	५)
२९४३६	ला० बाबूराम गुप्ता, मैनपुरी,	३॥)
२९४३७	मेसर्स पुरुषोत्तमदास रामचन्द्र, बम्बई नं० २	६॥)
२९४३८	श्रीयुत नेतासिंह बर्मा, जबलपुर ...	"
२९४३९	श्रीयुत एम०टी०कवसे, किरकी (पूना)	"
२९४४०	मेसर्स गङ्गादास पुगलिया जीवनदास पुगलिया, कलकत्ता	"
२९४४१	बाबू गिरदीचन्द सुराना, कलकत्ता	"
२९४४२	पं० जैकिशुन शर्मा, रङ्गून ...	५)
२९४४३	श्री० सेक्रेटरी महोदय पब्लिक लायब्रेरी, नाथद्वारा ...	५)
२९४४४	मेसर्स सुरेशकुमार योगेशकुमार, सैयदपुर	६॥)
२९४४५	श्रीयुत एल० एन० सिंह, कोढ़ा (पूर्निया)	"
२९४४६	श्रीयुत ललिताप्रसाद अग्रवाल, मुरादाबाद	"
२९४४७	बाबू काशीनाथ शास्त्री, नरेगल (धारवाड़)... ...	"
२९४४८	श्रीमती विद्यावती देवी, बेतिया ...	३॥)
२९४४९	ठा० कामेश्वरप्रसाद सिंह, ग़ाज़ीपुर	"
२९४५०	बाबू दूधनाथ सिनहा, गोपालगञ्ज	६॥)
२९४५१	श्रीयुत आर० एल० सुरेन्द्र, फ़तेहगढ़	३॥)
२९४५२	श्रीमती कर्तारदेवी, गुजरात (पञ्जाब)	६॥)
२९४५३	श्रीयुत दिग्विजयसिंह जी बेलवा, बस्ती	"
२९४५४	श्रीयुत बाबूलाल नेवटिया, कलकत्ता	"
२९४५५	श्रीयुत सी०बालचन्द, कुनूल, नीलग्रीज़	"
२९४५६	श्रीमती गीताबाई साज़ापुर (मालवा)	"
२९४५७	श्रीयुत मूलचन्द त्रिवेदी, गोण्डिया	"
२९४५८	श्रीयुत आर० एन० पाण्डेय, भूतछारा, रङ्गपुर... ...	६॥)
२९४५९	श्रीयुत ज़ुलुम सिनहा, भगवानपुर, सारन	३॥)
२९४६०	मेसर्स सरजूप्रसाद महादेवप्रसाद, मारुफ़गञ्ज, पटना ...	६॥)
२९४६१	बाबू सुन्देश्वरीप्रसाद सिंह, दरभङ्गा	३॥)
२९४६२	मेसर्स अमरचन्द रामप्रसाद, लखीमपुर (आसाम) ...	६॥)
२९४६३	श्रीयुत काशीराय शर्मा, टौङ्ग डिङ्गी	"
२९४६४	श्रीयुत रघुनन्दनसिंह जी, आरा	"
२९४६५	श्री० सेक्रेटरी महोदय राजाबहादुर लाला सुखदेवसहाय, जैन-लाइब्रेरी, पटियाला स्टेट ...	५)
२९४६६	राजा साहब केसरीसिंह जी, महीकण्ठा, (गुजरात) ...	६॥)
२९४६७	श्रीयुत प्रतापसिंह विल्ला, राजपिपला	"
२९४६८	श्री० मन्त्री महोदय, आर्य-समाज, सरधना, अजमेर ...	"
२९४६९	मेसर्स सुन्दरजी लखमीचन्द कोठारी, मुर्तजापुर अकोला ...	"
२९४७०	श्रीयुत देवीदत्त मोदी, कलकत्ता	"
२९४७१	श्रीयुत रामचन्द्र गुप्ता सेक्रेटरी, धामपुरी	५)
२९४७२	श्रीमती अविनाशचन्द्र माथुर, बनारस कैण्ट... ...	३॥)
२९४७३	श्रीयुत कामताप्रसाद जी, विशारद, सेमरीहरचन्द, होशङ्गाबाद ...	६॥)
२९४७४	मेसर्स शिवकरनदास बुधराम,सक्टी बिलासपुर	"
२९४७५	बाबू प्रागीलाल, दमोह ...	३॥)
२९४७६	बाबू कन्हैयालाल पाण्डेय, करन छपरा, बलिया ...	६॥)
२९४७७	श्री० सेक्रेटरी महोदय, सरस्वती-पुस्तकालय, जौनपुर ...	३॥)
२९४७८	मेसर्स बद्रीदास देवकरनदास, सुन्दरगढ़ (गङ्गपुर) ...	६॥)

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२९४७९	पं० चन्द्रभान जी, आज़मगढ़ ...	६॥)
२९४८०	श्रीयुत रघुनाथ मत्तू रईस, अनन्तनाग, काश्मीर ...	"
२९४८१	श्रीमती सुशीला द्विवेदी, लखनऊ	"
२९४८२	श्रीमती आर० एन० शर्मा, लाहौर	"
२९४८३	श्री० जगदीशप्रसाद द्विवेदी, गोरखपुर	"
२९४८४	श्रीमती वी० पी० शूद, फ़िरोज़पुर (पञ्जाब) ...	"
२९४८५	श्रीयुत नन्दकिशोरसहाय सिनहा, पटना	३॥)
२९४८६	श्रीयुत काशीप्रसाद मास्टर दमदा, दुग	६॥)
२९४८७	श्रीमती लज्जावती, लाहौर ...	३॥)
२९४८८	श्री० ऑनरेरी सेक्रेटरी पोस्टल क्लब, सागर कैण्ट	६॥)
२९४८९	बाबू दीवानचन्द ओवरसियर, रायपुर	"
२९४९०	श्री० जमुना भगत, मुँगेर ...	५)
२९४९१	बाबू ब्रजमोहनप्रसाद सिनहा, राँची	३॥)
२९४९२	सेठ मूलचन्द खरया, जबलपुर ...	३॥)
२९४९३	मेसर्स प्रहलादराय शिवदयाल, जबलपुर	६॥)
२९४९४	श्रीयुत पी० सी० जैन, जबलपुर...	"
२९४९५	मेसर्स मौलाबक्स रहीमबक्स, सतना, रीवाँ स्टेट, ...	"
२९४९६	बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा, लहेरी टोला, गया	"
२९४९७	श्रीमती कमलाकुमारी पोद्दार, कानपुर	"
२९४९८	मेसर्स ऋषभदास भूरमल, सादतगञ्ज, लखनऊ ...	"
२९४९९	बाबू श्यामकृष्ण जी, लखनऊ ...	"
२९५००	बाबू देवीप्रसाद ज़मीन्दार, बस्ती	"
२९५०१	श्री० हेडमास्टर महोदय, भगवान एच० ई० स्कूल, मुङ्गेर ...	"
२९५०२	कुँ० कमलाकान्तसिंह, रङ्गून ...	"
२९५०३	श्रीयुत सी० पी० डिमरी, भैंसदेही, बैतूल	"

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२९५०४	लाला गुलज़ारीलाल, चाँदनी चौक, देहली	५॥)
२९५०५	श्रीयुत सुखराम वर्मा, ख़ैरागढ़ स्टेट	६॥)
२९५०६	श्री० एम० एल० गुप्ता, शाहजहाँपुर	३॥)
२९५०७	श्री० ऑनरेरी सेक्रेटरी, म्युनिसिपल लाइब्रेरी, रायपुर ...	६॥)
२९५०८	श्री० एच० सी० स्वामी, होशङ्गाबाद	३॥)
२९५०९	मेसर्स के० विशन जी, खीनी जी, बम्बई	६॥)
२९५१०	श्री० शिवलाल मुन्शी, दीनापुर पटना	३॥)
२९५११	बाबू सेवाराम सेवक, मुज़फ़्फ़रपुर	५॥)
२९५१२	श्रीयुत बृजनन्दनप्रसाद गुप्ता, सरैयागञ्ज, मुज़फ़्फ़रपुर ...	६॥)
२९५१३	मेसर्स ओ३म्प्रकाश हरीशङ्कर, मेरठ	"
२९५१४	श्रीमती चन्द्रकुमारी देवी, फ़ैज़ाबाद	"
२९५१५	श्रीमती कुसुमकुमारी देवी, अशर्फ़ीबाद, लखनऊ ...	"
२९५१६	साहु अजीतप्रसाद बरुमल जैन, रईस नजीबाबाद ...	"
२९५१७	श्रीयुत श्याममनोहर खत्री, कोठापार्चा, फ़र्रुख़ाबाद ...	"
२९५१८	श्रीयुत भगवतीप्रसाद उपाध्याय, चम्पारण	"
२९५१९	बाबू हरीप्रसाद खेतान, मुङ्गेर ...	"
२९५२०	श्रीयुत जे० सी० यामदग्नि, हारदा सी० पी०	३॥)
२९५२१	श्री० आनरेरी सेक्रेटरी इण्डियन इन्स्टिट्यूट, सीनी ...	६॥)
२९५२२	ला० नानकचन्द भगवतीप्रसाद जैन, सैलावा, मेरठ ...	"
२९५२३	श्रीयुत विनोदे टेलर, रौरकेला, सिंहभूम	"
२९५२४	मेसर्स मधुदनप्रसाद मानिकचन्द, मुङ्गेर	"
२९५२५	श्री० मोतीलाल पिञ्चा, कलकत्ता	"
२९५२६	श्रीयुत कन्हैयालाल खत्री, कलकत्ता	६॥)

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२६५२७	श्रीयुत रामस्वरूप प्रसाद, दरभङ्गा	६॥)
२६५२८	श्रीयुत गोविन्दप्रसाद, पटना ...	"
२६५२९	श्रीयुत मूलचन्द नहटा जैन, मोतीहारी, चम्पारन ...	"
२६५३०	बाबू पृथ्वीराज, कलेवा, अपरचिन्दविन	"
२६५३१	श्रीयुत परमेश्वरीलाल गुप्ता, सेक्रेटरी युवक-सङ्घ, आज़मगढ़ ...	३॥)
२६५३२	श्रीयुत गोवर्द्धनलाल जी, बीकानेर	६॥)
२६५३३	श्रीयुत वासुदेवप्रसाद काले, बदनावर	"
२६५३४	श्रीयुत महराज तेजसिंह, बीकानेर	"
२६५३५	श्रीयुत कल्यानप्रसाद, जयपुर ...	"
२६५३६	बाबू मदनमोहन रुईया, बम्बई नम्बर ६	"
२६५३७	सेठ गङ्गादास जी राँठी, बीकानेर	"
२६५३८	श्रीयुत रूपनरायन, अमरावती ...	"
२६५३९	मेसर्स गोवर्द्धन भैरोलाल दुबे, रतलाम	"
२६५४०	श्रीयुत जयचन्द लाल, सुजानगढ़, बीकानेर	"
२६५४१	श्रीयुत एन० आर० रुकडे, बासीम, बरार	"
२६५४२	श्रीयुत श्यामसुन्दर अरोड़ा, लखनऊ	३॥)
२६५४३	श्रीयुत किशोरीलाल शर्मा, बुलन्दशहर	"
२६५४४	मेसर्स गङ्गाधर गजानन्द, अबोहर, पञ्जाब	"
२६५४५	बाबू अशर्फ़ीलाल गर्ग, रुड़की ...	"
२६५४६	श्रीयुत श्यामदास माथुर, आगरा	"
२६५४७	श्रीयुत जयप्रकाश रस्तोगी, रुड़की	६॥)
२६५४८	श्रीमती जयन्तीप्रसाद वकील, बनारस सिटी	"
२६५४९	श्रीमती सिलासरन, तल्लीताल, नैनीताल	"
२६५५०	श्रीमती भटनागर, झाँसी ...	"
२६५५१	मेसर्स सेठ ब्रदर्स, रुड़की ...	"
२६५५२	बाबू रघुबीर सिनहा, रुड़की ...	६॥)
२६५५३	बाबू किशनसिंह, रुड़की ...	"
२६५५४	श्रीयुत पुरुषोत्तमदास नागर, देहली	"
२६५५५	बाबू बिहारीलाल शर्मा, अलीगढ़	"
२६५५६	श्रीयुत ठकरदास, अबोट्टाबाद, ...	"
२६५५७	लाला बूलचन्द मथुरादास जी, रुड़की	"
२६५५८	मेसर्स बद्रीदास गोपालदास, आगरा	"
२६५५९	श्री० मैनेजर महोदय, जैन ग्लास-वर्क्स, फ़िरोज़ाबाद ...	"
२६५६०	श्रीयुत आनन्दस्वरूप गुप्ता, लाहौर	"
२६५६१	श्रीयुत सिद्दीक हई, आगरा ...	६॥)
२६५६२	बाबू सत्यनरायन सहाय, पटना ...	"
२६५६३	श्रीयुत हीराचन्द खत्री, जयपुर सिटी	"
२६५६४	श्रीयुत महादेवप्रसाद गुप्ता, कन्नौज फ़र्रुख़ाबाद	"
२६५६५	डॉ० एम० बी० पटेल, जम्बूसार भड़ौच	"
२६५६६	बाबू खेमचन्द चोकरा, रङ्गपुर ...	"
२६५६७	मेसर्स अखजराम गोदावरीराम, पैबिघा, गया... ...	"
२६५६८	बाबू वल्लभदास एम० छायला, होशङ्गाबाद	"
२६५६९	श्रीयुत मोदनरायन मिश्रा, मुङ्गेर	"
२६५७०	श्री० सेक्रेटरी महोदय, आर्य-कुमार-सभा, बिजनौर ...	३॥)
२६५७१	बाबू द्वारकाप्रसादसिंह ज़मींदार, कोइलवर	६॥)
२६५७२	मेसर्स गनेशमल धनराज मोहता, बरला, (मारवाड़) ...	३॥)
२६५७३	श्रीयुत कालीप्रसाद, सीवान (सारन)	६॥)
२६५७४	मेसर्स बापूलाल जी चाँदमल जी, मालवा	३॥)
२६५७५	श्रीयुत माहेश्वर अम्बालाल भट्ट, सूरत	३॥)
२६५७६	श्रीमती विद्यावती, मनीवा (अपर बर्मा	६॥)

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२६५७७	श्रीयुत दुर्गाप्रसाद, भीमताल, नैनीताल	६॥)
२६५७८	श्रीमती बाबू बीरबल वर्मा, बनारस कैण्ट	"
२६५७९	मेसर्स रामलाल परमानन्द जी, यवतमल, बरार ...	"
२६५८०	आर० आर० हरहितलाल पुजारी, अकोला, बरार ...	"
२६५८१	श्रीयुत वीरेन्द्रलाल श्रीवास्तव, बलोद	३॥)
२६५८२	श्रीयुत जी० डी० मेहता, चमन, बलूचिस्तान	"
२६५८३	सेठ कन्हैयालाल चण्डक, मोहगाँव छिन्दवाड़ा	६॥)
२६५८४	बाबू रामचन्द्रप्रसाद वर्मा, पटना	"
२६५८५	श्रीमती जेठामल दीवान, पेशावर सिटी	"
२६५८६	जे० एम० तिवारी, रायपुर ...	"
२६५८७	श्रीमती कमलादेवी, धुलिया (खानदेश)... ...	३॥)
२६५८८	श्रीयुत राजेश्वर कुँवर, आदमपुर, भागलपुर	६॥)
२६५८९	श्रीयुत सन्तराम खत्री, होशियारपुर	"
२६५९१	मुसम्मात सुरेशीदेवी, टेहरी, गढ़वाल स्टेट	५)
२६५९२	श्रीयुत उमाचरनसिंह, कचार ...	३॥)
२६५९३	श्रीयुत श्याम आसरेप्रसाद, बी० ए०, मुज़फ़्फ़रपुर	६॥)
२६५९४	श्रीमती केसरादेवी, लाहौर ...	"
२६५९५	श्रीयुत योगराज कपूर, न्यू देहली	"
२६५९६	श्रीयुत प्रतापचन्द चण्डक, भाटापारा रायपुर	"
२६५९७	श्री० सेक्रेटरी महोदय, नवजीवन भारत पुस्तकालय, रोहतक ...	६)
२६५९८	श्रीमती एस० डी० रावल, बुलन्द-शहर	३॥)
२६५९९	श्रीयुत शङ्करलाल, पिप्पिल, जमशेदपुर, टाटानगर ...	"

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२६६००	श्रीयुत सेवक महतो, फ़ातवा, पटना	३॥)
२६६०१	श्रीयुत सेक्रेटरी महोदय, लायब्रेरी सोसाइटी, बम्बई ...	६॥)
२६६०२	श्रीयुत ताराचन्द सोनी, डोंगरगढ़, बीकानेर स्टेट ...	"
२६६०३	मेसर्स शिवप्रसाद हरीप्रसाद गुप्ता, अमरावती	"
२६६०४	श्रीयुत मुनोट के० एल०, अहमदनगर	"
२६६०५	श्रीयुत देसाई रामचन्द्र महुवा, नौसारी, गुजरात ...	"
२६६०६	श्रीयुत नरेन्द्रनाथ गुसाईं शाहपुर, पञ्जाब	"
२६६०७	श्रीयुत हेडमास्टर महोदय, सिटी हाई स्कूल, पटियाला ...	"
२६६०८	श्रीयुत पोखरदास, माउण्टगुमरी	"
२६६०९	श्रीमती कौशल्यादेवी, हुसेन गली, मुल्तान सिटी ...	"
२६६१०	श्रीयुत बद्रीनरायन, भागलपुर ...	"
२६६११	विद्यार्थी वैद्यनाथप्रसाद, दरभङ्गा...	"
२६६१२	श्री० बसन्तलाल नागवंशी, दरभङ्गा	"
२६६१३	श्रीयुत इन्द्रमनीसिंह, मुज़फ़्फ़रपुर	"
२६६१४	श्रीयुत अमीरचन्द, बीकानेर स्टेट	"
२६६१५	श्रीयुत रामेश्वरलाल केरानी, पञ्चगढ़, जलपाईगुड़ी ...	"
२६६१६	श्री० मैनेजर महोदय, श्री० कामधेनु फ़ार्मेसी, काठियावाड़ ...	"
२६६१७	पं० ज्ञानचन्द शर्मा पटवारी, बीकानेर	"
२६६१८	श्रीमती गङ्गादेवी, शिकारपुर ...	४॥)
२६६१९	बाबू कन्हैयालाल पारख, चुरु बीकानेर	६॥)
२६६२०	श्रीयुत बेगराज बोथरा, कलकत्ता	"
२६६२१	बाबू द्वारकाप्रसाद, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, वकील मुज़फ़्फ़रनगर ...	३॥)
२६६२२	मेसर्स धरमचन्द पुरुषोत्तमदास, अमृतसर	६॥)
२६६२३	श्री० मैनेजर महोदय, कर्नाटक पब्लिशिङ्ग हाउस, बङ्गलोर ...	३॥)

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२९६२४	डॉ० रामगोपाल, लाहौर ...	६।)
२९६२५	डॉ० एम० डी० अमरावत, यवतमल, बरार	३।)
२९६२६	श्री० ऑनरेरी सेक्रेटरी महोदय, रे० इं०, भरतपुर ...	३।)
२९६२७	सरदार उम्मेदसिंह, डोंगरगढ़, रायपुर	६।)
२९६२८	श्रीयुत बस्तीमल जोशी, मैमनसिंह	३।)
२९६२९	मेसर्स मङ्गूसाव मथुरासाव, मुज़फ़्फ़रपुर	६।)
२९६३०	श्रीयुत श्याम जी शर्मा, ज़मींदार, कानपुर	"
२९६३१	श्रीयुत श्यामलाल, कासङ्ग, बासोदा स्टेशन, ग्वालियर ...	"
२९६३२	श्रीमती सुशीला चावला, फ़ोर्ट कोलम्बो, सिलौन ...	"
२९६३३	श्रीयुत आर० एन० शाह, ईस्ट खान्देश	"
२९६३४	श्रीयुत कमलाप्रसाद गोयनका, कलकत्ता	"
२९६३५	लाला ज़िन्दामल ताराचन्द हलवाई, फ़िरोज़पुर	"
२९६३६	श्रीमती महारानी देवी सक्सेना, दरीबापान, जयपुर स्टेट ...	३।)
२९६३७	श्री० चतुरबिहारीलाल गुप्ता, पीलीभीत	३।)
२९६३८	श्री० नर्बदाप्रसाद जैसवाल, बल पुर	६।)
२९६३९	श्री० किशोरचन्द मेहता, धरमशाला, काङ्गड़ा ...	"
२९६४०	श्री० सागरचन्द, मोगलपुरा, लाहौर	"
२९६४१	श्रीमती राजकुमारी देवी, दिल्ली ...	३।)
२९६४२	श्रीयुत जी० एस० वर्मा, लॉरेन्सपुर, अटक	६।)
२९६४३	श्रीमती तारावती देवी, जलालपुर	"
२९६४४	श्रीमती सरस्वती देवी, लोनी, मेरठ	"
२९६४५	श्रीयुत रामकुँवर मुनीम, जमशेदपुर, सिंहभूम... ...	३।)
२९६४६	श्रीयुत एन० ए० मुजबल, दोई फ़ोडिया, बुढ़ानपुर ...	६।)
२९६४७	मेसर्स सुहाने ब्रदर्स, बालाघाट	"
२९६४८	पं० कानसिंह जी, ज़िलेदार, बीकानेर	"
२९६४९	श्रीयुत केदारनाथ बाहिती, खण्डवा	"
२९६५०	श्रीमती शान्ति देवी, यनानजाव, अपर बर्मा	"
२९६५१	मेसर्स भूरजी गोपालजी, खण्डवा	"
२९६५२	श्री० सेक्रेटरी महोदय, अग्रवाल-पुस्तकालय, छोटी सादड़ी ...	५)
२९६५३	श्रीयुत धन्नालाल जैन, ग्वालियर स्टेट ...	६।)
२९६५४	श्रीमती रूपदेवी, बलरामपुर (गोंडा)	५)
२९६५५	श्री० सेक्रेटरी महोदय, टा० हा० म्यु० लायब्रेरी, मुज़फ़्फ़रपुर ...	६।)
२९६५६	श्रीयुत आर० एस० राय, टेलीग्राफ्स, क्वीटा ...	"
२९६५७	श्रीयुत काशीरामसिंह गौड़, रायपुर	३।)
२९६५८	मेसर्स मुलतानमल, जावेन्थराज पूनामाली	६।)
२९६५९	श्रीयुत बद्रीप्रसाद गुप्ता, कलेक्टरगञ्ज, कानपुर ...	६।)
२९६६०	श्रीयुत शङ्करस्वरूप शर्मा, ग्वालियर स्टेट	"
२९६६१	मेसर्स शिवशङ्करदयाल हरिश्चन्द्र, कटरा नवाब, दिल्ली ...	"
२९६६२	सेठ लछमीचन्द सादानी, रायपुर	"
२९६६३	श्रीयुत सोहनसिंह ख़ज़ाञ्ची, उदयपुर	"
२९६६४	श्रीयुत नरहरराव बीदर, निज़ाम स्टेट	"
२९६६५	श्रीयुत सङ्कठाप्रसाद, ग़ाज़ीपुर ...	"
२९६६६	श्रीयुत विभूतसिंह, बाराँ, कोटा स्टेट	"
२९६६७	श्रीयुत हेड पण्डित, दरियापुर, चम्पारन	"

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
२९६६८	बाबू केदारनाथ झा, मनीगाछी, दरभङ्गा	६॥)
२९६६९	श्रीयुत किशोरीलाल खोरिया, जलपाईगुड़ी ...	३॥)
२९६७०	श्रीयुत घनश्याम करमाकर, बूरनपुर	"
२९६७१	श्रीयुत जगन्नाथ केडिया, सैदपुर, रङ्गपुर	६॥)
२९६७२	मेसर्स कृपाराम शर्मा एण्ड को० कलकत्ता	"
२९६७३	श्रीमती रानी कौल, लाहौर ...	"
२९६७४	श्रीयुत पुखराज, नण्डौल, मारवाड़	"
२९६७५	अखौरी लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव, गया	"
२९६७६	श्रीमती विमला देवी, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, देहली	"
२९६७७	श्रीमती सौभाग्यमणि देवी, जोधपर, मारवाड़	३॥)
२९६७८	श्री० सेक्रेटरी महोदय, सार्वजनिक पु०, सखेड़ा, बरौदा स्टेट ...	६॥)
२९६७९	श्री० एम० के० गाँधी पुस्तकालय एण्ड पारसी रुस्तमजी हाल कमेटी, डरबन, नैटाल ...	८॥)
२९६८०	श्रीयुत हरिश्चन्द्र, चाँदनी चौक, देहली	६॥)

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से नए तथा पुराने ग्राहकों का चन्दा हमें प्राप्त हुआ है; किन्तु स्थानाभाव के कारण उनकी सूचना नहीं प्रकाशित हो सकी। अतः इसके लिए उन्हें आगामी अङ्क की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

निम्न-लिखित ग्राहकों को फ़रवरी, सन् १९३२ के पहले सप्ताह में 'चाँद' वी० पी० द्वारा भेजा जाएगा, कृपया वी० पी० पहुँचते ही स्वीकार करें।

२४५४, ३२९३, ५११८, ५४६७, ५५१४, ६४६२, ७९२५, ७९३०, ८१११, ८१४०, ८९९९, १२५५२, १२५५३, १२५७७, १२५७९, १२६२८, १२६८४, १२७१५, १२७२०, १२७२२, १३६०, १४४५०, १४७३७, १५९३३, १५९४६, १५९४८, १५९५३, १५९५६, १६००७, १६०५५, १६०५७, १६१२८, १६१४८, १६२१८, १६२२२, १६२८८, १६२९५, १६२९७, १६३००, १६३१४, १६३२६, १६३३८, १६३५४, १६३५१, १६३६१, १६३६७, १६३७२, १६३७३, १६४४७, १६४५९, १६४७६, १६४८२, १६४८३, १६४९६, १६५०५, १६५०६, १६५१९, १६५३१, १६५६१, १६५९१, १६६०६, १६६२४, १६६३०, १६६३२, १६६६०, १६६६८, १६६७९, १६६८०, १६६९३, १६७०४, १६७२३, १६७२४, १६७३२, १६७३५, १६७४५, १६७४८, १६७६७, १६७९१, १६८०६, १६८०७, १६८१०, १६८१५, १६८५५, १६९२२, १६९३१, १६९६६, १६९६७, १६९६८, १८२४६, १९२९८, २२३७८, २३२०८, २३२४८, २३४८२, २३६८३, २३६८७, २३७५७, २३७५८, २३८०२, २३८०४, २३८१२, २३८७१, २३८७२, २३९०५, २३९१०, २३९१२, २३९५१, २३९७८, २३९८३, २३९८९, २३९९१, २३९९९, २४०००, २४०१७, २४०१८, २४०३५, २४०४०, २४०४५, २४०४९, २४०६०, २४०६४, २४०६७, २४०७०, २४०७१, २४०७२, २४०७४, २४०७८, २४०८५, २४०९०, २४०९६, २४१००, २४१०६, २४१०७, २४१३०, २४१३३, २४१५४, २४१६०, २४१६४, २४१६५, २४१६६, २४१६९, २४१७१, २४१७६, २४१८०, २४१८६, २४१८८, २४२०२, २४२०४, २४२०९, २४२१६, २४२२१, २४२२२, २४२२६, २४२३०, २४२३७, २४२३८, २४२४६, २४२५२, २४२६९, २४२७६, २४२८२, २४२८४, २५२८५, २४२८८, २४२९२, २४३०८, २४३१९, २४३२१, २४३२३, २४३३४, २४३३६, २४३३७, २४३३८, २४३४१, २४३४२, २४३६५, २४३६९, २४३७०, २४३७८, २४३८०, २४३८७, २४३८८, २४३८९, २४४१८, २४४३५, २४४३९, २४४४०, २४४४२, २४४४८, २४४५०, २४४५३, २४४५६, २४४८३, २४५०४, २४५२१, २४५२४, २४५३३, २४५३९, २४५५१, २४५७२, २४५८२, २४५८३, २४५८४, २४६११, २४६६०, २४६७९, २४६९८, २४७६२, २४७९१, २४८४२, २४८४७, २४८५१, २४८५५, २४८७८, २४९२१, २५०४२, २५१७४, २५२५४, २५६३०, २६४२१, २६४४९, २६४८८, २६५०६, २६५१६, २६५२९, २६५३३, २६५३९, २६५५३, २६७८१ ।



समन बग़रज़ क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब

मुक़दमा नं० ११/६२ सन् १९३१ ई०

अदालत जनाब एडिशनल सब-जज साहब बहादुर मुक़ाम उन्नाव

हरिहरबख़्शसिंह वल्द रामसिंह क़ौम ठाकुर साकिन ताला सराय परगना रूरास तहसील चेतगञ्ज ज़िला उन्नाव मुद्दई

बनाम भगवानदीन वग़ैरह मुद्दाअलेह

बनाम पहलवानसिंह वल्द मदारीसिंह क़ौम ठाकुर मौज़ा राहिदपुर परगना व तहसील सन्डीला ज़िला हरदोई मुद्दाअलेह।

वाज़ह हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दावा बेबयात तादादी ६७९२।=)॥ के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २० जनवरी सन् १९३२ ई० वक़्त १० बजे दिन के असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और उमूरात अहम मुतल्लक़ा मुक़दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके, हाज़िर हो और जवाबदेही दावा मुद्दई मज़कूर को करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात की जिन पर तुम बताईद अपनी जवाबदेही के इस्तदलाल करना चाहते हो, पेश करो।

मुत्तला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़दमा तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में मसमूअ और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ १९ दिसम्बर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

(दस्तख़त हाकिम)

तम्बीह :—अगर बयानात तहरीरी की ज़रूरत हो तो लिखना चाहिए कि तुमको (या फ़लाँ फ़रीक़ को यानी जैसी कि ज़रूरत हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी बतारीख़ १२ जनवरी सन् १९३१ ई० तक गुज़रानो।

समन बग़रज़ क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब

मुक़दमा नं० ११/५५ सन् १९३१ ई०

अदालत जनाब पं० कृष्णानन्द पाण्डे एडिशनल सब-जज साहब बहादुर उन्नाव

भूपसिंह वग़ैरा अक़वाम ठाकुर साकिनान मौज़ा भिखारीपुर-बतसिया परगना बाँगरमऊ ज़िला उन्नाव मुद्दई।

बनाम मुसम्मात गजाना वग़ैरा मुद्दाअलेह

बनाम (१) भीखमसिंह बालिग़ (२) बाबूसिंह (३) रामबुधसिंह नबालिग़ान पिसरान मनोहरसिंह बवलियत मुसम्मात बबई मादर ख़ुद अक़वाम ठाकुर साकिनान मौज़ा बुहनयार परगना बिल्हौर ज़िला कानपुर मुद्दाअलेह।

वाज़ह हो कि मुद्दइयान ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत इस्तक़रारतन के दायर की है लिहाज़ा तुम बातारीख़ १८ जनवरी सन् १९३२ ई० वक़्त १० बजे सुबह असालतन् या मार्फ़त वकील के जो मुक़दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतल्लक़ा मुक़दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके, हाज़िर हो और जवाबदेही दावा मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर तुम बताईद अपनी जवाबदेही के इस्तदलाल करना चाहते हो, पेश करो।

मुत्तला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर हाज़िर न होगे तो मुक़दमा तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में मसमूअ और फ़ैसल होगा।

आज तारीख़ १० दिसम्बर सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

(दस्तख़त हाकिम)

तम्बीह :—अगर बयानात तहरीरी की ज़रूरत हो तो लिखना चाहिए कि तुमको (या फ़लाँ फ़रीक़ को यानी जैसी कि सूरत हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी बतारीख़ ११ जनवरी सन् १९३२ ई० तक गुज़रानो।

इत्तलानामा बनाम रिस्पाण्डेण्ट मुशयर इत्तला मुक़र्ररा समायत अपील

(अपील दीवानी)

अदालत जनाब पं० कृष्णानन्द पाण्डे साहब बहादुर एडिशनल सब-जजमुक़ाम उन्नाव

मुक़दमा अपील नं० ३७/६६ सन् १९३१ ई०

रघुनन्दनप्रसाद वल्द लालताप्रसाद क़ौम ब्राह्मण साकिन देवली परगना फ़तेहपुर-चौरासी ज़िला उन्नाव अपीलाण्ट

बनाम तेज्जा वग़ैरा

अपील बिना राज़ी डिगरी व तजावीज़ अदालत सैयद ख़ादिमअली साहब मुन्सिफ़ फ़तेहपुर मुक़ाम उन्नाव रिस्पाण्डेण्ट

ता० १७ जुलाई, सन् १९३१ ई०

बनाम मनोहरसिंह वल्द नामालूम क़ौम ठाकुर साकिन मौज़ा अलाउद्दीनपुर, परगना फ़तेहपुर-चौरासी ज़िला उन्नाव रिस्पाण्डेण्ट

मुत्तिला हो कि अपील बिना राज़ी डिगरी मुन्सिफ़ फ़तेहपुर मुक़ाम उन्नाव इस मुक़दमा में मुसम्मी रघुनन्दनप्रसाद ने पेश किया और वह इस अदालत में दर्ज रजिस्टर हुआ और इस अदालत ने बतारीख़ २० (बीस) जनवरी सन् १९३२ ई० १० बजे दिन वास्ते समाएत इस अपील के मुक़र्रर की है और अगर ख़ुद या तुम्हारा वकील या कोई और शख़्स जो क़ानूनन् तुम्हारी तरफ़ से अपील हाज़ा में जवाब व सवाल करने का मजाज़ हो, हाज़िर न आएगा तो इसकी समाअत और तजवीज़ तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में एकतरफ़ा की जाएगी।

आज बतारीख़ १६ दिसम्बर, सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

(दस्तख़त) भगवतीशरण

मुनसरिम मुन्सिफ़ ऑफ़ एडिशनल सब-ऑर्डिनेट

इत्तलानामा मुद्दाअलेह नाबालिग़ व वली

अदालत जनाब पं० कृष्णानन्द पाण्डे एडिशनल सब-जज साहब बहादुर उन्नाव

मुक़दमा नं० १६/५५ सन् १९३१ ई०

भूपसिंह वग़ैरा अक़वाम ठाकुर साकिनान मौज़ा भिखारीपुर-बतसिया परगना बाँगरमऊ ज़िला उन्नाव मुद्दई

बनाम मुसम्मात गजाना वग़ैरह

(१) बाबूसिंह व (२) रामसुघसिंह नाबालिग़ान बवलियत मुसम्मात बबई मादर ख़ुद पिसरान मुद्दाअलेह।

बनाम मनोहरसिंह अक़वाम ठाकुर साकिनान मौज़ा लेहनार परगना बिल्हौर ज़िला कानपुर मुद्दाअलेह नाबालिग़ वली क़ुदरती।

हरगाह मुक़दमा मुनदर्जा मनवान में मुद्दई ने एक दरख़्वास्त गुज़रानी है कि मुद्दाअलेह नाबालिग़ का एक वली दौरान मुक़दमा मुक़र्रर किया जावे। लिहाज़ा तुम नाबालिग़ को और तुम मुसम्मात बबई को इसकी रू से इत्तला दी जाती है कि अगर तामील इत्तलानामा हाज़ा से ११ जनवरी, १९३२ यूम के अन्दर एक दरख़्वास्त इस अदालत में नसब तुम्हारे या तुम मुसम्मात बबई नाबालिग़ के किसी दोस्त के वली दौरान मुक़दमा मुक़र्रर किए जाने की न गुज़रावेंगे तो अदालत किसी और शख़्स को नाबालिग़ मज़कूर का वली वास्ते अग़राज़ मुक़दमा के मुक़र्रर करेगी।

आज बतारीख़ १५ दिसम्बर, सन् १९३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

(दस्तख़त) भगवतीसरन

मुनसरिम मुन्सिफ़ ऑफ़ एडिशनल सब-ऑर्डिनेट

Printed and Published for and on behalf of the Chand Press, Limited, by Shrimati Lakshmi Devi, at the Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad.

Editor : Dr. D. R. Prem.


CSDS
centre for the
study of developing
societies


BRITISH
LIBRARY